

पण्डितप्रवर श्रीआशाधर विरचित

क८१३ प्रतिष्ठासाराब्धार

संक्षिप्त हिंदी भाषाटीकासहित ।

जिसको

पाठमनिवासी पं० मनोहरलाळ शास्त्रीने प्रचारकर अपने
श्रीजैनग्रंथ-उद्धारक कार्यालय द्वारे

प्रकाशित किया ।

प्रथमवार
१००० प्रति ।

वि० संवत् १९७४.

न्योछावर गत्ते-

सहित १।।७ रु०

कपड़की जिल्द रु०

SHRI JAINMATI LIBRARY


जयपुर



Printed by Ohintaman Sakheram Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants
of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

AND

Published by Pandit Manoharlal Shastri, Malik, Jain Grantha Uddharak
Karyalaya, Khattar Lane, Houdwadi, Bombay, No. 4.





ॐ नमः परमोष्ठिभ्यः

प्रस्तावना ।

प्रिय पाठकगण ! अब मैं श्री जिनैन्द्रदेवकी कृपासे उस अपूर्व ग्रंथ प्रतिष्ठासारोद्धारको भाषाटीकासहित बनाने आपके सामने उपस्थित करता हूँ कि जिसकेलिये आप सब साधर्मिण उत्कण्ठित होरहे थे । गृहस्थ श्रावकोंका देवपूजा करना नित्य क्रमोंसे गहला कर्तव्य कहा है, उसकेलिये जिनैन्द्रकी प्रतिमा तथा मंदिरकी स्थापना होना बहुत आवश्यक है । उसी स्थापनाकी पंचकल्याणक आदि विधियां इस महान ग्रंथमें स्पष्ट रीतिसे वर्णनकी गई हैं । इसका फल ग्रंपकारने स्वयं दितलाया है कि पहले महाराज भरतचक्रवर्ती आदि महान पुरुष भी इसी जिन प्रतिष्ठानके करनेसे निराकुल मोक्षसुखको प्राप्त हुए हैं । परंतु कालकी कुटिलगतिसे आजकल बहुत कुछ विपरीतपना फैल गया है । पहले तो प्रतिष्ठाकारनेवाले धनिक यजमानोंको यही खबर नहीं कि प्रतिष्ठाकारनेका क्या फल है तथा हमको

प्रतिष्ठाचार्यके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये । दूसरी बात यह है कि प्रतिष्ठाचार्यको भी अत्यंत लोभके वशीभूत होकर इसबातका ध्यान नहीं रहता कि मैं यजमानके साथ अयोग्य वर्ताव तो नहीं करता । वस यजमान और प्रतिष्ठाचार्य इन दोनोंके अयोग्य वर्ताव होनेसे प्रतिष्ठाके समय अनेक विघ्न आकर उपस्थित होजाते हैं तब प्रतिष्ठाका फल निष्फल होजाता है ॥ यही विचारकर मेरा मन सांक्षिप्त भाषाटीका सहित इस प्रतिष्ठापाठको प्रकाशित करनेका हुआ है । जिससे सब साधारण भव्यजीवोंको यह बात मालूम होजावे कि प्रतिष्ठा करनेमें किन २ चीजोंकी आवश्यकता है और यजमान तथा प्रतिष्ठाचार्यको कैसा वर्ताव रखना चाहिये ॥

यह महान् ग्रंथ पंडितप्रवर श्री आशाधर गृहस्थाचार्यका बनाया हुआ है । इन्हेने श्री वसुनंदि आचार्यकृत प्रतिष्ठासार संग्रहके विषयका उद्धार करनेके लिये विस्तारसहित पूर्वोक्त प्रतिष्ठासारोद्धार नामका ग्रंथ रचकर भव्यजीवोंका उपकार किया है । इन्हीं विद्वद्वरने धर्मभूत आदि अनेक अपूर्व ग्रंथोंकी रचना की है, उसका उल्लेख प्रशस्तमें किया गया है । और जीवनचरित्र भी संक्षेपमें प्रशस्तमें है तथा सागर धर्मभूतमें मुद्रित हो चुका है इसलिये यहाँ लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है । इस ग्रंथकी भाषाटीका अबतक देखनेमें नहीं आई और न मैंने अबतक कोई प्रतिष्ठा करनेका काम ही किया । उसमें भी प्रतिष्ठाकी क्रिया करनेवालोंकी लाभकषायके वश चित्तमलिनता होनेके कारण विधि बतलानेमें सहायता देना असंभव समझ उनके पास भी जाना व्यर्थ समझा । इसलिये मूल संस्कृतपरसे ही शुद्धिके अनुसार भाषाटीका संक्षेपसे लिखी गई है ।

इस ग्रंथकी एक हस्तलिखित प्रति तो पूर्ण मिली तथा दूसरी अधूरी मिली । ये दोनों प्रतिया लेखकोंकी कृपासे प्रायः अशुद्ध मिलीं, इसलिये अर्थकरनेमें बहुत कठिनाई हुई । अस्तु । ' न कुछसे कुछ होना अच्छा ' इस कहावतको लेकर यह उद्यम किया गया है ।

इस ग्रंथके साथ प्रतिष्ठासारसंग्रहका भी कुछ भाग लगादिया है । तथा समयके अनुकूल विषयसूची, मंत्रसाधनके समय आवश्यक चीजोंका नकशा, और मंत्रन्याकरणके कुछ नियमोंको बतलानेवाले श्लोक भी लगादिये गये हैं कि जिससे कर्णपिशाचिनी आदि विद्याके साधनेमें सफलता हो । मंत्र सिद्ध करनेकी विस्तारसे विधि मंत्रसंग्रह में बहुत अच्छी तरहसे बतलाई जावेगी ।

इस ग्रंथके उद्धारमें श्रीमान् श्रेष्ठ भैरूद्वानजी लाडलू निवासीने जो पचास रुपये भेजकर सहायता की है, इस अपूर्व उपकारके हम बहुत आभारी होके कोटिशः धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि इस तरहकी आर्थिक सहायता देकर अन्य सज्जन भी जिनवाणीका प्रचारकर पुण्यउपार्जन करेंगे । अंत में यह प्रार्थना है यदि हमारे पाठकोंको इस ग्रंथसे संतोष हुआ और सहायता मिली तो अष्टांग-निमित्तसंग्रह तथा मंत्रसंग्रह आदि अपूर्व ग्रंथ भाषा-टीका सहित प्रकाशित करके उपस्थित करूंगा । शुद्ध प्रति न मिलनेसे कहीं अशुद्धियां रह गई हों तो पाठक महाशय मुझपर क्षमा करें । जब शुद्ध प्रति मिलजावेगी तब शुद्धिपाठ छपाकर भेजदिया जावेगा । इसतरह प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूँ । अलं विधिषु ।

खत्तरगली हौदावाडी

पो. गिरगांव—बंबई

जेठ वदि १३ वीर सं० २४४३

जैनसमाजका सेवक

मनोहरलाल

पाठम (भैरपुरी) निवासी

मंत्रसाधनके समय आवश्यक नियम ।

शांतिकर्म ?

वरुणविशा
अर्धरात्रि
ज्ञानसुद्रा
पंकजासन
(नमः) स्वाहा पहलव
श्वेतवस्त्र
श्वेतपुष्प
श्वेतवर्ण
पूरकयोग
वीपनआदि नाम
स्फटिकमणि माला
मध्यमांगुलि
दक्षिणहस्त
वामबायु
जलमंडल

पौष्टिककर्म २

नैऋत्यदिशा
प्रभातकाल
ज्ञानसुद्रा
स्वस्तिकासन
स्वधा पहलव
श्वेतवस्त्र
श्वेतपुष्प
श्वेतवर्ण
पूरकयोग
वीपनआदि
शुक्ताफल माला
मध्यमांगुलि
दक्षिणहस्त
वामबायु
जलमंडल

वश्यकर्म ३

कुबेरविशा
पूर्वाह्नकाल
सरोजसुद्रा
पंकजासन
वषट् पहलव
रक्त वस्त्र
अरुण पुष्प
रक्तवर्ण
पूरकयोग
संपुट आदि
प्रवालमणि
अनामिका
वामहस्त
वामबायु
अग्निमंडल

आकर्षणकर्म ४

यमदिव्
पूर्वाह्नकाल
अंकुशसुद्रा
दंडासन
वौषट् पहलव
उदयार्कवस्त्र
अरुणपुष्प
उदयार्कवर्ण
पूरकयोग
ग्रंथनवरुण
प्रवालमणि
कनिष्ठिका
वामहस्त
वामबायु
अग्निमंडल

स्तंभनकर्म ५

पूर्वाभिष्टुस्व
पूर्वाह्निककाल
शंखसुद्रा
वज्रासन
ठ ठ पल्लव
पीतवस्त्र
पीतपुष्प
पीतवर्ण
कुंभकयोग
विदर्भमध्य
स्वर्णमणि
कनिष्ठिका
वक्षिणहस्त
वक्षिणवायु
पृथ्वीमंडल

भारणकर्म ६

ईशानाविशा
संख्याकाल
वज्रसुद्रा
भद्रासन
वे घे पल्लव
कृष्णवस्त्र
कृष्णपुष्प
कृष्णवर्ण
रेचकयोग
रोधनआदि
पुत्रजीवीमणि
तर्जनी
वक्षिणहस्त
वक्षिणवायु
वायुमंडल

विद्वेषणकर्म ७

आग्निदिक्र
मध्याह्निककाल
प्रवालसुद्रा
कुर्कुटासन
हं पल्लव
धूम्रवस्त्र
धूम्रपुष्प
धूम्रवर्ण
रेचकयोग
पल्लवातिनाम
पुत्रजीवीमणि
तर्जनी
वक्षिणहस्त
वक्षिणवायु
वायुमंडल

उच्चाटनकर्म ८

वायव्यविशा
अपराल्किकाल
प्रवालसुद्रा
कुर्कुटासन
फट् पल्लव
धूम्रवस्त्र
धूम्रपुष्प
धूम्रवर्ण
रेचकयोग
पल्लवातिनाम
पुत्रजीवीमणि
तर्जनी
वक्षिणहस्त
वक्षिणवायु
वायुमंडल

॥ मंत्रसाधनविधिके आवश्यक श्लोक ॥

दिकालमुद्रासनपङ्क्तानां भेदं परिहाय जपेत् स मंत्री ।

न चान्यथा सिद्ध्यति तस्य मंत्रः कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमं ॥ १ ॥

स्तंभं विद्वेषमाकुष्टिं पुष्टिं शान्तिं प्रचालनम् । वश्यं बधं च तं कुर्यात् पूर्वार्धभिमुखः क्रमात् २
अन्योन्यवज्रविद्धं पतिं चतुरस्रमवनिर्बीजयुतम् । कोणेषु रांतयुक्तं भुमंडलसंज्ञकं द्वैयम् ॥३॥
मुखमूलवपोपेतः पद्मपत्रांकितः सितः । पववर्णात्तद्विक्षोणः कलशस्तोयमंडलम् ॥ ४ ॥

त्रिस्यस्तिकं त्रिकोणं यातं कोणेषु वह्निबीजयुतम् । ज्वालामुतमरुणाभं तन्मंडलमाहुराग्नेयम् ५
बहुविदुवक्रैरखं वृत्ताकारं चतुर्थकारयुतम् । कृष्णं मारुतबीजं वायव्यं मंडलं प्राहुः ॥ ६ ॥
चत्वारि मंडलानि च लवरयवर्णैः क्रमेण युक्तानि । पृथ्वीसलिलद्रुताशनमारुतबीजैः समेतानि ७

मारुणाकुष्टिवश्येषु त्र्यस्रं कुंडं प्रशस्यते । विद्वेषोच्चाटयोर्वृत्तमन्येषु चतुरस्रकम् ॥ ८ ॥
पलाशस्य समिन्मुख्या स्यादमुख्या पयस्सरोः । विधानमेतत् संग्राह्यं विशेषवचनाहते ॥ ९ ॥
वधविद्वेषोच्चाटेष्वष्टौ पुष्टौ मता नव शान्तौ । आकुष्टिवशीकृत्योर्द्वादश सामिधः प्रमांगुलयः ॥१०

शतमष्टोत्तरसंख्या सहस्रमष्टोत्तरं वदति जपे । होमादिषु संख्या स्यात् दशभागा मूलमंत्रसंख्यायाः
जपाविकलो मंत्रः स्वशक्तिं लभते पराम् । होमार्चनादिभिस्तस्य वृत्ता स्यादधिदेवता १२
एकस्तावद्वह्निः पुनरपि पवनाहतो न किं कुर्यात् । एको मंत्रः पुनरपि अपहोमयुतोस्य किमसाध्यं
शिष्यो मंत्रक्रियारंभे खातः शुद्धांबरं दधत् । निर्जैतुवेशके पूजाजपहोमान् करोत्विति ॥१४॥
पंचाक्षाननस्थापनसाक्षात्करणार्चनानुसर्गाः स्युः । मंत्राधिदेवतानामुपचाराः कीर्तितास्तज्ज्ञैः ॥
सिसाधयिपुणार् विद्यामन्त्रिनेष्टसिद्धये । यत्स्वस्य क्रियते रक्षा सा भवेत् सकलीक्रिया ॥१६॥

ॐ नमः परमात्मने ।

श्रीमत्पंडितप्रवर-आशाधरविरा

श्रीमत्पुस्तकसंग्रह

(जिनयज्ञकल्पापरनाम)

त्रिंनान्नपस्कृत्य त्रिंनंप्रतिष्ठाशास्त्रोपदेशव्यवहारदृष्ट्या ।
श्रीमूलसंधे धिथिवत्प्रबुद्धान् भव्यान् प्रवक्ष्ये जिनयज्ञकल्पम् ॥ १ ॥

हिंदी भाषाटीका

अथ जिनयज्ञ कल्प नामके प्रतिष्ठापाठका व्याख्यान किया जाता है;—मं (आशाधर)
जिनेंद्र भगवानको नमस्कार करके और जिनप्रतिष्ठा शास्त्रोंकी गुरुआम्नायको अच्छीतरह
जानकर श्रीमूलसंधके शास्त्रोंके अनुसार श्रावकधर्मको पालनेवाले भव्योंके वास्ते जिनयज्ञक-

१ अवातो जिनयज्ञकल्पमनुकल्प्यामः । २. जिनस्थापनाधर्ममंहितागुर्वाम्नायमुह्यप्रबुत्प्रवलोक्तेन ।

साफल्यनैकदेशेन कर्मारतिजितो जिनाः । पंचार्हदादयोऽत्रेष्टाः श्रुतं चान्यच्च तादृशम् ॥२॥
 जिनानां यजनं यज्ञस्तस्य कल्पः क्रियाक्रमः । तद्वाचकत्वाच्च जिन-यज्ञकल्पोऽयमुच्यते ॥३॥
 तत्र विश्वोपकारार्थजन्मनां यज्ञमर्हताम् । प्रागाहुस्तस्य भेदाः स्युः पंच नित्यमहादयः ॥४॥
 तेषु नित्यमहो नाम स नित्यं यज्जिनोचर्यते । नीतैश्चैत्यालयं स्वीयगेहाद्रुंधाक्षतादिभिः ॥५॥
 अतो नित्यमहोद्युक्तैर्निर्माण्यं सुकृतार्थिभिः । जिनचैत्यग्रहं जीर्णमुद्धार्यं च विशेषतः ॥६॥

ल्पका विस्तारसे व्याख्यान करता हूँ ॥१॥ समस्त अथवा थोड़ेसे कर्मरूपी वैरियोंको जिसने जीत लिया है वह जिन कहलाता है इसलिये यहाँपर अर्हत सिद्धादि पांच परमेष्ठी तथा उनका कहा हुआ द्वादशांग शास्त्र-जिन जानना चाहिए । उन जिन शब्द वाच्य अर्हतादिकका जो पूजन उसे जिनयज्ञ कहते हैं उसकी क्रियाओंके क्रमको कल्प कहते हैं इसलिये जिन-पूजाकी क्रियाओंके क्रमको जो कहे उसीको ' जिनयज्ञकल्प ' इस नामसे कहते हैं । यह जिनयज्ञकल्पका अक्षरार्थ हुआ ॥ २ । ३ ॥ उनमें सबसे पहले अर्हतकी पूजाका क्रम कहा जाता है क्योंकि सुख्यतासे उन तीर्थकर अर्हतका ही जन्म जगतजीवोंके उपकारके लिए होता है । उस पूजाके नित्यमह चतुर्मुख रथावर्त कल्पवृक्ष इंद्रध्वज-ये पांच भेद आचार्योंनि कहे हैं ॥ ४ ॥ उन पांचोंमेंसे नित्यमह नामकी पूजा वह है कि जो अपने घरसे चंदन अक्षतादि अष्टद्रव्यको चैत्यालय (जिनमंदिर) में लेजाकर उससे जिनेन्द्रका पूजन किया जावे ॥ ५ ॥ इसलिये पुण्यके चाहनेवालोंको नित्यमह पूजनमें उग्रमी द्योके जिनमंदिर बनवाना चाहिए ।

जिने यज्ञ करिष्याम इत्यध्यवसिताः किल । जित्वा दिशो जिनानिष्ठा निर्हुता भरतादयः ॥७॥
 शक्यक्रियेष्टफलतां दृष्ट्वाष्टांगनिमित्ततः । स्वशक्त्या स्वह्निं पृष्ट्वाप्तान् प्रारभेत जिनालयम् ॥८॥
 मृनिगोऽश्वेभभूयाढ्ययेपिच्छत्रादिदर्शनम् । तत्प्रज्ञे वेदपाठार्हेन्दुत्यादिश्रवणं शुभम् ॥ ९ ॥
 विमूर्धा हसतीस्तोमः सोहं मध्ये स्थितोऽततः । चतुरोङ्कारयुक्त्वं सव्येतरमायाद्द्वयाष्टत्तम् ॥१०॥

और जहांतक होसके जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार कराना बहुत उत्तम है ॥ ६ ॥ जिनेन्द्र
 देवकी पूजा तो अवश्य करेगे ऐसा दृढनिश्चय रखनेवाले भरत सगर राम पांडव आदिक
 बड़े २ महाराजा जो पूर्वसमयमें होगये हैं वे भी जिनेन्द्रदेवकी पूजाकरनेसे ही सब दिशा-
 ओंको जीतकर अंतमें मोक्षके अविनाशीक सुखको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ अपनी शक्ति और इष्ट
 सिद्धिको विचार कर तथा पिता माता मंत्रीआदिक सज्जनोंको पूछकर अष्टांग निमित्तके
 द्वारा शुभतिथि आवि पंचांग शुद्ध लगनमें जिनमंदिर बनवाना शुरू करे ॥ ८ ॥ जिन-
 मंदिरके उद्धार करनके संबंधमें पूछनेके समय दिगंबर मुनि (साधु) बछड़ेवाली गाय वा
 बैल घोडा हाथी सधवा खीछत्र और आवि शब्दसे चमर ध्वजा सिंहासन वही दूध इत्यादिका
 देखना तथा बीणाका शब्द जैन शास्त्रोंका पाठ अर्हतको नमस्कार आवि शब्दोंका सुनना शुभ
 ॥ ९ ॥ अब कर्णपिशाचिनी यंत्र मंत्रका उद्धार बतलाते हैं,—हकार सकार तकारके ऊपर
 रख सकार-और हकारके बीचमें तीं अक्षरको लिखे उसके चारों कोनोंमें चार ओंकार

भूपतालक्षेत्रपीठवास्तुद्वारशिलार्चनाः । कृत्वा नरं प्रवेश्याचर्यां न्यस्यात्रारोपयेद् ध्वजम् ॥ १६ ॥
 जैनं चैत्यालयं चैत्यश्रुत निर्मापयन् शुभम् । बालन् स्वस्य वृषादेश्च वास्तुशास्त्रं न लंघयेत् १७
 रम्ये स्निग्धं सुगंधादिद्रव्याद्याहृद्यां स्वतः शुचिम् । जिनजन्मादिना वास्ये स्वीकुर्याद्भूमिसुत्तमाम्
 खात्वा हस्तप्रथः पूर्णे गर्ते तैनेव पाशुना । तदधिक्यसमोनत्वे श्रेष्ठा मध्याधमा च भूः ॥ १९ ॥

नमस्कार मंत्रका जाप करता हुआ सो जावे और उस सोती हुई अवस्थामें सुनि गाय आदिको देखे तो शुभफल कहे और शकुन शास्त्रमें कही हुई अशुभ वस्तुओंको देखे तो अशुभ फल कहे ॥ १५ ॥ अपनी भूमि पातालभूमि पूरितभूमि चौकी देवगृह शिला—इनकी पूजा करके सोनेके बनाने हुए मनुष्याकार पुतलेको रख उसकी पूजा करके वाङ् ध्वजा चढावे ॥ १६ ॥ जो अपना और राजा प्रजाका कल्याण चाहता है उसे वास्तुशास्त्रके अनुसारही जिनमंदिर और जिन प्रतिमाको बनवाना चाहिये ॥ १७ ॥ ऐसी जमीनको मंदिर बनवानेके लिये पसंद करे कि जो चिकनी हो तथा सुगंधीसे या द्रुव वगैरः वाससे या तो स्वयं शुद्ध हो या जिनेन्द्रके किसी एक कल्याणकसे पवित्र हो ॥ १८ ॥ वह भूमि एक हाथ गहरी और एक हाथचौड़ी खोदे उससमय उसी निकली हुई मट्टीसे गढा भरेदे जब खड्डा भरनपरे अधिक मट्टी मालूम पड़े तब समझना चाहिये कि भूमि उत्तम है, समान होवे तो मध्यम तथा कम

१ इस पुतलेकी विधि आगे कही जावेगी । २ घर वगैरः बनानेकी विधि बतलानेवाला शिल्पशास्त्र ।

प्रदोषैः कटसंखड्गसमीरायां च तद्भुवि । ओं हूं फडित्यल्लमंत्रत्रातायामामभाजने ॥ २० ॥
 आमकुंभोर्ध्वगे सर्पिःपूर्णे पूर्वादितःसिताम्बरक्तां पीतां शितिं न्यस्य वर्तिसर्वाः प्रबोध्यताः २१
 अनादिसिद्धमंत्रेण मंत्रयेदाघृतक्षयात् । शुद्धं ज्वलंतीषु शुभं विध्यातीष्वशुभं वदेत् ॥ २२ ॥
 एवं संगृह्य सद्भूमिं सुदिनेऽभ्यर्च्य वास्त्वधः । संशोऽध्याध्यर्धमंभोक्षमगधरावधि वा तथा २३
 पातालवास्तु संपूज्य प्रपूर्वाधाप्य तां समाम् । प्रासादं लोकशास्त्रज्ञो दिशः संसाध्य सूत्रयेत् २४

होवे-गढा न भर सके तो खराब-अशुभ करनेवाली जमीन समझनी चाहिये ॥ १९ ॥ सूर्य
 छिपनेके बाद चटाईके परकोटेसे हवाको रोककर उस जगहकी ' ओं हूं फद ' इस कुदा-
 लादि अस्त्रमंत्रसे रक्षा करे ॥ २० ॥ पुनः उसकी पूर्वादि चारों दिशाओंमें कच्चे मट्टीके
 चार घड् रक्खे उतपर कच्चे सरवे रीसे भरे हुए रक्खे उनमें सफेद लाल पीली काली बत्ती
 पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे डालै फिर सबको जलावे ॥ २१ ॥ जबतक घी रहै तबतक अनादि
 सिद्धमंत्रसे मंत्रित करै । वस्त्रियां साफ जलतीं हों तो शुभफल कहना और यदि बुझतीं हुईं
 मात्तम पड़ै तो अशुभ फल कहना चाहिये ॥ २२ ॥ इसप्रकार उत्तम भूमिको तलाशकर
 शुभ दिनमें उसकी खोदी हुई नींवकी पूजा करके उसे शुद्ध करे । फिर पत्थर चगैरः
 के टुकड़ोंसे भरकर पहली भूमिके बराबर करले इस तरह व्यवहार शास्त्रका जानने-
 वाला बिशाओंको विचार कर अिन भवनका निर्माण करावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

चतुरस्रे कृते पंचवर्णचूर्णेन मंडले । चतुर्द्वारेषुपत्राब्जगर्भे न्यस्यांबुजोदरे ॥ २५ ॥
जिनादीन् मंगलैर्लोकोत्तमैश्च शरणैर्युतान् । अनादिसिद्धमंत्रेण पूजयेद्विग्दलेष्वनु ॥ २६ ॥
देवीर्जयाद्या जंभाद्या विदिकूपत्रेषु तद्ग्रहिः । लोकपालान् यजेद्विष्णु स्वस्वमंत्रैस्तथा ग्रहान् २७
तत्र संस्थाप्य सत्पीठे जिनार्चां समहोत्सवाम् । प्रीतः प्रीतेन संघेन संयुक्तो याजकोत्तमः २८
संस्नाप्यादाय गंधांबुचरुषुष्पाक्षतादिकम् । दद्याद्ग्रहलिं स्वमंत्रेण विश्वविघ्नोपशान्तये ॥ २९ ॥
पुंवं स्थंडिलपातालवास्तुपूजाद्वयोत्तरम् । विधाप्य मष्टुर्णं क्षेत्रमित्थं तद्वास्तु पूजयेत् ॥ ३० ॥

इति स्थंडिलपातालवास्तुद्वयपूजाविधानम् ।

उस जिन मंदिरके चारों दरवाजोंके सामने पांच रंगके चूर्णसे चौकोन मांडला बनाये और आठ पांखुडीके कमलके आकार तांबेके पात्रमें लोकोत्तम शरणरूप जिन आदिको अनादि सिद्ध मंत्रसे पूजे ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसके बाद विशाओंके चार पत्रोंपर जया आदि देवियोंका और विदिगाओंके चार पत्रोंपर जंभा आदि देवियोंका तथा उसके बाहर चार लोकपालोंका और नव ग्रहोंका अपने २ मंत्रोंसे पूजन करे ॥ २७ ॥ फिर उत्तम सिंहासनपर जिन भगवानकी प्रतिमाकी विराजमान करके वह उत्तम यजमान (पूजा करानेवाला) प्रमथुक्त श्रावकादि समूहसे धिरा हुआ प्रसन्न चित्तसे जिन पूजा करे ॥ २८ ॥ पहले तो सुगंधित जलसे अभिषेक करे पश्चात् जल चंदन अक्षतादि आठ द्रव्य लेकर अपने २ मंत्रसे सब विघ्नोंकी शांतिके लिये पूजा करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार चबूतरा और

रेलाभिस्त्रिर्गुधूर्वाभिर्वज्राग्राभिः सुलेखिते । एकाशीत्यष्टपत्राब्जगर्भकोष्टेऽत्र मंडले ॥ ३१ ॥
 गजेन्मध्याद्गुर्भेनादिसिद्धमंत्रेण सद्गुरुन् । जयादिदेवीः स्वैर्भैः पद्मेषु बहिरष्टसु ॥ ३२ ॥
 षोडशस्वर्गैर्द्विधादेवीः शासनदेवताः । द्विर्दशेषु द्वात्रिंशत्पद्मेष्विन्द्रानतो बहिः ॥ ३३ ॥
 इंद्रादीन् दिक्षु यज्यांश्च वज्राग्रेषु ततो ग्रहान् । जिनार्चां तत्र पीठस्थां संस्नाप्याभ्यर्च्य पूर्ववत् ३४
 सर्वोपधीपंचरत्नभिः श्रुतीर्थानुपूरितान् । पंचताम्रमयान् कुंभान् दधिदूर्वाक्षतार्चितान् ॥ ३५ ॥

नीलकी भूमि-इन दोनोंकी पूजाकरके चीकनी जगह करावे ॥ ३० ॥ इस प्रकार चबूतरा और
 नीलकी भूमि-इन दोनोंकी पूजाका विधान समाप्त हुआ । उसके बाद बृहत्शंति नाम एक
 लकीरं अष्टभागमें वज्र चिह्न वाली खींचे फिर उस कोठेके बीचमें आठ पत्तेवाला कमल
 बनाये ॥ ३१ ॥ उस कमलके मध्यमें पंच परमेष्ठियोंको स्थापन करके अनादि सिद्ध मंत्रसे
 पूजा करे । उसके बाद आठ कमलपत्रोंपर स्थित जया आदि आठ देवियोंकी पूजा करे ॥ ३२ ॥
 पश्चात् रोहिणी आदि सोलह देवियोंके चक्रेश्वरी आदि चौबीस शासन देवताओंके
 कांठे तथा वत्सीस यक्षोंके कोठे खींचे । उसके बाद चारों दिशाओंमें इंद्र वरुण आदि चार
 दिग्पालोंको स्थापन करे फिर वज्रके आगेके भागमें नव ग्रह स्थापन करना चाहिये ।
 उस मध्य कमलके ऊपर सिंहासन रखे उसपर जिनप्रतिमा रखकर उसका अभिषेक
 पूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसके बाद चारों कोनोंमें चार झिला तथा एक

तत्रारोप्यैकशोनादिसिद्धमंत्रेण मंत्रयेत्। ततस्तन्न्यासदेशेषु सूतश्रीखंडकुमुमम् ॥ ३६ ॥
 क्षित्वा मागेकमुत्क्षिप्य क्षेत्रगर्भे न्यसेत्तथा । पृथक्कोणेषु चतुरस्तेतः पंच शिलाः पृथक् ॥ ३७ ॥
 जिनादिर्मंत्रैर्ध्यास्य सुलभे तेषु विन्यसेत् । ततः प्रतोष्य शिल्प्यादीनि स्वक्षेत्रे आमयेद्भलिम् ३८
 शीठबंधेष्यसाधेव विधिः कृत्स्नो विधीयताम् । विकुंभो देहलीपञ्चशिलयोश्च निवेशने ॥ ३९ ॥

इति पठबंधविषयप्रतिष्ठाविधानम् ।

भीतर (सिंहासनके पास) इस तरह पांच शिला अथवा पकी हुई ईंटें रखले । उसके ऊपर शुभ लग्नमें पांच ताँबेके कलशोंको क्रमसे रखे उनके अंदर सर्वोषधी, पांच तरहके रत्नोंसे भिला हुआ नदी या झुणका जल भरा रहना चाहिये और घड़ोंके रखनेके स्थानपर पाराधिसा हुआ चंदन कुंकु रखे और सबको अनाविसिद्ध जिनादि(णमोकार)मंत्रसे मंत्रित करे । उसके बाद कारीगरोंको द्रव्यादिसे प्रसन्न करके अपने मंडलके आगे पूजाकरे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस प्रकार जिनादि मंत्र तथा शिला रखनेकी विधि पूर्ण हुई । वेदीके बांधनेमें (रचनामें) भी यही विधि करनी चाहिये और देहलीकी शिलां तथा वेदीकी कमलाकार गुमठीकी शिलाके रखनेमें भी पूर्वकथित विधि करनी चाहिये । परंतु देहलीके दरवाजे की तथा गुमठीकी कमलाकार शिलाके पिछले भागमें जया आदिके देवियोंकर सहित

१ ओं ङों नमोऽईंद्रयः स्वाहा, ओं ही नमः सिद्धेभ्यः स्वाहा, ओं हूं नमः सूरिभ्यः स्वाहा, ओं हों नमः पाठ-
 केभ्यः स्वाहा, ओं इः नमः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा । जिनादिमंत्राः खरशिलानिवेशनं ।

देहल्यञ्जशिलापुष्टे जयात्रप्रदलांबुजम् । संपूज्याल्लवेच्चाहृतसृतांभस्तीर्थवार्धटेः ॥ ४० ॥
 अथ किंचिदपर्यासे प्रासादे दक्षुणक्षणे । कारापकादिक्षेमार्थं पुरुषं संग्रवेशयेत् ॥ ४१ ॥
 शुरुनासोर्ध्वपर्यन्तैदिमाधस्तलांतरे । गर्भेपवरकं कृत्वा वेदिकां तत्र विन्यसेत् ॥ ४२ ॥
 मध्ये ताम्रमयं कुंभं वल्लयुग्मेन वेष्टितम् । क्षीराज्यशर्करापूर्णं गंधपुष्पाक्षतार्चितम् ॥ ४३ ॥
 स्थिरं संस्थाप्य तन्मध्ये प्रक्षिपेद्रत्नपंचकम् । सर्वौषधीश्च धान्यानि पारदं लोहपंचकम् ॥ ४४ ॥
 मौत्रार्णं वाथवा रौप्यं कारयित्वा नरं ततःसंस्नाप्याज्यादिसद्रव्यैःसमभ्यर्च्योक्षतादिभिः ४५

आठ पत्रांवाला कमल पूजकर अहंत देवके अभियेकके जलसे उन शिलाओंको धोना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसप्रकार वेदीबंध आदि तीनोंकी प्रतिष्ठाकी विधि जानना ॥ अब पुतलके प्रवेश करनेकी विधि कहते हैं,—उसके बाद अपने संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त जिन-मंत्रित तयार होनेमें कुछ रह जावे तभीसे शिल्पी वगैरके कल्याणकेलिये मनुष्याकार पुतलका प्रवेश करे ॥ ४१ ॥ उसकी विधि इस प्रकार है कि तोतेका समान नाकवाली पद्मशिलाके ऊपरके भाग और वेदीके निचले भागके बीचमें रहनेका स्थान (कमरा) बनाके उसमें प्रतिमा विराजमान होनेकी वेदीको रखे ॥ ४२ ॥ उसके बीचमें तांवेका घडा दो वस्त्रोंसे ढका हुआ रखे उस घड़ेमें दूध घी शक्कर भरदे और चंदन पुष्प अक्षतसे पूजन करे। उस घड़ेको स्थिर रखकर उसमें पांच तरहके रत्न, सर्व औषधी सब अनाज पारा लोहा आदि पांच धातुएं भरदे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अनंतर सोना अथवा चांदीका मनुष्याकार पुतला बनवाके उसे घी आदि उत्तम द्रव्योंसे स्नान

तूलोपधानयुक्तायां सुशुद्ध्यायां निवेद्य च । अनादिसिद्धमंत्रेण सम्यक् तत्राधिवासयेत् ४६
 पूर्वोक्तविधिना कृत्वा जिनैन्द्रार्चाभिषेचनम् । ततस्तं सम्यगुत्क्षिप्य विलग्रांशोदये शुभे ॥४७॥
 कृत्वा महोत्सवं तत्र कुंभे तं स्थापयेन्नरम् । एतत्कारापकादीनां विधानं शुभदं भवेत् ॥४८॥

इति पुरुषप्रवेशनविधानम् ।

धात्रि सिद्धयति सिद्धे वा सेत्स्यत्यर्चकृते शिल्पाम् । अन्वेष्टुं सेष्टशिल्पीन्द्रः सुलग्नशकुने ब्रजेत् ४९
 प्रसिद्धपुण्यदेशोत्था विशाला मष्टणा हिमा । गुर्वा चार्वा दृढा स्त्रिगधा सद्गधा कठिना घना ५०

कारके अक्षतादिसे पूज पटसूत्र (निवाड) से बुनी हुई रुईके गद्दे तकिये सहित सेज
 (खाट) पर रख अनादि सिद्धमंत्र पढकर लिटवै फिर जिनेन्द्रदेवका अभिषेक पूर्वक पूजन
 करके शुभलग्नके भवांशके उदयमें उच्छ्व सहित उस मनुष्यकार पुतलेको उस घडेमें रखे ।
 ऐसा विधान करनेसे कारीगरोंको कोई विघ्न नहीं आता शुभफल होता है ॥ ४५ । ४६ ॥
 ॥ ४७ । ४८ ॥ उसके पश्चात् जिनमंदिर तयार होरहा हो हो गयाहो या कुछ देरी हो
 पूजन करके उत्तम प्रतिष्ठमाचनानेवाले कारीगरको साथ लेकर शुभलग्न तथा शुभशकुनेमें
 प्रतिमाके लिए शिला लेनेको पहाडपर जाना चाहिये ॥ ४९ ॥ अर्हत प्रतिमाके लिये बहुत
 उत्तम मोटी शिला होनी चाहिये । तथा वह शिला प्रसिद्ध पवित्र जगह वाली हो बडी
 हो, चिकनी हो, ठंडी हो, मोटी हो, सुंदर हो, मजबूत हो, अच्छी गंधवाली हो, ठोस हो,

सद्वर्णात्यंततेजस्का विदुरेखाद्यदूषिता । सुस्वादा सुस्वरा चार्द्धद्विबाय प्रवरा शिला ॥ ५१ ॥
 तां प्राप्य भूवत् कृत्वार्ची प्रोक्ष्यमंत्रेण पूजिताम् । विभिद्योहं फट् स्वाहेद्धशस्त्राग्रेणाचयेत् पुनः ५२
 शुभेत्य ततो भूवत्तां शुभामशुभामपि । स्वस्य ज्ञातुं निशारंभे निमित्तमवलोकयेत् ॥ ५३ ॥
 स्नात्वैकति शुचौ देशे लिप्त्वा गंधैः शुभैः करौ । विधाय सिद्धभक्तिं च ध्यायेन्मंत्रमिभिमं हृदि ५४
 ओं नमोस्तु जिनेन्द्राय ओं प्रज्ञाश्रवसे नमः । नमः केवलिने तुभ्यं नमोस्तु परमेष्ठिने ॥ ५५ ॥

अच्छे रंगवाली हो अधिक चमकवाली हो, विदुरेखा आदि दोषोंसे रहित हो अच्छा स्वाद तथा अच्छी ध्वनि सिसमें हो—ऐसी शिला होनी चाहिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उसको लेकर और उससे भूमिकी तरह पूजकर प्रोक्षणमंत्रसे उसे धोकर ओं हूं फट् स्वाहा इस शस्त्रमंत्रसे शिला तराशनेके हथियारसे उसे निकाले . ॥ ५२ ॥ फिर धरपर जाकर जिनमंदिरकी भूमिकी तरह उस शिलाके शुभ अशुभ जाननेके लिये रात्रिके आरंभमें अष्टांग निमित्तोंको विचारै ॥ ५३ ॥ स्नान करके एकांत शुद्ध स्थानमें शुभ गंध द्रव्यको हाथपर लगाके सिद्धभक्ति पढकर इस आगे कहेजानेवाले। मंत्रलोकका मनमें ध्यानकरे ॥ ५४ ॥ वह इस प्रकार है—ओं जिनेन्द्र देवको नमस्कार है ओं प्रज्ञाश्रवण केवली परमेष्ठिन् तुमको नमस्कार है । विव्य शरीरवाली हे देवी सुद्धे स्वप्नं शुभ अशुभ कार्यको कह । इस विव्यमंत्रसे उस शिलाको शुभ (कल्याण-

१ ओं शं यं हः पः इवीं क्ष्वी स्वाहा । प्रोक्षणमंत्रः । ओं हूं फट् स्वाहा इति शस्त्रमंत्रः ।

स्वप्ने मे देवि दिव्यांगि ब्रूहि कार्यं शुभाशुभम् । अनेन दिव्यमंत्रेण शुभां ज्ञात्वा नयेच्च ताम् ५६
 प्रातस्तत्र पुनर्गत्वा कृत्वा प्राग्वद्विधिं रथे । सप्तकृत्वोभिमंत्र्याधिरोपितां तां प्रचालयेत् ॥ ५७ ॥
 यथा कोटिशिला पूर्वं चालिता सर्वविष्णुभिः । चालयामि तथोत्तिष्ठ शीघ्रं चल महाशिले ॥ ५८ ॥

इति शिलाभिमंत्रणमंत्रः ।

जिनालयं परीत्य त्रिःप्रवेद्यात्युत्सवेन ताम् । स्वह्निं सिक्त्वा स्वौषधीभिः सिद्धशक्तिस्तुती भजेत्
 क्रमो यथाहं योज्योऽयं दारुधात्वादिनापि च । निर्मापयिष्यमाणेऽहं द्विवे सिद्धेयवाऽऽगते ॥ ६० ॥

इति शिलानथनविधानम् ।

कारिणी) जानकर लाना चाहिये ॥ ५५। ५६ ॥ प्रातः कालके समम रथको लेजाकर वहां
 पूजनविधि करक सातवार उस शिलाको अनावि सिद्ध मंत्रसे मंत्रित करे । फिर उसको
 वहांसे आगे कहे हुए मंत्रको पढकर उठावे ॥ ५७ ॥ हे महाशिले ! जिस तरह लक्ष्मण कृष्ण आवि
 नौ नारायणोंने कोटि (करोडमन वजनवाली) शिला पूर्वसमयमें उठाई थी । उसी तरह मैं भी
 तुझे मूर्ति वनवानके लिये उठाता हूं । सो तू जल्दी उठ , ऐसा मंत्र कहकर उस शिलाको उठाके
 रथमें विराजमान करे ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिलाभिमंत्रण मंत्र कहा । वहांसे उत्सवके साथ
 जिनमंदिरमें लावे और उसकी तीन प्रदक्षिणा देकर शुभ दिनमें उत्तम औषधियोंसे शिलाको
 धोकर मंदिरमें रखले उसके बाद सिद्धस्तुति शान्ति विधान करे ॥ ५९ ॥ जैसा क्रम (विधि)

सुलझे शांतिकं कृत्वा सत्कृत्य वरशिल्पिनम् । तां निर्मापयितु जैनं विवं तस्मै समर्पयेत् ॥ ६ ॥
सद्दृष्टिर्वास्तुशास्त्रज्ञो मन्त्रादिविरतः शुचिः पूर्णांगो निपुणः शिल्पो जिनाचार्यायां क्षमादिमान् ६ २
शांतिसन्नपथस्थनासाश्रयाविकारदृक् । संपूर्णभावरूपास्तु विद्वांगं लक्षणान्वितम् ॥ ६ १ ॥
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तं प्रातिहार्याक्यक्षयुक् । निर्माण्य विधिना पीठे जिनविवं निवेशयेत् ॥ ६ ४ ॥

पत्थरकी शिलाका कहागया है वैसा ही काष्ठ और धातु वगैरके अर्हतविंब व सिद्धां विंब-
वोंके तयार करानेमें व तयार होके दूसरे स्थानसे आये हुए विंबमें । जानना इसप्रकार
शिला वगैरके लानेका विधान पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥ उसके बाद शुभलग्नमें शांति विधान
करके चलुर कारीगरको आदरपूर्वक लाकर जिनविंब तयार करानेके लिये शिलाको उसे
सुपुई करदे ॥ ६१ ॥ जो अच्छी निगाहवाला हो शिल्प शास्त्रको जानने वाला, मदिरा मांस
आदि निथ वस्तुओंका त्यागी हो, मनवचन कायसे शुद्ध हो शरीरके अवयवोंसे पूर्ण हो चहु
र हो क्षमा आदि गुणोंवाला हो वह शिल्पी जिन प्रतिमाके बनाने योग्य कहा गया है ॥
॥ ६२ ॥ जो शांत, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासन्नस्थित अविकारी दृष्टिवाली हो जिसका अंग
वीतरागपने सहित हो अनुपम वर्ण हो और शुभ लक्षणों सहित हो । रौद्र आदि वारह

१ उक्तं च—नारथंतोन्मालितास्तद्वा न विस्फारितमीलिता । तिर्यगूर्ध्वमधोदृष्टि र्जथित्वा प्रयत्नतः ॥ नासाग्रनि-
द्विता शांता प्रसन्ना निर्विकारिका । वीतरागस्य मध्यस्था कर्तव्या दृष्टिक्रसमा ॥ २ रौद्र, कुशांग, सांक्षिसांग, चिपिटनाक्षिक,
विकल्पकनेत्र, हीनमुख, महोदर, महाहृदय, महावस, महाकटी, महापाद, हीनजंघा, शुक्लजंघा—ये दोष हैं ।

स्थापितस्याचलस्थाने पीठस्याक्षूणलक्ष्मणः । नयेत्समीपं प्रतिमां तत्रारोपायितुं स्थिगाम् ६५
 सौत्रर्णं राजतं ताम्रं शैलं वा चतुरस्रकम् । रम्यं पत्रं विनिर्माण्य सदलं मसृणं तथा ॥ ६६ ॥
 तिर्यग्ध्वार्धप्रेरेखाभिर्बज्राग्राभिः समालिखेत् । मंडलं व्येकपंचाशत्कोष्टकं श्लक्ष्णरेखकम् ॥ ६७ ॥
 अकारादि हकारांतं कोष्टैर्वैकमक्षरम् । बाह्यकोणस्थितात्कोष्टात् प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥ ६८ ॥
 मध्यमे कोष्टके तत्र हंकारं सोर्ध्वरेफकम् । जयादिदेवताधिष्टपत्रपद्मस्य मध्यगम् ॥ ६९ ॥
 वज्राग्रे प्रणयं दद्यात्कापवीजं तदंतरे । विर्मायामात्रयावेष्ट्य निरुंध्यादं कुशेन तु ॥ ७० ॥

दोषोंसे रहित हो अगोक्त वृक्षादि प्रातिहार्योंसे युक्त हो और दोनों तरफ यक्ष यक्षीसे वेष्टित
 हो ऐसी जिन प्रतिमाको वनवाकर विधि सहित सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥
 वह विधि इत्तरह है कि निश्चल स्थानमें रखे हुए सिंहासनके ऊपर निर्दोष लक्षणवाली
 प्रतिमाको स्थिर रूपसे विराजमान करे ॥ ६५ ॥ फिर सौना चांदी तांबा पत्थर—इनमेंसे
 किसी एकका चौकोन चिकना पत्र वनवावे उसपर सीधी तिरछी अग्रभागमें वज्र
 चिन्हवाली आठलकीरं सींचे उसमें उनचास कोठोंवाला सीधी रेखाओंकर युक्त एक मंडल
 खींचे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उन कोठोंमें अकारसे लेकर हकारतक एक एक अक्षरको लिखे ॥ ६८ ॥
 बीचके कोठमें ' हृ ' लिखकर उसके चारों तरफ आठदलका कमल बनावे उसमें जया
 आवि आठ देवताओंका स्थापन करे ॥ ६९ ॥ वज्रके अगाडीके भागमें ' ओं ' लिखे दो
 वज्रोंके मध्यमें ' ह्रीं ' लिखे और ईकारसे तीनवार चारों तरफसे घेरकर ' क्रीं ' इस अंकु

एवं विलिख्य संस्नाप्य यंत्रं क्षरिणं चांबुना । सुगंधिद्रव्यमिश्रेण चंदनेनानुलेपयेत् ॥७१॥
 सत्पुष्पाक्षतनैवेद्यदीपधूपफलैर्यजेत् । सुगंधिप्रसवैस्तत्र जप्यमष्टोत्तरं शतम् ॥ ७२ ॥
 संजप्य मातृकावर्णमालामंत्रेण तत्त्वतः । ओं नमोऽर्हमुखं ह्रीं क्लीं कौं स्वाहातेन तत्समेत् ॥७३॥
 पत्रमध्ये च यत्पद्मं पीठे गंधेन तच्छिखेत् । कर्पूरं कुंकुमं गंधं पारदं रत्नपंचकम् ॥ ७४ ॥
 क्षिप्वातपत्रमारोप्य प्रतिमां स्थापयेत्ततः । स्थिरप्रतिष्ठाविधये दिने लग्ने च शोभने ॥ ७५ ॥

शसे ढक्कन लगवि ॥ ७० ॥ इस प्रकार यंत्रको लिखकर सुगंधी द्रव से युक्त दू. और जलसे यंत्रका अभिषेक कर चंदनका लेप करे ॥ ७१ ॥ अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल-इन आठ द्रव्योंसे यंत्रकी पूजा करे और सुगंध वाले चमेली आदिके फूलोंसे एकसौ आठवार आगे कहे जाने वाले मंत्रका जाप करे ॥ ७२ ॥ वह मंत्र इस तरह है कि " ओं नमो ह्रीं " इस पदको पहले रक्खे बीचमें अकारादि वर्ण मालाके अक्षरोंको और अंतमें " ह्रीं क्लीं कौं स्वाहा " इस पदको रखे—तब " ओं नमो ह्रीं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ऐ ओ औ अं अः क ख घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह ह्रीं क्लीं कौं स्वाहा " ऐसा जपनेका मंत्र हुआ ॥ ७३ ॥ उस तांवेके पत्रमें लिखा हुआ जो कमल है उसे धिसे हुए चंदनसे सिंहासनपर भी लिखे और कर्पूर कुंकु चंदन पारा पांचतर-

१ ओं नमोऽर्ह अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ऐ ओ औ अं अः । क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व श ष स ह । ह्रीं क्लीं कौं स्वाहा ॥ इति जपमंत्रः ॥

स्थापयेदहता छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णकम् । पीठं भामंडलं भाषां पुष्पट्टाष्टिं च दुडुभिम् ॥ ७६ ॥
 स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम् । लाञ्छनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षं यक्षीं च वामके ॥ ७७ ॥
 गौर्गजोश्वः कपिः कोकः कमलं स्वस्तिकः शशी । मकरः श्रीद्रुमो गंडो महिषः कोलसेधिकौ ॥ ७८ ॥
 वज्रं मृगोऽन्नष्टगरं कलशः कूर्म उत्पलम् । शंखो नागाधिपः सिंहो लाञ्छनान्यहतां क्रमात् ७९
 सितौ चंद्राकसुविधी श्यामलौ नेपिसुव्रतौ । पद्मप्रभसुपूज्यौ च रक्तौ मरकतप्रभौ ॥ ८० ॥

हके रत्न उत्तमं त्रिलो कपर छत्र लगावे तव प्रतिमाको सिंहासनपर विराजमान करे । यह
 विधि प्रतिष्ठाके निर्विघ्न समाप्तिकेलिये कही गई है । सो इसे शुभदिन और शुभ लगनमें करे
 ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसप्रकार वेदीपर सिंहासनमें प्रतिमा विराजमान करनेकी विधि पूर्ण हुई ।
 फिर अर्हत प्रतिमाको तीन छत्र दो चमर अशोक वृक्ष हुंडुभी बाजा सिंहासन भामंडल दिव्य
 भाषा पुष्पवर्षा—इन आठ प्रातिहार्योसि शोभित करे ॥ ७६ ॥ उसके वाद स्थिर और चल दोनों
 प्रतिमाओंमें सिंहासनके नचि जैसा शास्त्रमें कहा है वैसे ही सीधी बाजूमें भगवानके चिन्हको
 और बाई तरफ यक्ष और यक्षीको खडा करे ॥ ७७ ॥ अर्हतोंके शरीरके चिन्ह क्रमसे बैल १
 हाथी २ घोडा ३ बंदर ४ चकवा ५ कमल ६ साथिया ७ चंद्रमा ८ मगर ९ श्रीवृक्ष १० गेंडा
 ११ भंसा १२ सूअर १३ सेही १४ वज्र १५ हरिण १६ बकरा १७ मच्छ १८ कलश १९ कलुआ
 २० कमलकी पांछुरी २१ शंख २२ सर्प २३ सिंह २४—ये चौबीस हैं । इनमेंसे जिस
 भगवानका जो चिन्ह है उसे सिंहासनके नीचे भागमें खुदाना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ऋष-

सुपार्श्वपार्श्वौ स्वर्णाभान् शेषांश्चालेखयेत्स्मरेत् । न वितस्तयधिकार्णात्तु प्रतिमां स्वर्गुहेचयेत् ८१
 स्थिरां स्थाने निवेश्यार्ची चलां वा यागमंडले । प्रतिष्ठाचार्ययष्टारौ स्थापयेतां यथाविधि ८२
 नार्ची श्रितानिष्टरूपां व्यंगितां प्राक् प्रतिष्ठिताम् । पुनर्घटितसंदिग्धां जर्जरां वा प्रतिष्ठयेत् ॥ ८३ ॥

भादि चौबीसों तीर्थकरोंका रंग क्रमसे कहते हैं—चंद्रप्रभ, पुष्पदंत-ये दोनों सफेद रंगके हैं
 नेमिनाथ, सुव्रतनाथ-ये काले रंगवाल हैं । पद्मप्रभु, वासुपूज्य इनका लालरंग है । सुपार्श्व
 पार्श्वनाथ-नीले रंगवाले हैं और बाकी वचे हुए सोलह तीर्थकरोंका शरीर तपाये हुए
 सौनिके रंगवाला है । अपने घरके चैत्यालयमें एक विलंस्तसे अधिक परिमाणवाली
 प्रतिमा नहीं रखे जैनमंदिरमें ही रखकर पूजनकरे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ स्थिर प्रतिमाको अपने पूज-
 नस्थानमें चलप्रतिमाको यागमंडलमें रखकर इंद्र और यजमान विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करें ॥
 ८२ ॥ ऐसी प्रतिमा प्रतिष्ठायोग्य नहीं है कि जो पहलेकी प्रतिष्ठिता हो, जिनलिंगके सिवाय
 दूसरा आकार हो, पहले शिव आदि आकार बना हो फिर फोडके जिनदक्का आकार किया
 गया हो, अथवा उसके आकारमें संदेह हो कि जिनविव है या दूसरा आकार है, और
 बिलकुल जीर्ण होगई हो ॥ ८३ ॥

१ अथात्-संप्रवक्ष्यामि गृहविवस्य लक्षणम् । एकागुलं भवेच्छ्रेष्ठं द्वयंगुलं धननाशानाम् ॥ त्र्यंगुले जायते वृद्धिः षोडश-
 स्याच्चतुरंगुले । पंचांगुले तु वृद्धिः स्यादुद्वेगस्तु षडंगुले ॥ सप्तांगुले गवा वृद्धिर्हानिरष्टांगुले मत्ता । नवांगुले पुत्रवृद्धिर्धननाशो
 दशांगुले ॥ एकादशांगुलं विवं सर्वकामार्थसाधकम् । एतत्प्रमाणमाह्यातमत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ इति प्रयातरेप्युक्तम् ।
 २ द्वादशांगुलपर्यन्ते यथाद्यासानतिक्रमात् । स्वगृहे पूजयेद्विंशं न कदाचित्तोधिकम् ॥

श्रुतेन सम्यग्ज्ञातस्य व्यवहारप्रसिद्धये । स्थाप्यस्य कृतनाम्नोत्स्फुरतो न्यासगोचरे ॥ ८४ ॥
साकारे वा निराकारे विधिना यो विधीयते । न्यासस्तदिदमित्युक्त्वा प्रतिष्ठा स्थापना च सा ८५

इति प्रतिष्ठालक्षणम् ।

स्थाप्यं धर्मानुबंधांगं गुणी गौणगुणोयवा । गुणो गौणगुणी तत्र जिनाद्यन्यतमो गुणी ॥ ८६ ॥
गुणो निःस्वेदतादिः स्याद्बाह्यो ज्ञानादिरंतरः । सोऽर्हतां पंचकल्याणद्वारेणादौ प्रपंच्यते ॥ ८७ ॥
गर्भावतारजन्माभिषेकनिष्क्रमणोत्सवान् । वृत्तान् ज्ञानाशिवोद्भवौ भाव्यौ विवेर्हतोर्पयेत् ॥ ८८ ॥
कल्याणे प्रथमे श्रैदी रत्नवृष्टिस्तथोपदा । मातुःश्यादिकृतांगभशोधनादिरूपासना ॥ ८९ ॥

जिसकी स्थापना करना हो उसका स्वरूप शास्त्रसे अच्छीतरह जानकर व्यवहारमें प्रसिद्धिकेलिये पापाण आविमें उसके गुणोंके स्मरण करनेको नाम रखना । चाहे वह उसी तरहके आकारवाली मूर्ति हो । या निराकार हो उसे ही प्रतिष्ठा अथवा स्थापना कहते हैं ॥ ८४ ॥
॥ ८५ ॥ जिसकी स्थापना की जावे वह गुणी धर्मका कारण हो । उसमें भी अर्हत्के गुण बाह्य निःस्वेदता (पसेव रहितपना) आवि हों तथा अंतरंग ज्ञानादि हों । इसी तरह जिसकी मूर्ति हो उसमें उसीके गुणोंकी स्थापना करनी चाहिये । यहांपर सबसे पहले तीर्थकर प्रभुकी पंचकल्याणकोंके द्वारा प्रतिप्रविधि वर्णन करते हैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ गर्भावतारण, जन्माभिषेक, तपकल्याणक ज्ञानकल्याणक, और मोक्षकल्याणक अर्हत्की प्रतिमामें स्थापनकरे । अर्थात् अप्रतिष्ठित अर्हत् प्रतिमाके पांचों कल्याणवत्सव विधिपूर्वक करे ॥ ८८ ॥ पहले गर्भा-

स्वमानंदानुबंधश्च प्रभूष्णोर्गर्भसंक्रमः । स्वप्नावलोकनं मातुस्तत्फलश्रवणं तथा ॥ ९० ॥
 गर्भशोधनशुश्रूषे देवीभिर्गर्भसंक्रमः । सांगसर्गक्रमः पित्रोः स्थाप्याच्चैद्रेशतत्क्रिया ॥ ९१ ॥
 द्वितीये स जगत्क्षोभानंदं जन्म जिनेशिनः । निःस्वेदत्वाद्यतिशया विजयाद्यमरीकृते ॥ ९२ ॥
 गनन्युपासनाजातकर्मणी त्रिदशागमः । शच्याहर्तोरपणं पत्युः सुमेरौ नयनं सुरैः ॥ ९३ ॥
 स्नपनं चर्चनं भूपा नामकर्म स्तवक्रिया । वृत्यं नगर्यानयनं राजांगणनिवेशनम् ॥ ९४ ॥
 संनिधापनमंत्रायाः स्तुतिः प्रामृतनर्तने । रक्षादिकं राज्यभोगशुक्तिः स्थाप्यैद्रसेवया ॥ ९५ ॥

वतरण कल्याणकर्म कुवेरकृत रत्नोंकी वर्षा, देवियोंसे की गई माताकी सेवा, श्री आदि षट्
 कुमारिका देवियोंसे की गई गर्भशोधना, स्वर्गोंके देखनेके बाद पतिके पास फल सुनना
 उसके सुननेसे माताको आनंद, होनेवाले तीर्थकरका गर्भमें आना और इंद्रकर की गई माता
 पिताकी पूजा—इतनी विधियां करनी चाहिये ॥ ८९।९०।९१ ॥ दूसरे कल्याणकर्म—जग-
 तमें क्षोभ होना आनंद होना, जिनेन्द्र तीर्थकरका जन्म होना, निःस्वेदता आदि जन्मके
 दश अतिशयोंका प्रगट होना, विजया आदि देवियोंकर माताकी सेवा जातकर्म संस्कार
 देवोंका आना, इंद्राणीकर भगवान बालकको इंद्रकी गोदमें सौपना, भगवान बालकको
 सुमेरु पर्वतपर लेजाना ॥ ९२।९३ ॥ वहाँ देवोंकर स्नान कराना, आभूषण पहराना, नाम
 रखना, प्रभुकी स्तुति करना, वृत्य करना नगरीमें लाना राजमहलके आंगनमें पहुंचना
 माताको बालक सुपुई करना फिर इंद्रको वृत्य करना प्रभुकी सेवाकेलिये देवोंको छोड

स्थाप्यस्वृतीये निर्वेदस्तत्प्रशंसा सुरार्पिभिः । दीक्षावृक्षाः सुरैः स्नानाद्युपकारो वनायनम् ९६
 दीक्षाग्रहणमिद्रेण केशप्रत्येपणदिकम् । वस्त्रादित्यजनं ज्ञानचतुष्कोद्भासनं क्रिया ॥ ९७ ॥
 कार्यो कल्याणसंस्कारमालामंत्राधिरोपणम् । प्रियंगु सज्जनादीनि तिलकं चाधिवासना ९८
 श्रीमुखोद्घाटनं तुर्यं नेत्रोन्मीलनमर्हतः । स्थाप्याश्चातर्गुणा घातिक्षयजातिशयास्तथा ॥ ९९ ॥
 आस्थानमंडलं देवोपनीतातिशयाः पुनः । प्रतिहार्योष्टकं चिह्नं यक्षः शासनदेवता ॥ १०० ॥
 कल्याणपंचकारोपव्यक्तिः कंकणमोक्षणम् । सा जाद्भवकृतिःकृत्या महार्घस्यावतारणम् १०१

जाना प्रभुको राज्य भोगना—ये सब विधियां करनी चाहिये ॥ ९४।९५ ॥ तीसरे कल्याण-
 कमें भगवानको वैराग्य होना, लौकांतिक देवोंकर स्तुति, दीक्षावृक्ष, देवताओंकर
 कराया गया स्नान, पालकीमें विठाके वनको लेजाना, भगवानकर स्वयं दीक्षाग्रहण, इंद्रकर
 लुंचितकेगोंको रत्नपिटारिमें रखके क्षीरसमुद्रमें क्षेपण करना वस्त्रादित्याग, चौथे
 (मनःपर्यय) ज्ञानका प्रगट होना ॥ ९६ । ९७ ॥ अडतालीस मालामंत्रोंका जाप करना
 इत्यादि ॥ ९८ ॥ चौथे कल्याणकमें—भगवानके मुखका उघाडना नेत्रोन्मीलनक्रिया
 घातिया कर्मोंके क्षयस उत्पन्न हुए अनंत बानादिगुणोंका स्थापन समवहारण बनाना
 तथा अशोक वृक्षादि अतिशयोंका प्रगट करना आठ प्रतिहार्य यक्ष शासनेद्वता—इनको
 समीप रखना महान अर्घ देना दिव्यध्वनि होना—इत्यादि क्रिया करनी चाहिये ॥ ९९ ॥
 ॥ १००।१०१ ॥ पांचवें कल्याणकमें—आठ पत्रोंमें आठ गुणोंको लिखके और पूजके मोक्ष-

तद्रूप्याणक्रिया चान्त्ये मध्येऽज्वस्याभवं गुणान्। पत्रेष्वष्टसु चाभ्यर्च्ये ध्मावार्चयान् शिवक्रिया।
 समालाद्युत्सवा कार्या ततश्चाभिषवक्रिया । मरुद्विसर्गबलयाशीर्दीक्षामोक्षक्षमापणाः ॥ १०३ ॥
 प्रतिष्ठोक्तविधिं सम्यग्बिधायारोपयेद् ध्वजम्। प्रासादे तेन भात्येष सर्वेषां स्याच्छुभाय च १०४
 स्थाप्यं तु विन्धे सिद्धानां सम्यक्त्वादिगुणाष्टकम्। रत्नत्रयं च विधिवच्छेषाणां स्वस्वमंत्रतः १०५
 सर्वज्ञवागभिव्यक्तानेकांतात्मार्थसार्धवत् । न्यसेद्वाग्देवतार्चादावंगपूर्वप्रकीर्णकम् ॥ १०६ ॥

क्रिया करनी चाहिये ॥ १०२ ॥ फिर फूलमालाका उत्सव करके प्रभुका अभिषेक करे
 फिर देवताओंका विसर्जन रथयात्रा संघपतिको आशीर्वाद यज्ञ दीक्षाका छोडना और
 आये हुए सब सज्जनोंसे क्षमावनी करना ॥ १०३ ॥ इस तरह प्रतिष्ठाशास्त्रमें कही
 विधिको अच्छी तरह करके जिन मंदिरके ऊपर ध्वजा चढाये । उस ध्वजासे जिन मंदि-
 रकी एक तो शोभा होती है दूसरे राजा प्रजा सबको कल्याण होता है ॥ १०४ ॥ इसप्रकार
 अर्हत प्रतिमाकी विधि संक्षेपसे कही गई । इसका विस्तार आगे कहेंगे । अब सिद्ध आदिकी
 मूर्तिकी प्रतिष्ठाका विधान कहते हैं-सिद्धोंकी प्रतिमामें सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंका स्थापन
 करे और वाकी आचार्य आदि परमेश्वि्योंकी प्रतिमामें विधिपूर्वक अपने २ मंत्रसे सम्य-
 गर्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र्य इन तीन रत्नोंका स्थापन करे ॥ १०५ ॥ सर्वज्ञके मुख-
 कमलसे निकली हुई, गणधरोंकर प्रगट किया गया है अनेकांत स्वरूप पदार्थोंका समूह

१ शक्तिे माकिरु रव्य देकर सगवानके नामसे फूलमाला लेकर चढाना ।

अनंतार्थाक्षरात्मानं पुस्तकार्थमुत्स्मरन् । संशोध्य पुस्तकं तच्च वागभंत्रेण प्रतिष्ठयेत् ॥ १०७ ॥
 ध्यात्वा यथास्त्रं गुर्वादीन्न्यस्येत्तत्पाठुकायुगे । निषेधिकायां संन्याससमाधिमरणादि च १०८
 यक्षादिप्रतिविवेषु यंत्रं प्राचर्य च विन्यसेत् । ग्रहे तार्कोदये ध्यायन् जात्यादीन् यक्षकर्मम् १०९
 सिद्धयक्रादिपत्रादिप्रतिष्ठाप्येवमूह्यताम् । ग्राह्यः प्राणो ग्रहश्चंद्रोः शान्ति क्रूरे च भास्वतः ॥ ११० ॥

इति प्रतिष्ठेयलक्षणम् ।

जिसका पेसी सरस्वती देवीकी पूजामें अंग, पूर्व (चौदह पूर्व) प्रकीर्णक (बाह्य अंग) स्वरूप अनंत अर्थ अक्षर स्वरूप शास्त्राकार रचना कराके और उस शास्त्रको सुधवाके सरस्वतीमंत्रसे उसकी प्रतिष्ठा करे । यह शास्त्रप्रतिष्ठा हुई ॥ १०६।१०७ ॥ अब गुरुकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कहते हैं,— निर्यथादि गुरुओंका ध्यान करके और उनके संन्यास (समाधि) मरणकी छतरी (एक तरहका मठ) बनवाके उनके चरण युगल (दो) बनावे ॥ १०८ ॥ यक्षादि प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठामें पंचवर्णके चूर्णसे लिखे यंत्रको सूर्योदयमें चमेली आदिके पुष्पोंसे पूजे और ध्याये ॥ १०९ ॥ पत्रपर लिखे हुए सिद्धचक्र यंत्र तथा आदि शब्दसे जंबू-द्वीप त्रैलोक्यय श्रुतस्कंध नंदीस्वर आदि लिखे यंत्रोंकी भी प्रतिष्ठा इसी तरह जानना चाहिये ।

१ कर्पूरमगुधश्चैव कस्तूरी चंदनं तथा । कंकोलं च भवेदेभिः पंचभिर्यक्षकर्मसम् ॥ २ अनावृतादि यक्ष पद्मावती यक्षीकी प्रतिमा । ३. कपूर अगुध कस्तूरी चंदन कंकोल-इन पानोंको पीसके बनाया गया चूर्ण ।

देशनातिकुलाचारैःश्रेष्ठो दक्षः सुलक्षणः।त्यागी वाग्मी शुचिः शुद्धसम्यक्त्वःसद्गतो युवा॥१११
 श्रायकाध्ययनज्योतिर्वास्तुशास्त्रपुराणं चित् । निश्चयव्यवहारज्ञः प्रतिष्ठाविधिवित्प्रभुः ॥ ११२॥
 विनीतः सुभगो गंदकपायो विजितेन्द्रियः । जिनेज्यादिक्रियानिष्ठो भूरिसत्त्वार्थवांधवः॥११३॥

ज्ञात देवताकी प्रतिष्ठामें चंद्रप्राण (वाँया नाकका स्वर) लेना और क्रूर देवताकी प्रतिष्ठामें
 सूर्यप्राण (मीथा नाकका स्वर) लेना । चंद्रप्राण और सूर्यप्राणको ही नामनाडी, वक्षिण
 नाडी कहते हैं ॥११०॥ इसप्रकार प्रतिष्ठायोग्यका लक्षण कहा । अब प्रतिष्ठा करनेवाले प्रतिष्ठा-
 चार्यका लक्षण कहते हैं; प्रतिष्ठा करनेवालेको सौधर्म इंद्र समझना चाहिये । यह कैसा होवे
 यह कहते हैं । जिन धर्मकी प्रभावनावाले देशमें उत्पन्न हुआ हो. मातापक्ष और पितापक्ष दोनों
 जिसके उत्तम हों, शास्त्राचार लोकाचार दोनोंको पालने वाला हो, दूसरेका अंतरंग जाननेमें चतुर
 हो, सामुद्रिक शास्त्रमें कहे गये शरीरके शुभ चिन्होंवाला हो, दानी हो । मिष्ट बोलनेवाला, मन
 बचनकायसे शुद्ध, निर्दोष सम्यक्त्ववाला. निर्दोष पाँच अणुव्रत पालनेवाला और सोलह वर्षसे
 अधिक उमरवाला जवान हो॥ १११॥ श्रावकाचार, चंद्रप्रवृत्ति आवि ज्योतिषशास्त्र, स्थलगतचू-
 लिकामें कहेगये महल आवि बनानेके विधानवाले छिल्पिशास्त्र और पुराण(इतिहास)शास्त्रोंका
 जाननेवाला हो, निश्चयनय व्यवहार-ज्ञ न दोनोंको जाननेवाला, प्रतिष्ठा विधिका जाननेवाला और
 तेजस्वी हो ॥११२॥ आशु तप चिया कुलाचारादिके अधिक जनोंकी विनय करनेवाला, सबको

१ लोको देशः पुरं राज्ये तीर्थे दानं तपोद्वयं । पुराणस्याग्रधान्धेयं गतयः फलमित्यपि ॥

दृष्टप्रक्रियो वार्तेः संपूर्णांगः परार्थकृत् । वर्णो गृहो वा सद्दृष्टात्तरशूद्रा याजका शूद्रात् ॥ ११४ ॥
 गुणिनेऽप्यगुणे व्यर्थी गुणवत्यगुणा अपि । याजकेऽन्ये कृतार्थाः स्युस्तन्मृग्योसौ स्फुरद्गुणः ११५

प्यारा, मंद क्रोध मान माया लोभरूप कषायोंवाला अर्थात् शांत स्वभाववाला, खोटे विषयोंसे
 इंद्रियोंको रोकनेवाला जितेंद्री, जिनपूजा आदि छह आवश्यक गृहस्थोंके कर्मोंका करने-
 वाला, दृढ़ प्रतिज्ञावाला महान् धनवान् बहुत कुटुंबवाला हो ॥ ११३ ॥ जिसने प्रतिष्ठाविधि
 जाननेवालोंसे कराई गई प्रतिष्ठा देखी हो अथवा आप अपने हाथसे की हो, शिल्प आदि
 विद्यासे जीविका नहीं करनेवाला, हीन अधिक शरीरके अवयवोंसे रहित संपूर्ण अंगवाला हो,
 उत्तम प्रयोजन अथवा पराया उपकार करनेवाला हो, आठमूल गुण और बारह उत्तर गुण-
 वाला पहले-ब्रह्मचर्य आश्रमवाला हो या गृहस्थार्थमवाला हो, ग्रहणकरने योग्य वस्तुको
 ग्रहण करनेवाला सदाचारी हो शूद्र वर्ण न हो ब्राह्मणादि तीन उत्तम वर्णोंका धारक हो ॥
 ऐसा प्रतिष्ठा करनेवाला इंद्रसमान प्रतिष्ठाचार्य कहा गया है ॥ ११४ ॥ प्रतिष्ठाविधि करने-
 वाला आचार्य यदि अपने पूर्वोक्त गुणसहित न हो तो गुणवान् यजमानका भी सर्व नाश
 कर देता है और पूर्वोक्तगुणोंवाला हो तो गुणरहित-निर्गुणी, प्रतिष्ठामें धन खर्च
 करनेवाले यजमानको भी कृतार्थ कर देता है—उसके प्रयोजनोंको सिद्ध कर देता है । इसलिये

१ वानप्रस्थ और भिक्षुको प्रतिष्ठा करानेका निषेध है दूसरी जगह ऐसा भी कहा है कि चौथी प्रतिमासे आठवीं
 प्रतिमा तक पांच प्रतिमावालोंमें कोई हो वही अधिकारी है ।

पाक्षिकाचारसंपन्नो धीसंपद्भुवंधुरः । राजमान्यो वर्दान्यश्च यजमानो मतः प्रभुः ॥ ११६ ॥
 ऐदंयुगीनश्रुतधृदुरीणो गणपालकः । पंचाचारपरो दीक्षाप्रवेशाय तयोर्गुरुः ॥ ११७ ॥

इति इंद्रादिलक्षणम् ।

निश्चित्य लभ्यमासन्नं दिवसेषु कियत्स्वपिसुमुहूर्ते प्रतिष्ठार्थं दातेद्रं स्वग्रहं नयेत् ॥ ११८ ॥

प्रतिष्ठाचार्य उत्तम गुणोंवाला हूँढना चाहिये और उसीसे प्रतिष्ठा कराना चाहिये अयोग्योंसे कभी नहीं कराना ॥ ११५ ॥ अब प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाले यजमानका लक्षण कहते हैं— पांच पाप तीन मविरा आदि मकार-इन आठोंको त्यागरूप आठमूलगुण स्वरूप पाक्षिक आचारका धारण करनेवाला हो ज्ञानवैराग्य सहित हो बहुतधन और बंधुजन जिसके अधिकारमें हों लोकमान्य हो राजसे जिसने संमान (इज्जत) पाया हो उदार चित्तवाला दानी हो-ऐसा यजमान होना चाहिए ॥ ११६ ॥ अब दीक्षा देनेवाले आचार्यका स्वरूप कहते हैं—व्यवहार शास्त्रको जानने वाला, श्रुतज्ञानियोंमें मुख्य, साधुसंधका पालनेवाला दर्शनाचार आदि पांच आचारोंके पालनेमें लीन-ऐसा आचार्य; यजमान और प्रतिष्ठाचार्यको इस प्रतिष्ठा करानेकी दीक्षा देनेवाला गुरु कहा गया है ॥ ११७ ॥ इस प्रकार इंद्र (प्रतिष्ठाचार्य) यजमान (प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाला) और इस प्रतिष्ठाकार्य करनेकी दीक्षा देनेवाले आचार्यका

१ त्रिथवाग् वाग्दीलक्ष्य बदान्यः परिकीर्तितः ।

पुरोगाक्षतपात्रोद्धययोषित्साधार्मिकान्वितः। गत्वा गृहं महेंद्रस्य नत्वेदं पौर्तिको वदेत् ॥ ११९॥
 न्यायेनोपार्ज्यं संरक्ष्य संवर्ध्यार्हन्महे धनम् । विनियुज्य परं श्रेयः प्राप्नुमिच्छामि संप्रति १२०
 केतच्च शुभहत्साध्यं क चायं स्वल्पको जनः। तथाप्यत्र यते योग्या यदि स्युः सहकारिणः १२१
 योग्यता चासकृद् दृष्टकर्मणां वोत्र गम्यते । किं परार्थैककार्यान् वः प्रत्यन्यद्वाच्यमस्त्यतः १२२

स्वरूप वर्णन किया । अब इंद्रप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं—प्रतिमा आविकी प्रतिष्ठा करानेमें धन खर्च करनेवाला यजमान, प्रतिष्ठाके सात आठ दिन वाकी रहनेपर जल्दी आनेवाली शुभ लग्नकां निश्चय करके प्रतिष्ठाकी विधि करानेकेलिये शुभ सुहूर्तमें प्रतिष्ठाचार्य—इंद्रके घरको बुलानेके लिये जावे ॥ ११८ ॥ उससमय ऐसे ठाठसे जावे कि स्त्रियां तो अक्षत भरे हुए पात्र हाथमें लिये गातीं हुई आगे जा रहीं हों और साथमें साधर्मी भाई हों । इसप्रकार यजमान प्रतिष्ठाचार्य—इंद्रके घर जाके उसे प्रणाम कर ऐसी प्रार्थना (वीनती) करे ॥ ११९ ॥ हे जितेंद्रिय ! मैंने न्यायसे धन पैदाकर इकट्ठा किया है और उसकी अच्छीतरह रक्षा की है अब मैं उसे अर्हंतविंश प्रतिष्ठाके उत्सवमें लगाकर उत्तम सुख प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ १२० ॥ कहां तो महान् कठिन यह कार्य और कहां तुच्छ शक्तिवाला मैं, सुमेरु सरसोंका सा फरक है तो भी आप सरीखे योग्य सत्पुरुष सहायक मिल जायगे तो वॉछित कार्य अवश्य सिद्ध हो जाइगा ॥ १२१ ॥ आपका कईवार यह प्रतिष्ठाकार्य देखा

१ वापीकूपतडागदेवतागृहअन्नपानआराम इत्यादिकं पूर्णं तत्र नियुक्तः पौर्तिकः यजमानः ।

इत्यभ्यर्थनया कार्यमंगीकार्यं तमालयम् । स्वमानीय चतुष्कोणज्वलद्दीपे सुपूरिते ॥ १२३ ॥
 चतुष्के रक्तसद्वस्त्रमच्छादितसुविष्टरे । उपवेश्य नदद्वाद्यनादसंगीतमंगलैः ॥ १२४ ॥
 कुल्याभी रक्तवस्त्रस्रग्भूपाकाश्मीरचारुभिः । युवतीभिश्चतस्रभिश्चंदनं तस्य वर्धयेत् ॥ १२५ ॥
 ततः स तैलमारोग्य पीतोद्दतनपूर्वकम् । तीर्थमालापाठजिनाद्याशीर्वादरवाकुलम् ॥ १२६ ॥
 पीतखल्यापोह्य तैलं परिपेच्य सुखांबुभिः । सुभोज्यावर्ज्य भूषास्रगवस्त्रचंदनवंदनैः ॥ १२७ ॥

जाना हुआ है इसलिये आपकी ही योग्यता बहुत अच्छी है । दूसरी बात यह है कि आप दूसरोंका वांछित प्रयोजन सिद्ध कर देते हैं इसलिये हम आपको अधिक क्या कह सकते हैं ॥ १२२ ॥ ऐसी प्रार्थना करके प्रतिष्ठाकार्य करनेकी स्वीकारता (मंजूरी) कराके प्रतिष्ठा-चार्य (इंद्र) को अपने घर लाये । वहां चौकी बिछाकर उसपर सिंहासन रखे और चौसुरी वीपक जलावे । सिंहासनपर लाल वस्त्र बिछावे उसपर इंद्रको बिठाकर गीत वृत्त्य वाजोंके साथ लालवस्त्र माला आभूषण चंदनसे शोभायमान चार सधवा जवान स्त्रियोंसे चंदन अंगपर लगवावे ॥ १२३॥ १२४॥ १२५ ॥ फिर जिन आदिकी आशीर्वाद बुलवाता हुआ उस इंद्रके अंगमें पीले उवटने सहित तैल लगवावे फिर पीली खल्लिसे अंगका तैल दूरकर प्रासुक जलसे स्नान करावे । पुनः स्वादिष्ठ भोजन कराके आभूषण कपड़े चंदन माला आविसे सजावे । पश्चात् प्रतींद्र सहित उस इंद्रको हाथी या घोड़ेपर चढाकर अन्नमंदिरेमें लेजावे । उक्त समय ' त्रिपिबिहि' ऐसा उच्चारण करके अन्नमंदिरे में ले जावे ।

समतींद्रं तमारोप्य द्विपं चैत्यालर्यं नयेत् । निसिंहोत्सुचरन्नेप तं प्रावक्ष्य । जिनईश्वरम् ॥ १२८ ॥
 दर्शनस्तोत्रपाठेन त्रिःपरीत्य त्रिरानतः । कृतेर्यापथशुद्धिस्तं श्रुतं स्मरिं समर्च्य च ॥ १२९ ॥
 साधर्मिकैः परिहृतः सर्वसंघसमक्षतः । जिनाग्रे याजकतया सौधर्मन्द्रेऽसि सोऽधुना ॥ १३० ॥
 इत्युच्चैर्वदता दत्तान् समंत्रान् गुरुणाक्षतान् । स्वीकृत्याजलिनोपांशु मंत्रमुच्चार्य नामितः १३१
 स्वमूर्ध्नि विन्यसेत्सोहं सौधर्मैन्द्रं इति ब्रुवन् । प्रतिपद्येत चाष्टाहं सैकभक्तं सुनिर्मलम् ॥ १३२ ॥
 ब्रह्मचर्यं विविक्ते च सुप्यात्सद्भ्रात्रनारतः । शलाकापुरुषारुयान्स्थानस्वाध्यानस्वाध्यायभागभवेत् १३३

जिनैन्द्र देवकी दर्शन स्तुतिपाठ पूर्वक तीन परिक्रमा देवे और तीनवार नमस्कार करे ।
 फिर ईर्यापथशुद्धि करके शास्त्र और आचार्यकी पूजाकर साधर्मियोंकर धिरा
 हुआ सब संघके आगे जिनैन्द्रदेवके सामने पूजकपनेसे इन्द्रको ऐसा कहे कि तुम अब
 सौधर्म इन्द्र हो ऐसा ऊंचेस्वरसे बोले । उस समय इन्द्र भी वीक्षागुरुसे दिये गये मंत्रित हुए
 अक्षतोंको अंजलिमें लेके फिर आप ओं न्हीं आदि मंत्र पढके में वही सौधर्म इन्द्र हूँ ऐसा
 कहता हुआ उन अक्षतोंको अपने मस्तकपर रखे ॥ १२६ । १२७ । १२८ । १२९ । १३० ॥
 १३१ । १३२ ॥ वह इन्द्र आठदिनतक एकवार भोजन करे, निर्दोष ब्रह्मचर्य पाले और श्रेष्ठ

१ ओं हीं ईई वाशिवात्सा षामो अरहेताणं अनाहतपरं कंमस्ते भवतु हौं नमः स्वाहा । एष मंत्रो गुरुणा प्रयोक्तव्यः ।
 २ ईद्रेण पुनरनैव ते स्थाने मे इति प्रयोज्यम् ।

परमेष्ठिश्रुतगुरुनेत्र वंदेत वर्जयेत् । साधर्मिकसजातीयैरपि पंक्तिं च भोजने ॥ १३४ ॥
 तदा प्रभृति यष्टापि ब्रह्मयाजकवच्चरेत् । आयज्ञांतं विशेषेण तदाज्ञां च न लंघयेत् ॥ १३५ ॥
 प्रतिष्ठासूचकैर्लखैः संधं देशांतरादपि । आकारयेद् ब्रजेद् द्रष्टुं तां संघोपि यथात्रलम् ॥ १३६ ॥
 वेदीनिवेशादारभ्य यावद्ब्रह्मज्ञातमात्मवान् । धर्मकारी गुणैश्चिन्त्यकृपादानपरो भवेत् ॥ १३७ ॥
 गर्भरूपो विनियोस्मीत्याक्षिसो गुरुभिर्बेदेत् । आकृष्टो याचकैश्चेष्टदाने वोस्मि कियानिति ॥ १३८ ॥

भावनाओंमें (विचारोंमें) लीन हुआ एकांत जगहमें सोधे और त्रिसठ शलाका पुरुषोंके
 चरित्रका स्वाध्याय तथा शुभ ध्यानमें लीन रहे ॥ १३३ ॥ पंच परमेष्ठी जैन शास्त्र जैन गुरु-
 ओंको ही नमस्कार करे । और अपनी जातिके साधर्मियोंके साथ भी एक पंक्तिमें बैठकर
 भोजन न करे ॥ १३४ ॥ उसी समयसे वह यजमान भी प्रतिष्ठाचार्यकी तरह एकवार भोजन
 ब्रह्मचर्यादिका आचरण करे और पूजाके उत्सवकी समाप्ति तक नियमसे इंद्रकी आज्ञाको
 पाले, उलंघन नहीं करे ॥ १३५ ॥ वह यजमान प्रतिष्ठाको जाहिर करनेवाले लेखोंसे (कुंकुम
 पत्रिकाओंसे) दूसरे देशोंसे भी सब साधर्मी भाइयोंको बुलावे । पत्रिके पहुंचते समय वे
 साधर्मी भाई भी अर्हंतप्रतिष्ठा देखनेकेलिये शक्तिके माफिक अवश्य जावें ॥ १३६ ॥
 वह यजमान वेदी प्रतिष्ठासे लेकर विंबप्रतिष्ठा तक आत्मज्ञानी होके धर्मके कार्य
 करता रहे और गुणी जनोंको यथायोग्य दानादि देता रहे और दुःखितोंको करु-
 णादान दे ॥ १३७ ॥ गुरुओंके सामने ऐसा कहे कि मैं नया ही चेला हूं जो कुछ मूल हो

याजका यष्टुवत्सर्वे श्रावकैरपरैरपि । संभाव्या भक्तितः संघोप्याराध्यो धर्मकाम्यया ॥ १३९ ॥
 दावसंघनृपादीनां शान्त्यै स्नात्वा समाहिताः शान्तिमंत्रैर्जपं होमं कुर्युरिन्द्रा दिने दिने ॥ १४० ॥
 देशकालानुसारेण व्यासतो वा समासतः । कुर्वन् कृत्स्नां क्रियां शक्रो दातुश्चित्तं न द्रूपयेत् ॥
 यथोक्तनिगदद्रव्यैः प्रयुक्तैर्व्यासतः क्रिया । मंत्रमात्रयथाप्राप्तद्रव्यैश्चेष्टा समासतः ॥ १४२ ॥

इति इंद्रप्रतिष्ठा ।

वह क्षमा करें और याचकों (मांगनेवाले) से ऐसा कहे कि तुमको इच्छित दान देनेकी
 सुझमें शक्ति नहीं है ॥ १३८ ॥ अन्य श्रावक भी उस यजमानकी प्रशंसा करें कि तुमने बहुत
 अच्छा किया और यह यजमान भी धर्मकी इच्छा रखता हुआ आये हुए सब साधर्मियोंका
 शक्तिपूर्वक सत्कार करे ॥ १३९ ॥ वे इंद्र प्रतींद्र भी दाता, श्रावकसंघ और राजा आदिको
 शान्ति (सुख) मिलनेके लिये प्रतिदिन स्नानकरके शान्तिमंत्रोंसे जप और होम अवस्थ करे
 ॥ १४० ॥ वह इंद्र वेश और कालका विचार करके विस्तारसे या संक्षेपसे सब प्रतिष्ठाकी
 क्रियाओंको इसतरह करे कि जिसमें दाता (यजमान) का दिल न दुःखी हो अर्थात् दाताका
 उत्साह नष्ट न हो और न क्रोध (गुस्सा) उत्पन्न हो ॥ १४१ ॥ यदि शास्त्रमें विस्तारसे
 कही हुई सब चीजोंके लानेमें खर्च करनेकी सामर्थ्य हो तब तो विस्तारसे प्रतिष्ठानिधि करे
 अगर उसमें अधिक खर्च करनेकी शक्ति न हो तो शक्तिके माफिक जितना खर्च करसके

सज्जयित्वोपकरणान्याचार्यः कार्यसिद्धये । कृत्वा शान्तिविधानं च सूत्रयेन्मंडपादिकम् ॥ १४३ ॥
 खोत्तेऽधःशोधिते पूर्णे समीकृत्य पवित्रिते । भूभागेऽर्हन्मृजांभोभिश्चारुक्षीरदुदारुभिः ॥ १४४ ॥
 शुभेहि मंडपं चित्रवस्त्रच्छन्नं विधापयेत् । त्र्यादित्रिवर्दिष्णुचतुर्विंशत्यंतकरप्रमम् ॥ १४५ ॥
 प्रोष्ठसच्छल्लकीरंभास्तंभध्वजदलस्रजम् । चतुर्द्वारोर्ध्वकोणस्थशुभ्रकुंभाष्टकोद्भटम् ॥ १४६ ॥

उसके अनुसार ही संक्षेपसे प्रतिष्ठाविधि करनी चाहिये ॥ १४२ ॥ इसप्रकार इंद्रप्रतिष्ठा-
 विधि समाप्त हुई । अब मंडप आदि वनानेकी विधि कहते हैं—प्रतिष्ठाचार्य सब सामग्री
 तयार करके मंडपादिकी निविद्य रचना समाप्तिके लिये लघु या बृहत् शान्तिविधान करके मंडप
 वेदी आदिकी रचना करावे ॥ १४३ ॥ वह इसतरह है कि पहले तो जमीन खुदावे पीछे उसे
 सोधकर मट्टीसे भरके समतल करे फिर अर्हत प्रतिमाके गंधोदकसे छिडके । उसके बाद
 सुंदर—ऊपरसे सूखा कीडे आविसे नहीं खाया हुआ ऐसा जो उडुम्बर पीपल आवि क्षीरवृक्ष
 उसकी लकडीसे तथा पांचरंगोवाले वस्त्रसे शुभ मुहूर्तमें मंडफ तयार करावे और कमसे कम
 तीन हाथका मंडप होना चाहिये और एक हाथकी वेदी बननी चाहिये । यह संक्षेप विधि
 करनेमें जानना । और अधिक विधि करनी हो तो तीन तीन हाथ बढ़ाते जाना अर्थात् छह
 हाथका मंडप ओर दो हाथकी वेदी करना । इसतरह सचसे अधिक चौबीस हाथका मंडफ
 और आठ हाथकी वेदी बनाना चाहिये । यह विस्तार विधि करनेके समय जानना ॥ १४४ ॥
 ॥ १४५ ॥ उस मंडफमें सलकी वृक्ष और केलाके वृक्षके संभे हों, धुजा धरे पत्तोंकी माला-

तोरणोदारसौंदर्यं नानारत्नांशुकांचितम् । प्रलंबिमुक्तालंबुषहारस्रक्तारिकोज्ज्वलम् ॥ १४७ ॥
 चंदनच्छटया सिक्तं पुष्पप्रकरदंतुरम् । मुक्तास्वस्तिकविन्यासरंगावलिमनोहरम् ॥ १४८ ॥
 कलशादर्चभृंगारयावारादिरमार्कुलम् । संधूपधूमगंधांधभृंगझंकारकोमलम् ॥ १४९ ॥

इति मंडपनिर्माणम् ।

पूते नवमतन्मध्यभागोऽर्हत्सवनानुना । एकाद्यष्टांतहस्तासु नंदाद्याख्यासु वेदिषु ॥ १५० ॥

ये चकचकाट कर रही हों चार दरवाजे हों उन दरवाजोंके ऊपरकी चौटीपर चूनासे लेप
 किये गये आठ बड़े रक्खे गये हों ॥ १४६ ॥ वह मंडप शोभायमान, बंदनवारोंसे रमणीक
 हो, माणिक्य आदि पांचरत्नोंसे जड़े हुए कपड़ेसे पूजित हो यानी जरी (सलमासितारा)
 के बने हुए चंदोपसे चमक रहा हो, मोतियोंके झूमका-हार-मालाओंसे तथा कांसे आदिकी
 वनी हुई घंटारियोंसे बहुत प्रकाशमान हो । घिसे हुए चंदनकी छींटोंसे युक्त, पुष्पोंसे
 शोभायमान, मोतियोंके सांतियोंकी रचनासे तथा अनेक रंगोंकी रचनाओंसे शोभित हो ।
 कलश (घडा) वर्षण, झाडी, बोये हुए जौके अंकुर, छत्र चमर आदि सामग्रीसे सुंदर हो,
 काले अगर आदिकी वनी हुई वशांग धूपके बुंधांकी सुगंधीसे मस्त हुए झमरोंकी दांका-
 रध्वनीसे रमणीक होना चाहिये ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

इस प्रकार मंडप बनानेकी विधि समाप्त हुई ।

आगे वेदी बनानेकी विधि बतलाते हैं—अर्हतविंबके गंधोदकसे नीमा मंडपको

यथास्वमामेष्टिकाभिः कार्यो व्याससमायतिः । वेदीव्यासषडंशोच्चा चतुरश्वेशदिक्रुत्वा ॥ १५१ ॥
 शिलान्यासवदत्रार्ची कृत्वा पंचाममृद्धान् । आक्रमंतीष्टिकाभिर्यद्गतानुगतिकैव सा ॥ १५२ ॥

इति वेदीनिवर्तनम् ।

पूतमृद्गोमयक्षीरवृक्षत्वक्काथहस्तया । संसाज्यं प्रोक्ष्य लेप्यासौ स्नातालंकृतकन्यया ॥ १५३ ॥

इति वेदीलेपनविधानम् ।

मध्यका भाग पवित्र करके उसकी आठों दिशाओंमें नंदा १ सुनंदा २ प्रसा ३ सुप्रसा
 ४ भंगला ५ कुमुदा ६ पुंडरीका ७ इंद्रावेदी ८—इस तरह आठ वेदों एक हाथ चौड़ाई ल
 लेकर आठहाथ तक मंडपके अनुसार कच्ची ईंटोंसे बनवावे, चौड़ाईके समान लंबाई रखले,
 चौड़ाईसे छोटे भाग उंचाई रखले तथा ईशानकोणमें कुछ नीची रखले—इस प्रकार चौकौन
 वेदों बनवावे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ यहांपर शिला रखनेकी तरह पूजा करे और पांच कच्चे
 मट्टीके घड़े रखले ॥ यह पांच घड़े रखनेकी रीति परंपरासे जानना ॥ १५२ ॥ इस प्रकार
 वेदी बनानेकी विधि पूर्ण हुई । अब वेदीके लीपनेकी विधि कहते हैं—नदीके किनारेकी
 वामी आदिकी पवित्र मट्टी, पृथ्वीपर नहीं गिरा हुआ पवित्र गोबर और ऊंमर आदि
 वृक्षोंकी छालका बनाया काढा—इन तीनोंको हाथमें लियें स्नान आभूषणसे तयार ऐसी
 कन्याओंसे उस वेदीको झड़वाकर और प्रोक्षणमंत्रपूर्वक जलसे छिड़कवाकर लिपवाना

१ ओं न्शो न्शी न्क्षु न्क्षौ न्क्षः प्रोक्षणजलग्नमंत्रणम् ।

त्रयोदशांगुलोद्देशे तुर्यवेधास्तु कारयेत् । हस्तमात्राणि पीठानि दिक्ष्वन्यासां यथोचितम् १५४
 प्राग्यमंडपसमं वेदीकर्णियात्राध्वसंगतम् । ईशानदिशि निर्माण्य मंडपं तत्र कारयेत् ॥ १५५ ॥
 वेदीं तस्यैव चार्धेन त्रिभागेणाथवा मिताम् । भांडुद्धास्तोरणाद्यैश्च भूपयेन्मूलवेदिवत् १५६

इति उत्तरवेदीनिवर्तनं ।

चाहिये ॥ १५३ ॥ ओं करां इत्यादि टिप्पणीमें मंत्र देखलेना । इस प्रकार वेदी लेपनकी विधि
 जानना । ईशानकोणकी वेदीको छोड़कर सातवेदियोंके आगे तरह २ अंगुल जमीन छोड़के
 पूर्वादि चारों दिशाओंमें जयादि आठ देवियोंके पूजनके लिये चार छोटीं वेदीं बनावे ।
 और बीचकी वेदीसे ईशान दिशाकी तरफ छोटा मंडप बनवावे, और उस मंडपके तीसरे
 भाग प्रमाण उत्तर वेदी बनवावे और उसे मूलवेदीकी तरह ध्वजा छत्र तोरण आदिसे सजावे
 ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ इस तरह उत्तरवेदाकी रचना हुई । इसके बाद वह इंद्र स्वच्छ क-
 पड़े माला आभूषण और चंदनका लेप-इन वस्तुओंसे सजा हुआ प्रतींद्र और प्रतिष्ठा
 करानेवाले दाताके साथ हाथी या घोड़ेकी सवारीपर चढके प्रतिष्ठाके पहले दिन सरोवर
 पर जावे । जिसके साथमें, श्रेष्ठ पत्तोंसे ढके हुए दूध दही अक्षतसे पूजित फलसे भरे हुए
 कंठमें मालायें डाले हुए मजबूत नदीन ऐसे घडोंको ऊपर रखनेवालीं सर्जीं हुईं प्रसन्नचित्त
 ऐसीं कुलीन स्त्रियां जा रहीं हो । और सब साधर्मीं भाईं तथा छत्रवाजे धुजा वगैरःसे घिरा
 हुआ जगतको आश्चर्य करता वह इंद्र शांतिके लिये जो और सरसोंको मंत्रसे मंत्रित करके

भोगेन्द्रो दिव्यांस्त्र्यम्भूपागोनीर्षसंस्कृतः । प्रतीन्द्रदातृपुण्ड्र्युर्ध्वं गजं वाशत्रमधिष्ठितः ॥ १५७ ॥
 मन्पुत्रश्चन्द्रमूलान् दूर्वादीद्ध्यक्षतांचितान् । फलगर्भान्नवान् कुंभान् दृढान् कंठलुठत्क्षजः १५८ ॥
 निधनीभिः मुयेयाभिः सहर्षाभिः पुरांधिभिः । सर्वसंधेन च दृत्तश्छत्रतौर्यत्रिकश्चजैः १५९
 विदां विस्मापयन् शान्त्यै सर्वतो यवसर्षपान् । मंत्रांभ्यस्तान् किरन् गत्वा प्रतिष्ठागाग्निदने सरः
 तस्यं दत्तार्णमाशाय तर्तीरे वास्तुवद्विधिम् । आह्वाननादिविधिना प्रसाद्य जलदेवताम् ॥ १६१ ॥
 पूरयित्वा जलैरास्यस्थापितश्यादिदेवतान् । ताभिरेव पुरंध्रीभिर्महाभूत्या तथैव तान् १६२ ॥
 कृमानानाग्न्य संस्थाप्य त्रैत्यगेहे सुरक्षितान् । तथैवोत्तरकृत्याय दातुमंदिरमाश्रयेत् ॥ १६३ ॥

इति जलयात्राव्यावर्णनम् ।

चारा तरफ करे रक्ष तो ॥ १५७ । १५८ । १५९ ॥ उस सरोवरको अर्ध देकर उसके
 किनारे पक्षकी तरफ आतानादि विधिसे जलदेवताको प्रसन्न करे ॥ १६१ ॥ उसके बाव् उन
 पत्रोंको जलसे भरकर उनके मुलमें श्रीआदि देवियोंका स्थापनकर उन्हीं कुलीन स्त्रियोंके ऊपर
 रस्ये और उन घंटोंको लाकर जिनमंदिरमें अच्छी तरह स्थापन करे । उसके बाव् आगेकी
 क्रिया करनेके लिये यजमानके धरपर आवे ॥ १६२ । १६३ ॥ इस प्रकार जलयात्राविधि पूर्ण
 हुई । उसके नाव यजमान और ये इंद्र स्नान तथा पूजा करके साधर्मि भाइयोंको स्वादिष्ट

१ ओं ईं ईं फट् किरिटि यातय २ परगित्तान् स्फोटय ३ सहस्राखंडान् कुठ २ परमुद्राश्छिद ३ परमंत्रान् गिद
 ३ ३। ३ः ईं फट् स्वागा । इति मंत्रः ।

तत्रैद्रा यजमानश्च स्नात्वाभ्यर्च्यार्होत्खिलम् । लोकं संतर्प्य श्रुत्स्वेष्टं सुस्वाद्भनं हितं मितम् ॥
 कृतारात्रिकर्मगल्याः स्वारूढवरवाहनाः । तां यागभूमिं गच्छेद्युः सयज्ञांगपरिच्छदाः १६५
 अभीष्टसिद्धिरस्त्वेवं वादिन्याः पथि सुस्त्रियाः । पाणिपात्रात्फलादीन्द्रो गृह्णीयाच्छकुनेच्छया ॥
 चैत्यालयप्रवेशादिविधिं प्राग्वद्विधाय ते । कृत्वा गुरोर्वृहत्सिद्धयोगभक्ती तदाज्ञया ॥१६७॥
 त्रिधोपवासमादाय बृहदाचार्यभक्तितः । मणम्य चरणद्वन्द्वं तस्य गृह्णीयुराशिपः ॥ १६८ ॥

इति उपवासादानविधानम् ।

हितकारी भोजन करावे तथा आप भी जीमें ॥ १६४ ॥ पुनः मंगलवीपकसे आरती किये
 गये तथा अपनी २ उत्तम हाथी घोडा आदि सवारियोंपर बैठे हुए यज्ञांग और परिवार
 सहित वे इंद्रादिक उस यज्ञभूमिके पास जावें ॥१६५॥ मनो वांछित अर्थकी सिद्धि हो ऐसा
 रस्तेमें कहतीं हुई सौभाग्यवती स्त्रियोंके हाथसे शुभ शकुन होनेकी इच्छा करके फल लेवें
 ॥ १६६ ॥ वे इंद्रादिक चैत्यालयप्रवेश, परिक्रमा देना, ईयापथ शोधन, स्तुति पूजा इत्यादि
 विधि पहलेकी तरह करके गुरुकी आज्ञासे बृहत् सिद्ध भक्ति योग भक्ति करें ॥ १६७ ॥
 फिर जलके छोढनेके सिवाय तीन प्रकार त्यागरूप उपवास करके तथा बृहत् आचार्य
 भक्ति करके गुरुके चरणकमलोंको नमस्कार करें और उनका आशीर्वाद ग्रहण करें ॥१६८॥
 इस प्रकार उपवास ग्रहणविधि कही । इस प्रकार वे इंद्रादिक अपनी शुद्धिके लिये एकांतमें
 मंत्रलानादि करके पंच नमस्कार मंत्र एकसौ आठ वार जाँपें । उसके ऊँ हाँ आदि निसीही

अथो रहः पुरा कर्म कृत्वा जप्त्वापराजितम् । स्वशुद्धयेष्टाग्रशतं निगदंतो निषेधिकाम् ॥ १६९ ॥
यागभूमिं प्रविश्येद्रा जिनानभ्यर्च्य भक्तितः । सिद्धाबत्वा महर्षीणां विदधुः पर्युपासनम् ॥
ततो याजकयष्टारो दध्युर्ध्वदनचर्चिताः । वराः स्रजो नवाऽस्यूतशुचिवस्त्राण्यलंकृतीः १७१ ॥
यज्ञदीक्षाध्वजं विभ्रत्सौधमैद्रोऽथ मंडपम् । प्रतिष्ठयेत् सप्रतींद्रो वेदीं चोद्धृत्य मंडलम् १७२ ॥

इति प्रतिष्ठासमहोयोगः ।

वेद्यामालिख्य चूर्णेन पंचवर्णेन कार्णिकाम् । बहिःषोडशपत्राणि चतुर्विंशतिमन्वतः ॥ १७३ ॥

मंत्रको तीनवार बोलें ॥ १६९ ॥ फिर वे इंद्र यागस्थानमें प्रविष्ट होकर भक्ति सहित अर्हें तकी पूजा करके व सिद्धोंको नमस्कार करके आचार्योंकी पूजा करें ॥ १७० ॥ उसके बाद इंद्र और यजमान वंदनसे छांटीं हुई उत्तम चंपा चमेली आदिकी पुष्पमालायें विना सिले नये शुद्ध कपडे और आभूषण धारण करें ॥ १७१ ॥ अनंतर सौधर्म इंद्र प्रतींद्र सहित यज्ञ-दीक्षाके चिन्ह मौंजी बंधन आदिको धारण करके वेदीपर मांडला बनाके मंडपकी प्रतिष्ठा करे ॥ १७२ ॥ इस प्रकार प्रतिष्ठाका महान् उद्योग करे । उस वेदीमें पांच रंगके चूर्णसे बीचमें कर्णिका बनाकर बाहर सोलह पत्तोंवाला आकार बनावे । उसके चारों तरफ चौवीस पत्तोंवाला उसके बाद बतीस कमल पत्तोंवाला आकार खींचे और बाहर वज्रके चिन्ह बनावे तथा चार कोनोंमें चार दरवाजे हों ऐसी वेदीकी रचना करे ॥ १७३ । १७४ ॥ कई

औं हां हीं हूं हीं हः कई गमो अरुंताणं णिसिहिए स्वाहा । इति णिषीहीमंत्रः ।

द्वात्रिंशत्तमः पञ्चान् बहिर्वर्जांकितैर्युताम् । कोणैश्चतुर्भिः सचतुर्दिग्द्वारां वेदिमालिखेत् ॥ १७४ ॥
 जयाद्यष्टदलान्येके कर्णिकाचलयाद्धिः । मन्यंते वसुनंशुक्तसूत्रशैस्तदुपेक्ष्यते ॥ १७५ ॥
 काश्मीरादिशुभद्रव्यलिखिताखंडमंडलम् । नवं चंद्रोपकं चोर्ध्वं तयोर्वेद्योर्वितानयेत् ॥ १७६ ॥
 द्वेषापामार्गदर्भान्धतमकुसुमशलाकया । चूर्णाकीर्णं वेदिपृष्ठे वर्तयेद्यागमंडलम् ॥ १७७ ॥
 भूर्जे गंधेन चालिख्य क्षमाहं पीठाक्षरं तथा । प्रणवं दक्षिणे भागे वापे सं सविसर्गकम् १७८

विद्वानोंका ऐसा कहना है कि कर्णिकाकी गोलाईके बाहर जया आदिके आठ पत्र बनावे परंतु वसुनंदि आचार्य कथित प्रतिष्ठा सिद्धांतके जाननेवाले उस बचनको नहीं स्वीकार करते । क्योंकि उनका मानना अज्ञानताको लिये हुए है ॥ १७५ ॥ यागमंडल और ईशान वेदी-इन दोनोंके ऊपर नया चंदोआ बांधे । उस चंदोवेमें केशर आदि शुभ द्रव्योंसे यागमंडल अभिषेकमंडल लिखा हो ॥ १७६ ॥ उस वेदीके पिछाड़ीके भागपर सौना अपामार्ग और डाभ इनमेंसे किसी एककी सलाई बनाकर उसमें रंग भरके वेदीके पृष्ठभागमें यागमंडलको लिखै ॥ १७७ ॥ फिर भोजपत्रपर घिसे हुए चंदन कपूर मिश्रित उस सलाईसे क्षमाहं ऐसा मध्यबीज लिखे, बाहिने भागमें ओं लिखे बाएं भागमें सः लिखे उसके ऊपर भागमें अहं लिखे उसे ओं णमो अरहंताणं हौं स्वाहा इस मूलमंत्रसे घेर दे । उसके बाव ओं अहं आदिमें तथा स्वाहा अंतमें है जिसके ऐसे केवलिमंत्रको अर्थात् ओं अहं अहंत्सिन्द्रसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा इस मंत्रको लिखै ॥ उसके चारों तरफ नंधावर्तचक्र, ययचक्र और ओं आदिमें

तस्याहं वीजमूर्ध्वं च मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । ततः केवलिमंत्रेण स्वाहातोमहमादिना ॥ १७९ ॥
चक्रेण नद्यावर्तानां यवानां चोष्ठुलेन च । चत्तारीत्यादिना स्वाहातिनाब्जातश्च तन्न्यसेत् १८०

अथ यागमंडलोद्धरणम् ।

यथार्हवर्णचूर्णौघैर्न्यस्याग्नेःक्षेत्रपं दिशि । ईशस्य वास्तुदेवादीन् न्यस्यातःकोणशो द्विशः १८१
स्वाहा अंतमें ऐसे चत्तारि इत्यादि टिप्पणीमेंसे देखकर लिखै । उस लिखे यंत्रको कमलके
मध्यभागमें रखे ॥ १७८ । १७९ । १८०॥ अब यागमंडलका उद्धार बतलाते हैं । यथायोग्य
रंगके अनुसार चूर्णसे आग्नेय दिशामें क्षेत्रपालका स्थापन करे, ईशानकोणमें वास्तुदेवका
पुंज रखे, चारों कोनोंमें वायुकुमार मेघकुमार अशुक्रुमार आदिके पुंज रखे और कोनोंके
आगे दो २ यज्ञ बनावे । तथा अपने २ मंत्रोंसे कमलके मध्यमें स्थित पंचपरमेष्ठी आदिकी
पूजा करे । उसके बाद सोलह विद्यादेवी चौबीस जिनमाता बत्तीस इंद्रादिकोंका पत्रमें

१ ओं नमो अरहंतां हौं स्वाहा । मूलमंत्रः । ओं ह्रीं अर्हं अर्हिसिद्धसयोगिकेवलिन्यः स्वाहा । केवलिमंत्रः ।
ओं अर्हं नंथावर्तवलयाय स्वाहा । नंथावर्तवलयस्थापनं । ओं अर्हं यववलयाय स्वाहा । यववलयस्थापनम् ।
ओं चत्वारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलिपणतो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगतमा अरहंतलोगो-
त्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपणतो धम्मो लोयुत्तमा । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि
सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपणतो धम्मो सरणं पव्वज्जामि स्वाहा । इति मंगललोकोत्तमशरणमंत्रः
२ वास्तुदेवका सफेद, वायुकुमारका हरा, मेघकुमारका काला, अभिकुमारका लाल पुंज होता है । ईशान दिशासे
गार्हप्य करे ।

वज्रान् स्वमंत्रैः पद्मातः परब्रह्मादिकान् यजेत्। ततश्च विद्यादेव्यादीन् नस्य पत्रादिषु क्रमात् १८२
 चत्वारि मंगलादीनि वाणादित्रितयं शिला । भद्रासनं च संस्थाप्यं ततो वेद्यां यथोचितम् १८३
 पीठेषूपत्तरवेद्यां च वर्तयित्वा यथायथम् । मंडलानि विधानेन वक्ष्यामाणेन चार्चयेत् १८४

इति मंडलार्चनम् ।

इति सूत्रितमाध्यायन विधि सम्यक्कृतक्रियः। श्रद्धधानो यथाशास्त्रं जिनविंवं प्रतिष्ठयेत् १८५।
 या त्रिसंध्यं दिने द्वे वा चत्वारिष्टाधिवासना । यथात्मविभवं कार्यं सादेशाद्यनुरोधतः १८६

स्थापन करके क्रमसे पूजे ॥ १८१ । १८२ ॥ पुनः यागमंडलकी वेदीमें यथायोग्य छत्रादि
 आठ, आयुधादि आठ, पताका आठ और कलश आठ-इस तरह चार मंगलादि; बाण
 सरसों जौके अंकुर-ये तीन चारों कोनोंमें तथा चंदनादि घिसनेकी शिला और सौने चांदी
 चंदन पीपल आदि क्षीरबृक्षका काठ-इत्यादिका बनाया हुआ पट्टारूप गर्भोवतार कल्याणके
 लिये भद्रासन-ये सब वस्तुएं रखले ॥ १८३ ॥ उत्तर वेदी (ईशान वेदी) व जन्माभिपेक
 वेदीपर मांडला खींचकर आगे कहे जानेवाली विधिसे पूजा करे ॥ १८४ ॥ इस प्रकार मंड-
 लकी पूजा कही गई । इस तरह याजकाचार्य शास्त्रमें कही गई विधिको विचारता हुआ
 गर्भ जन्मादि संबंधी क्रिया अच्छी तरह करता हुआ शास्त्रानुसार श्रद्धान करता हुआ
 जिनप्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८५ ॥ गुरुके उपदेशके अनुसार तीनों संख्या व एक दिन
 दो दिन चार दिनतक पूजा होम जपादिक क्रिया शक्तिके माफिक करे ॥ १८६ ॥ जिन

ततः कृत्वाभिषेकादि यज्ञदीक्षां विसृज्य च । मूलदीक्षास्थितः कुर्यादाचार्योऽवभृथक्रियाम् ॥
देवे क्षेत्रादितीर्थे च नियुज्यार्थं स्वशक्तितः । नत्वेन्द्रं स्वं समर्प्यास्मै दातागंतूथ संवदेत् १८८

इति जिनप्रतिष्ठाविधानम् ।

सिद्धचक्रं गणधरवल्यं प्राच्यं तद्विज्ञा । सारस्वतादियंत्रं च सिद्धार्चादि प्रतिष्ठयेत् ॥ १८९ ॥
जीर्णचैत्यालयोद्धारे प्राक्तने चैत्यमंदिरे । अपूर्वार्चाप्रवेशे च यथाहं शांतिमावहेत् ॥ १९० ॥

इति शेषप्रतिष्ठाविधानम् ।

त्रिंश प्रतिष्ठाके वाद प्रतिष्ठाचार्यं अभिषेकादि यज्ञकी दीक्षा (वेश) को छोड़कर श्रावक
व्रतरूप मूल दीक्षामें स्थित हुआ पंचगुरु भक्ति शांतिपाठ विसर्जनादि क्रियाको करे
॥ १८७ ॥ वह दाता यजमान अपनी सामर्थ्यके अनुसार जिनविंबके निमित्त, क्षेत्र घर कुआ
वगीचा आदि धर्मसाधनोंके निमित्त धनको लगाकर और इंद्र (प्रतिष्ठाचार्य) को नम-
स्कारपूर्वक शक्तिके अनुसार धन देकर आये हुए सज्जनोंको यथायोग्य संतोषित करे १८८ ॥
इसप्रकार जिनविंब प्रतिष्ठाविधि पूर्ण हुई । उसके बाद जिनप्रतिष्ठाशास्त्रोंमें कथित रीतिसे
सिद्धचक्र गणधरवल्यकी पूजा करके तथा सारस्वत श्रुतस्कंध आदि ग्रंथको पूजकर
सिद्ध आचार्य आदिकी प्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८९ ॥ जीर्ण (पुराने) जिनमंदिरके
उद्धारमें अथवा पुराने जैनमंदिरमें अपूर्व प्रतिमाके आगमनमें यथायोग्य शांतिविधान
करे ॥ १९० ॥ इस प्रकार शेष सिद्धादि प्रतिष्ठाविधि जानना । मैंने (आशाधरने)

एतत्सूत्रं दृग्धर्मैतिहास्यया ग्रंथार्थाभ्यां धारयन् यः सुधीमान् ।
निर्मातीन्द्रः कर्म निर्देक्ष्यमाणं सद्ग्राहंस्थाशाधरैः पूज्यतेसौ ॥ १९१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारै जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सूत्रस्थापनीयो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अनावि सिद्धांतोंको जानकर इस सूत्ररूप प्रतिष्ठाविधिको रचा है । जो अति बुद्धिमान इस ग्रंथके शब्द और अर्थको धारणकर याज्ञिकाचार्य हुआ आगे कहे जानेवाली प्रतिष्ठाविधिकी करता है वह इंद्र दानपूजाविकर्मवाले उत्तमगृहस्थपनेको चाहनेवाले सद्गृहस्थोंसे नमस्कारादिद्वारा आवरणिय होता है ॥ १९१ ॥

इसप्रकार पंडितवर आशाधरविरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीयनामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें सूत्रस्थापनीय नामा पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

१ दानपूजाप्रतिष्ठाजिनयात्रादिकर्मनिष्ठः सद्गृहस्थ. तस्य भावः कर्म वा ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



अथातस्तीर्थोदकादानविधानमनुवर्णयिष्यामः—

दत्त्वा पद्माकरायार्थं वास्तुदेवाय चावनीम् ।

संमार्ज्यं वायुभिर्मेघैः प्रोक्ष्य पूत्वाग्निोरगान् ॥ १ ॥

इष्टोद्भूतार्चिते साष्टदलाब्जे मंडलेथवा । सैकाशीतिपदे न्यस्य शीत्यै संस्नापयेऽर्हतः ॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

इस सूत्रस्थापनके वाक् जलयात्राविधि अनुवाकरूपसे कहते हैं;—सरोवरको और वास्तुदेवको अर्घ देकर वायुकुमार देवोंके आत्मानसे भूमिको साफकर मेघकुमार देवोंके आत्मानसे छिडककर अम्बिकुमार देवोंके आत्मानसे अग्नि जलाकर साठ हजार नागोंको पूजकर अष्टकमल पत्रवाले मांडलेमें लघुशांतिकर्म करके तथा इक्यासी कोठोंवाले मांडलेमें बृहत्शांतिविधान करके में अर्हतका अभिषेक करता हूं ऐसा कहता हुआ अर्हतका अभिषेक करे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर शांतिकर्म आरंभ करनेके लिये सरोवरके किनारे पुष्पांजलि

शाक्तिकर्मोपक्रमाय सरस्तीरे पुष्पान्जलिं क्षिपेत् ।

यस्पन्नामृतलम्भनात्सुमनसां मान्योसि दिक्चक्रमत्र
कञ्चो लोसि सदा यदाश्रितवतां संतापहंतासि यत् ।

लोके यद्यपि तावतैव वदसे क्षीरोदवत्त्वं जिन-

स्नानीयेन तथापि तद्वदुदकेनाध्योसि कासार नः ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं पद्माकरायार्धे निर्वपामीति स्वाहा । वास्तुदेवाद्यर्धमंत्रा वक्ष्यन्ते ।

मध्ये दिक्ष्वर्हतोन्यान् प्रदधदधिविदिक् तांस्त्रिशो मंगलादीन्
संसारत्यक्षणास्फुटमहिमभरं धर्ममूर्ध्वं शिवानाम् ।

फैंके और आगे कहे जानेवाले यत्पन्नामृत इत्यादि श्लोकको पढ़कर ॐ ह्रीं बोलकर सरोवर
(तालाव) को जलसे अर्ध देवे ॥ वास्तुदेवाविके अर्धमंत्र आगे कहेंगे ॥ ३ ॥ उस मंडलकी
पूर्वावि चार दिशाओंमें सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधुओंका स्थापन करे, विदिशाओंमें
मंगल लोकोत्तम शरण इन तीनोंको लिखे, सिद्धोंके ऊपर अत्यंत महिमावाले धर्मको स्था-
पन करे और आठ पत्रोंपर जयावि आठ देवियोंका स्थापन करे और दश दिशाओंमें दश
विक्रस्वामियोंको रक्खे, सोमद्वारपालके ऊपर भागमें सूर्यावि नौग्रह स्थापन करे । वह
मंडलचौकोन और चार बरवाजेवाला होना चाहिये ऐसा मंडल कल्याणकारी है । ऐसा

पत्रेष्वष्टौ जयाद्या दशसु दिग्धिपान्त्र दिक्षु सोमस्य चोर्ध्वं
सूर्यादीन् साश्रिसद्धारहमिह शुभदं मंडलं वर्तयामि ॥ ४ ॥

इति पुष्पांजलिः ।

अष्टाविंशतिदिशीनि यथास्वं दिक्षु कल्पयेत् । शेषसोमासने चेन्द्रपाशि दक्षिणपाश्वर्ययोः ॥ ५ ॥
अथवा—मध्ये मध्यवर्दबुजेष्टसु बहिः पूर्वस्य पत्रस्थवद्रोद्दिण्याद्यमरीर्धिरष्टसु दधद्यक्षीत्रिरष्टस्वपि
देवेंद्रांश्चतुरष्टसु प्रतिदिशं दिक्षूपालकान्गुह्यकान् वज्राग्नेषुततोग्रहानपि लिस्वाम्यत्रेष्टकृन्मंडलम् ६

कहकर पुष्पांजलि क्षेपे ॥ ४ ॥ अब शांति विधानके लिये द्वितीय मंडल कहते हैं—आठ
दिशाओंमें आठ इंद्राधिकोंके आसन यथायोग्य कल्पना करे और धरणेंद्र व सोम इन दोनों
के आसन इंद्र और वरुणकी दाहिनी तरफ कल्पना करे ॥ ५ ॥ अथवा बृहत् शांतिक
मांडलेका विधान कहते हैं—मांडलेके मध्यभागमें पहलेकी तरह अष्टदल कमल बनावे उनमें
पंच परमेष्ठी, मंगल, लोकोत्तम, शरण,—ये आठ लिखे । उसके बाद सोलह पत्रोंपर रोहिणी
आदि सोलह विद्या देवता स्थापन करे । चौबीसपत्रोंपर चक्रेश्वरी आदि चौबीस शासन
देवता (यक्षी) ओंको, बत्तीस कोठोंमें देवेंद्रोंको (यक्षोंको) स्थापन करे । हर एक दिशामें
द्विष्णुपालोंको और वज्रोंके अग्रभागमें सूर्यादि नवग्रह लिखे—इस तरह इस सरोवरके
किनारे बृहत् शांतिक मंडलका स्थापन करता हूँ जोकि इष्टका देनेवाला है ऐसा कहकर
पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ६ ॥ पूजा करनेमें हर्षित हुआ नागेंद्र इत्यादि श्लोकसे पिसे हुए

पुष्पांजलिः ।

नागेंद्रचूर्णेन सितेन रैदपीतेन नीलमभनीलकेन ।

भक्ताभरक्तेन लिखासिताभक्त्वेण सस्मंडलापीष्टिहृष्टः ॥ ७ ॥

चूर्णपांचकस्थापनं ।

अथाधिवास्य चिद्रूपमित्यादिविधिना परम् । ब्रह्माहंदादीन् धर्मं च मध्ये मंडलपर्ययेत् ॥८॥

पुष्पांजलिः ।

प्रत्यर्थित्रजनिर्जयानिचलसख्दीवीर्यहृक्शर्मणो लोकेषु त्रिषु मंगलोत्तमविपन्नणोलघणानात्यवत्-
धर्मचद्युवतोभिदावदधतो याद्युत्किरंत्यात्मनो लोकेशानहमर्हितानघभिदेभ्यर्हामि तानर्हतः ॥९॥

ॐ हौं अरिप्रमथनाद्रजोरहस्यनिरसनाच्च समुह्निचानंतज्ञानादिचतुष्टयतया शक्रादिकृतामनन्यसंभ-
विनीमर्हणामर्हतां मंगललोकोत्तमशरणभूतानामर्हत्परमोष्टिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ॥ १ ॥

पांच रगोंको स्थापन करे । यह चूर्ण पांचका स्थापन जानना ॥ ७ ॥ उसके बाद निश्चय-
नयसे (अमेव बुद्धिसे) “ चिद्रूपं ” इत्यादि आगे कहे जानेवाले श्लोकको पढकर कर्णि-
कामें पुष्पांजलि क्षेपे और “ स्वामिन् संवैषह् ” इत्यादि आगे कहे जानेवाले श्लोकको
पढकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण-इन तीनोंको करके अर्हतादिकी पूजा करे ॥ ८ ॥
उन अर्हतादिकोंकी पूजाके अर्थ कहते हैं-। “ प्रत्यर्थि ” इत्यादि नवमां श्लोक पढकर फिर

सामोदैः स्वच्छतोथैरुपहिततुहिनैश्वन्दैः स्वर्गलक्ष्मी
लीलाधैरक्षतौघैर्मिलदलिसुगमैरुद्रमैर्नित्यहृद्यैः ।

नैवेद्यैर्नव्यजांबूनदमदमकैर्दीपकैः काम्यधूम-

स्तूपैर्धूपैर्मनोक्षग्रहिभिरपि फलैः पूजयेत्त्राह्णदीशान् ॥ १० ॥

प्रत्येकार्पितसप्तभंग्युपहतैर्धर्मैरनंतैर्विधि-

ध्रौव्याभेदतदत्यैरनुगते न्यक्षेपि लक्ष्ये सदा ।

तुल्येऽस्मिन् बहिरेतदुद्यतमचिद्रूपं विधातुन् समं

भोक्षन् मंगललोकचर्यशरणान्येतर्हि सिद्धान् यजे ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सामग्रीविशेषविश्लेषिताशेषकर्ममलकलंकतया संसिद्धिकात्यंतिकविशुद्धविशेषविर्भावाद्भि-
व्यक्तपरमोत्कृष्टसम्यक्त्वादिगुणाष्टकविशिष्टां उदितोदितस्वपरमप्रकाशात्मकीचिच्चमत्कारमात्रपरमंत्रपरमा-
नंदैकमयीं निष्पीतानंतपर्यायतयैकं किञ्चिद्वनवतास्वाद्यमानलोकोत्तरपरमधुरस्वरसभरनिर्भरं कौटस्थाम-

ओं ह्रीं कहकर पुष्प चढावै । फिर “ सामोदैः” इत्यादि श्लोक पढकर अर्हंतको जलादि
अष्ट द्रव्य चढावै ॥ ९ ॥ १० ॥ फिर “ प्रत्येकार्पित ” यह श्लोक कहकर ओं ह्रीं इत्यादि
पढकर पुष्प चढावै । उसके बाद “सामोदैः” यह कहकर सिद्धपरमेष्ठीको अर्घ चढावे ॥ ११ ॥ १२ ॥

धिष्ठितां परमात्मनामासंसारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्यधिष्ठितां मंगल्लोकोत्तमशरणभूतानां सिद्धपरमे-
ष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः.....फलैः पूजये सिद्धनाथान् ॥ १२ ॥

व्यक्ताशेषश्रुतोपस्कृतिकाषितमस्कांडगंभीरधीर-

स्वांताः षट्त्रिंशदुच्चैः स्फुरदसमगुणाः पंच सुवत्यै स्वयं ये ।

आचारानाचरंतः परमकरुणया चारयंते युमुक्षुन्

लोकाग्रण्यः शरण्यान् गणधरष्टषभान् मंगलं तान्महामि ॥ १३ ॥

ओं हूं व्यवहाररत्नत्रयावधानसमुद्भिद्यमानानिश्चयरत्नत्रयैकलोलीभावमनुभवंतमानंदसांद्र
शुद्धस्वात्मानमभিনিविशमानानामपि स्वस्वरूपोपलब्धिप्रथयसीदृढतरपरिरंभसुखाभिष्ठाषुकमुसुवर्गानुग्रहैक-
सर्गायमाणंतःकरणानां मंगल्लोकोत्तमशरणभूतानामाचार्यपरमेष्ठिनामष्टतर्यामिष्टिं करोमीति स्वाहा ।
सामोदैः..... पूजये धर्मसूरीन् ॥ १४ ॥

उसके वाक् "व्यक्ताशेष" इत्यादि श्लोक पठकर "ॐ हूं" इत्यादिसे आचार्यपरमेष्ठीको
पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे फिर "सामोदैः" इस श्लोकको बोलकर आचार्यपरमेष्ठीको जलादि
अथ द्रव्यसे अर्घ्य चढावे ॥ १३ ॥ १४ ॥ फिर "सांगीपांग" इस श्लोकको पठकर "ओं हूं"

संगोपांगमज्ञाः सुविहितमहिताः सुक्तियुक्तिप्रपंचै-
विधानिष्पदवृष्णातरलितमनसः प्रीणयंतो विनियान् ।
कीर्तिं धर्माय लोकोत्तरगतिक्वपणायासकृत्कोपर्यंतः

ख्याता मांगल्यलोकोत्तमशरणतया चेर्चयेऽध्यापकास्तान् ॥ १५ ॥

ॐ हौं निरंतरशोरदुःखावर्तविवर्तनचतुर्गतिपरिवर्तनार्णवतूर्णनिस्तीर्णमनोरथरथमहारथमनस्कारवि-
नेयवारप्रवचनानुशासनव्यसनानामपि योगसुधारसायनाभ्याससन्निकृष्यमाणानरामरत्वपर्यायमहिम्नां मंग-
ललोकोत्तमशरणभूतानामुपाध्यायपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।
सामोदैः.....पूजये पाठकेन्द्रान् ॥ १६ ॥

सर्वज्ञो यज्ञविद्याहृदयपरिचयप्रोच्छलत्रिविकल्प-

प्रत्यग्ज्योतिः प्रतिष्ठान्यदुरधिगमधुद्रुमोद्गारनिष्ठान् ।

अन्योन्यस्पर्धमानत्रिदित्रशिवपद्श्रीकटाक्षच्छटैनीं

चिन्मूर्तिं विभ्रतोऽथ्यान् शरणमिह यजे मंगलसर्वसाधून् ॥ १७ ॥

इत्यादिसे उपाध्याय परमेष्ठीको पुष्पांजलि क्षेपे पुनः “सामोदैः” इस श्लोकको बोलकर
उपाध्यायपरमेष्ठीको जलावि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १५।१६ ॥ उसके बाद “सर्वज्ञो” यह
श्लोक बोलकर “ओं ह्रः” इत्यादिसे सर्वसाधुपरमेष्ठीको पुष्पांजलि अर्पण करे फिर

ॐ हः वैश्वसिकपरमाचिन्मथविश्वैश्वर्यपदापहारकठोरकर्मदुष्कर्मशात्रवशकिशातनोत्सिकचिच्छ-
 क्तिव्यंजकप्रकामदुर्लक्षव्यतिरेकक्षेत्रज्ञाशांतरप्रवेशदुर्लक्षितनुद्धचनुबंधप्रबर्धमानसद्भयानसामिद्धसहजानंदा-
 मृतरसास्वादानावधीरितपरममुक्तिसंपत्प्रियासमागामोत्कंठानां मंगललोकोत्तमशरणभूतानां सर्वसाधुपरमेष्ठी-
 नामष्टतथीभिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः..... पूजये साधुसिंहान् ॥ १८ ॥

एवं मध्येऽर्हतो विदुश्च चतुरः सिद्धादीनभ्यर्च्य विदुश्च भित्वा कर्मगिरीनित्यादिर्मंत्रैश्चत्वारि मंग-
 लानि लोकोत्तमान् शरणानि चार्थैः संभाव्य सिद्धोपरि धर्मस्थेत्यं पूजां कुर्यात् ।

अथांतप्रतिर्वधकव्यपगमेकांतस्फुटच्चित्रकला-

रूपेणापि जगत्यर्चित्यचरितस्तंतन्यते येन ना ।

“ सामोदैः ” इसे पढ़कर सर्वसाधुपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १७।१८ ॥ इस प्रकार मांडलेके बीचमें अर्हतको, चार विशाओंमें सिद्धादि चार परमेष्ठियोंको पूजै और विशिशाओंमें “ भित्वा कर्मगिरीन् ” इस आगे कहे जानेवाले श्लोकमंत्रसे चार मंगल चार लोकोत्तम चार शरणको अर्घोंसे पूजकर सिद्ध परमेष्ठीके ऊपर स्थापित धर्मकी इस प्रकार पूजा करै ॥ वह इस तरह हे कि पहले “ अथांत ” इत्यादि श्लोक पढ़ै उसके बाद “ ओं हीं ” से धर्मको पुष्प क्षेपण करे फिर “ सामोदैः ” इस श्लोकसे जिन धर्मकी जलादि

यत्सर्वस्वरसाय योगिपतयोप्याशासतैत्यक्षणं
तच्छ्रेयो यदनुग्रहश्च दृषमप्यर्चामि तं तद्गुणम् ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं भेदभावनानियतिनिर्मितां प्रादेशिकीमप्यभेदरूपतां योगविशेषसौष्ठवटंकेन विष्वद्रीचीमुत्कार्य

विश्रांतस्य मंगललोकोत्तमशरणभूतस्य केवलप्रज्ञप्तधर्मस्याष्टयमीभिष्टिं करोमीति स्वाहा ।
सामोदः.....पूजये जैनधर्मम् ॥ २० ॥

एष व्यासेन पूजाविधिः, समासेनात्र पुनर्मंगलाद्यर्धान् पृथक् न दद्यात् ॥ एवमर्हदादीनभ्यर्च्य शरच्चं-
द्रमरीचिरोचिषोत्तश्चेतसि चितयन्ननादिसिद्धमन्त्राभिमन्त्रितकपूर्हरिचंदनद्रवाभिलुलितसुरमिशुभ्रपुष्पांज-
लिभिरकर्विशतितिवारानधिवास्य पूर्णार्धदानेन बहुमानयेत् ।

तेमी पंच जिनेन्द्रसिद्धगणभृत्सिद्धांतदिक्रसाधवो
मांगल्यं सुवनोत्तमाश्च शरणं तद्वज्जिनोक्तो वृषः ।

अष्ट व्रव्यसे पूजा करे ॥ १९।२० ॥ यह विस्तारसे पूजाविधि कही गई है । यदि संक्षेपमें करना हो तो मंगलादिकके अर्धोंको जुदा न चढावे । इस प्रकार अर्हतादिकोंको पूजकर निर्मल चंद्रमाकी किरणके समान प्रकाशमान अर्हतका अपने मनमें ध्यानकर (मेरा आत्मा भी अर्हत स्वरूप है ऐसा चिंतवनकर) अनादि सिद्धमंत्रसे मंत्रित कपूर मिले हुए धिसे हुए मलयगिरिचंवनसे छाटे गये सुगंधित पुष्पोंकी अंजलि लेकर इक्कीसवार पूर्णार्ध देकर

अस्माभिः परिपूज्य भक्तिभरतः पूर्णार्घमापादिताः
संघस्य क्षितिपस्य देशपुरयोरस्यासतां शांतये ॥ २१ ॥

पूर्णार्घ्यम् ।

इत्यर्चिताः परब्रह्मप्रमुखाः कर्णिकार्पिताः । संतु सप्तदशाप्येते सभ्यानां शमशर्मणे ॥ २२ ॥
ततश्च जयादिदेवतागणान् वक्ष्यमाणक्रमेणोपचर्य सूर्यादिग्रहान् सोमदिकपालेपरि व्यवस्थाप्य विधि-
वत् पूजयेत् । तथाहि—

रक्तस्तुल्यरुगंवरादियुगिनः श्वेतः शशी लोहितो
भौमो हेमनिभौ बुधामरगुरु गौरः सितश्चासिताः ।

मंडलकी पूजा करे । उस समय “ तेमी ” इत्यादि श्लोक पढ़े ॥ २१ ॥ उसके बाद
“ इत्यर्चिता ” यह आशीर्वाद् श्लोक पढ़े ॥ २२ ॥ उसके बाद जया आदि देवताओंको कहे—
जानेवाले क्रमसे पूज करके सूर्यादि नवग्रहोंको सोमदिकपालके ऊपरभागमें स्थापन करके
विधिपूर्वक पूजे । उसीको बतलाते हैं—सूर्यका रंग लाल है और बख चमर हव्रविमान भी
लाल हैं, चंद्रमाका वर्ण सफेद है, मंगलका लाल वर्ण है, बुध और बृहस्पतका रंग सुवर्णके
समान है, शुक्रका रंग सफेद है, शनि, राहु और केतु—ये तीनों काले रंगके हैं । इन ग्रहोंको

१ सूर्यादि राहुपर्यंत ग्रहोंको आठ दिशाओंमें स्थापन करे बुध और बृहस्पतिके मध्यमे केतुका आसन स्थापित करे

कोणस्थातनुकेतवो जिनमहे हुत्वेह पूर्वादितः

सोमोर्ध्वधिकुशं निवेश्यमुदमाप्यंते सवर्णाचिनैः ॥ २३ ॥

पूर्वादिक्षु सवर्णाक्षतपुंजान् स्थापयित्वा तदुपरि सूर्यादीनां क्रमेण कुंकुमाद्यक्तदर्भासनानि विन्यसेत्-
इति दर्भन्यासविधानम् ।

प्रारब्धाः फणियक्षभूतक्रतुभिर्देहातिवित्तक्षतिः

स्थानभ्रंशरसाद्यसाम्यविपदस्तत्कल्पनाकल्पतः ।

जिन प्रतिष्ठोत्सवमें आह्वानन कर सोम दिक्पालके ऊपरभागमें दर्भ रखकर पूर्वादि दिशा-
ओंमें स्थापन कर समान वर्णकी पूजन द्रव्यसे पूजे तो आनंदमंगल प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥
उनके समान रंगवाले अक्षतके पुंजोंको रखकर उनके ऊपर सूर्यादिके क्रमसे कुंकुमादि रंगे-
हुए दर्भ (दाभ) के आसनोंको रखे । भावार्थ—सूर्यके लिये उत्तम केसरसे दाभको रंगे,
चंद्रमाके लिये चंदनसे, मंगलके लिये सिंदूरसे, बुध बृहस्पतके लिये हलदीसे, शुक्रके लिये
चंदनसे और शनि राहु केतुके लिये कस्तूरसि रंगे । इस प्रकार दर्भ रखनेकी विधि वर्ण-
नकी गई ॥ नागकुमारदेव शरीरपीडा करते हैं, यक्षदेव धन हरते हैं. भूतदेव स्थानभ्रष्ट
करते हैं, राक्षसदेव धातुवैपम्य करते हैं इसलिये नागकुमारादिकी स्थापना करके पूजनेसे
पूर्वोक्त सब विघ्न दूर हो जाते हैं तथा सूर्यादिग्रहोंकी पूजा करनेसे कापालिक भिद्यु वर्णी

येष्विष्टेषु च तापसादिषु शमं यांत्याशयित्वाचिते-

ष्वातन्वंतु गुरुप्रसादवरदास्तेर्कादयो वः शिवम् ॥ २४ ॥

कुमारदीक्षितेष्वेकतममर्चयतां रुजः । कुजः कुष्याद् ग्रहाः शेषाः सवर्णेषु जिनेषु वः ॥ २५ ॥

आदित्यादीनां सपर्याविध्यनुवाद्मुखेन प्रभावख्यापनाय प्रतिदिशं पुष्पोदकाक्षतं क्षिपेत् ।

ग्रहाः संशब्दायै युष्मानायात सपरिच्छदाः ।

अत्रोपविशतेतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ २६ ॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजोपक्रमाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

संन्यासी आदिकर किये गये उपद्रव शांत होते हैं । ऐसे गुरुके प्रसादसे वर देनेवाले सूर्यादि ग्रह तुम भव्योंका कल्याण करें ॥ २४ ॥ अथवा बाल ब्रह्मचारी वासुपूज्य महि नेमि पार्श्व महावीर-इन पांचोंमें किसी एकको पूजनेसे मंगल ग्रह रोग शांत करता है । और ग्रहोंके समान वर्णवाले तीर्थकरोंमेंसे किसी एकको पूजनेसे वाकी अन्य ग्रह भी रोगोंका नाश करते हैं ॥ २५ ॥ सूर्यादि ग्रहोंकी पूजाविधिके द्वारा प्रभाव वतलानेके लिये सब दिशाओंमें पुष्प जल अक्षतोंको क्षेपण करे । अब आह्वानादि पांच उपचारोंसे उनकी पूजा विखलाते हैं-हे सूर्यादि ग्रहो ! हम तुमको बुलाते हैं, तुम सपरिवार आओ, यहां तिष्ठो, तुम सबको हम आवरसे पूजते हैं । यहां पर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण पूजन-

ऊर्ध्वं विस्तीर्णमंशान् वसुजलधिमितान् योजनस्यैकषष्ठान्
 सुवत्वाष्टौ तच्छतानि क्षितिमनिलघृतं खेस्रहस्तैश्चतुर्भिः ।
 पूर्वार्धाशानुपूर्व्या पृथगिभभिदिभोक्षार्धदेवैर्विमानं
 स्वारूढो नीयमानं दशशतशरदन्वीतपलयोत्तमायुः ॥ २७ ॥
 त्वं तोष्टा तापसेष्टया कमलकरहरिद्वाहनेता ग्रहाणां
 नैवेद्यैः सानुगोर्कैधनशृतपरमान्नोद्यसर्पिर्गुडाद्यैः ।
 गंधैः पुष्पैः फलैश्चोत्तमघुसृणजपापकनारंगपूर्वै-
 स्तादृक्षैश्चाक्षताद्यैरिह हरिहरिति प्रीणितः प्रीणयास्मान् ॥ २८ ॥

ये चार उपचार कहे गये हैं विसर्जन पूजाके वाद होता है । इस तरह पांच उपचार
 पूजाके सब जगह जानना चाहिये ॥ २६ ॥ इस प्रकार हर एककी पूजाके आरंभमें आद्धा-
 ननादि करनेके समय पुष्पांजलिका क्षेपण करना चाहिये । अब सूर्यादिकी पूजाविधि
 कहते हैं-पहले “ ऊर्ध्वं ” इत्यादि और “ त्वं तोष्टा ” इत्यादि-ये दो श्लोक पढकर “ हे
 आवित्य ” कहकर आख्यानन स्थापन सन्निधीकरण करे, उसके बाद “ ओं आवित्याय ”
 इत्यादि बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढावे । आकके ईधनसे पकाई हुई खीर ताजा गौका
 घी गुड लाहू वगैरः नैवेद्यसे पूजै तथा अग्निमें आहुतियां दे जिसके लिये यह पूजाकर्म

हे आदित्य आगच्छ आदित्याय स्वाहा आदित्यानुचराय स्वाहा आदित्यमहतराय स्वाहा अग्नेये स्वाहा अनिलाय स्वाहा वरुणाय स्वाहा सोमाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा ओं भूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा ओं आदित्याय स्वर्गणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं घृणं दीपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा । इत्यादित्याह्वाननं । “यस्यार्थे क्रियते कर्म स प्रीतो नित्यमस्तु मे । शांतिकं इत्यादि ॥

तद्धिवादुरुविंशमष्टभिरितो भागैश्चरद्योजना-

शीत्योर्ध्वं तदिवाब्दलक्षयुतपल्लयौकायुरभेर्दिशि ।

शीतांशो सरलाज्यकिंशुकसमितिसद्भान्दुग्धादिभि-

स्त्वं कापालिकसत्क्रियाप्रिय इह प्राय ग्रहाग्रप्रभो ॥ २९ ॥

हे सोम आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

करता हूं वह देवता मेरे ऊपर हमेशा प्रसन्न रहे । ऐसा अंतमें सब जगह कहना चाहिये ॥ २७।२८ ॥ इस प्रकार सूर्यकी पूजाविधि हुई । “ तद्धिवादुरु ” इत्यादि श्लोक पढकर “ हे सोम ” इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर पूर्व कहीं ओहूँमें “ आदित्याय ” की जगह “ सोमाय ” बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ देवदारुकी लकड़ीका चूरा घी ढाककी लकड़ीसे पकाया अन्न दूध-इन सबको मिलाकर आहूतियां अग्निमें दे, यह सोमकी पूजा

न्यूनै विवमितोकयोजनशते क्रोशार्धमात्रं क्षिते-
 वीक्षं द्विद्विसहस्रकेसरिमुखैर्भिक्षुप्रियः शंखभृत् ।
 पलयार्धायुरपाक्कुजात्र खदिराभृष्टैर्गुंडाजोत्कटेः
 संतुष्टो यवसक्तुभिर्घृतयुतैर्दुर्गादिभिर्धूप्यसे ॥ ३० ॥
 हे-अंगारक आगच्छ अंगारकाय स्वाहा ।

विवं खं शशिनोष्टयोजनमतीत्योर्ध्वत्रंजद्भुजवत्
 क्रोशार्धप्रमितं कुजस्थितिरितो वर्णाष्टिमुत्पुस्तकम् ।

हुई । २९ ॥ “ न्यूनै ” इत्यादि श्लोक पढ़कर “ हे अंगारक ” इत्यादिसे आह्वाननादि तीन
 करे फिर ओं ह्रीं “ अंगारकाय ” लगाकर जलादि आठ द्रव्य चढ़ावे । इसमें खैरकी
 लकड़ीसे थुने हुए गुड घीसे मिले हुए जौके सत्तुओंसे तथा शगुल घी राल इलाइची
 यह मंगलकी धूपसे दक्षिण दिशामें आहृतियां दे । इससे मंगलदेव प्रसन्न होता है ॥ ३० ॥
 करे फिर ओं ह्रीं “ विवं ” इत्यादि श्लोक पढ़कर “ हे बुध ” इत्यादिसे आह्वाननादि
 अष्ट सिद्धि मिलती है । अपामार्गकी लकड़ीसे भातको बनाकर उसमें दूध डाले ऐसा
 नैवेद्य बनावे तथा राल घीकी धूपसे पश्चिमदिशामें आहृतियां दे यह बुधकी पूजा हुई

विभ्र त्वं विधुजोपवीतयुगपामौघसिद्धौदन-
क्षीरं सर्जं रसाब्जधूपमजगो रक्षोदिशि स्वीकुरु ॥ ३१ ॥

हे बुध आगच्छ बुधाय स्वाहा ।

तच्चाराद्रसयोजनैरुपरि या तद्गद्विमानं मनाग्रूनक्रोशमितः सप्तुस्तककमंडल्वक्षसूत्रोब्जगः ।
पल्यैकायुरिहोपवीतरुचिरोरस्कःपरिन्नाडतः प्रत्यक् पिप्पलपकपायसहविधूर्पैर्गुरोऽम्यर्च्यसे ३२

हे बृहस्पते आगच्छ बृहस्पतये स्वाहा ।

सौम्यान्धेद्युषितस्त्रियोजनमतिक्रतित्रयानं तथा

प्रैर्यं क्रोशततं त्रिसूत्रफणभृत्पाशाक्षसूत्रैः स्फुरन् ।

प्रीतः पाशुपते सवर्षशतपल्यायुः शुवस्थो मरुत्-

काष्ठायां गुडफल्युपाधितयवानाज्यैः कवे पूज्यसे ॥ ३३ ॥

हे शुक्र आगच्छ शुक्राय स्वाहा ।

॥ ३१ ॥ “तच्चारा” इत्यादि श्लोक पढकर “हे बृहस्पते” इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर
ओंह्रीं “बृहस्पतये” लगाकर जलादि द्रव्य चढावे यद्वां पर पश्चिमदिशामें पीपलकी लकडीसे
बनी हुई खीरमें-गौके बीसे मिश्रित धूप डाले उससे आहूतियां देवे । यह बृहस्पतकी पूजा
हुई ॥ ३२ ॥ “सौम्यान्धे” इत्यादि श्लोक बोलकर “हे शुक्र इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर

क्रोशार्थं पृथुयोजनैस्त्रिभिरुपर्यर्च्यैः कुजान्मंडलं
तद्द्रव्यं तु गतोर्द्धपत्यपरमायुष्कस्त्रिसूत्रीयुतः ।

नीतस्तृप्तिमुदकशर्माधनशृतैर्माषैस्त्रिलैस्तुलै

रालाज्यागुरुणेज्यसे श्रवणमुञ्जैपालपूज्यः शने ॥ ३४ ॥
हे शनैश्चर आगच्छ शनैश्चराय स्वाहा ।

त्यक्तारिष्टदरोनयोजनततस्वव्योमपानध्वजं

चत्वारि ब्रजदंगुलान्यहरहः षष्ठे च मास्यैदवम् ।

ओंहीमें "शुक्राय" जोडकर जलावि द्रव्य चढावे । यहां वायव्यविशामें फल्युकाष्ठसे सुने
हुए जो गुड घी मिलाकर अग्निसमें आहुति दे । यह शुक्रकी पूजा हुई ॥ ३३ ॥ "क्रोशास्त्रं"
इत्यादि श्लोकको पढकर "हे शनैश्चर" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंहीमें "शनैश्चराय"
लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहांपर शमीकी लकडी उरद तिल चांचल
तथा राल घी अगुरुकी धूपसे आहृतियां दे । इस प्रकार शनैश्चरकी पूजा हुई ॥ ३४ ॥
"त्यक्त्वा" इत्यादि श्लोक पढकर "हे राहो" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंहीमें
"राहवे" लगाकर जलावि अष्ट द्रव्य चढावे । यहां दुग्धके ईंधनसे पकाया गया काला
किया गया गेहूं आदिका चून तथा दूध घी लाख इनकी धूपसे अग्निसमें आहृतियां दे ॥

विवं छादयिता तदंशुनिवहै राहो द्विजार्चामहो
दूर्वापिष्टपयोघृताक्तजतुधूपेनेशदिर्यर्चसे ॥ ३५ ॥

हे राहो आगच्छ राहवे स्वाहा ।

षष्ठे षष्ठ उपेत्य मासि तपनस्येदोस्तमोविवव-
द्विवाद्धिवमथश्चरन्मलिनयत्यंशुद्धमैस्तद्वियत् ।

दर्शातेधिवसन्निहोर्ध्वदिशि तत्केतो सकुलमाषकं
स्फूर्जत्केतुसहस्रदेह सकुचं विल्वाड्यधूपं भज ॥ ३६ ॥

हे केतो आगच्छ केतवे स्वाहा ।

एते सप्तधनुःप्रमाणवपुरुत्सेधा नवापि ग्रहाः
शशवचंद्रवलावलाप्यसदसदानस्फुरद्विक्रमाः ।

यह राशुकी पूजा हुई ॥ ३५ ॥ “ षष्ठे ” इत्यादि श्लोक पढकर “ हे केतो ” इत्यादिसे आह्वा-
नादि करे फिर ओंह्रींमें “ केतवे ” लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहां कुलमाष (कु-
लथी) के घूनको वमके ईंधनसे पकावे तथा घी मिले हुए कच्चे वेलकी धूपसे आहुतियां दे ।
यह केतु मद्यकी पूजा हुई ॥ ३६ ॥ उसके बाद “ एते ” इत्यादि श्लोक पढकर “ ओं ह्रीं ”

सत्कृत्योपहृतामिमामिह महे-पूर्णाहुतिं प्राप्तु
 प्रीतिं व्यक्तं च यष्टयाजकनृपादीष्टप्रदानाद् द्रुतम् ॥ ३७ ॥
 पूर्णाहुतिः । ओं ह्रीं ह्रः फट् आदित्यमहाग्रह अमुकस्य शिवं कुरु २ स्वाहा । एवं सोमा-
 दिष्वपि-योज्यम् ।

हुत्वा स्वमंत्रचितमंबुनि सप्तसप्तमुष्टिप्रमाणतिलशालियवं प्रसत्तिम् ।

नीता द्रुतप्लुतसमिञ्जिरथामिञ्जुं दे एकादशस्थवदवंतु सदा ग्रहा वः ॥ ३८ ॥

आशीर्वादः । इति ग्रहपूजाविधानम् । अथात्र मंडले स्नपनपीठे निवेश्य विनचतुर्विंशति
 प्रागुक्तविधिना स्नपयेत् ।

लघ्वेषोष्टदले शांतिकर्मकाशीतिके द्रुहत् । मंडले ख्याप्यतां कल्पो यथा ध्यानं तु तत्फलम् ॥ ३९ ॥

इत्यादिसे पूर्ण आह्वति दे । हर एक ओं ह्रीं में ग्रहोंके नाम तथा यजमानका नाम अवश्य लगाना
 चाहिये ॥ ३७ ॥ फिर 'हुत्वा' इत्यादि आशीर्वाद श्लोक पढ़े फिर सात सात शालिचावल तिल
 शालिचावल जौ इन तीन धान्योंको जलमें क्षेपणकर द्रुतसे लिपटी हुई लकड़ीसे अग्निमें
 आह्वतियां दे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार नव ग्रहकी पूजा जानना ॥ उसके बाद उस मंडलेमें
 अभिषेकके सिंहासनपर चौबीस तीर्थकरोंका स्थापन करके पहले कही हुई विधिसे अभि-
 सेक करे ॥ लघुशांतिकर्म आठपत्रके मंडलपर और बृहत् शांतिकर्म इक्यासी कोठोंके

ते मंत्रविद्यया मन्त्रात्सुक्तेषु कर्मणि । शुंज्याद्यार्थं विमानामसुत्पत्तयै शमाय च ॥ ४० ॥

इति शांतिकर्मविधानं । अथातो जलाशयमुपसद्य सुपवित्रपात्रे वरकार्शमीरकर्षूरदिना कर्णिकायां ॐ ह्रीं श्रीपरब्रह्मणे नतानंतज्ञानशक्तये नमः इति लिखित्वा पूर्वार्धपटलेषु क्रमेण ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः स्वाहा १ ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्यः स्वाहा २ ओं ह्रीं सीताविद्धमहाहृददेवेभ्यः स्वाहा ३ ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाहृददेवेभ्यः स्वाहा ४ ओं ह्रीं लवणोदकालेदमागधादितीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ५ ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ६ ॐ ह्रीं संख्यातीतसमुद्रदेवेभ्यः स्वाहा ७ ॐ ह्रीं

मंडलपरं यथायोग्यं करे । उसका फल : ध्यानके माफिक मिलता है अर्थात् लघुशांतिकर्म भी सम्यक् ध्यानसे कियाजाय तो महाफल देता है और बड़ा शांतिविधान भी थोड़े ध्यानसे किये जानेपर थोड़ा फल देता है ॥ ३९ ॥ यह बुद्धिमान् इंद्र शास्त्रकथित रीतिसे तीर्थोत्सुकावानविधिमें कहे गये लघु बृहत् शांतिविधान कर्मोंको अत्रिम विघ्नोंकी अद्युत्पत्ति और पूर्वविघ्नोंकी शांतिके लिये यथायोग्य करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार शांतिकर्मका विधान कहा गया । अब उसके बाद जलाशय (सरोवर नदी) के किनारे जाकर धोये हुए नये थालमें उत्तम केशर कपूरसे अष्टपत्रकमलकी कर्णिका (वीच-भाग) में “ ओं ह्रीं अर्हं ” इत्यादि लिखकर पूर्वावि आठ पत्रोंपर क्रमसे “ ओं ह्रीं श्री ” इत्यादि आठ मंत्र लिखकर तीनवार मायाबीजकी ईकारमात्रासे वेदितकर क्रोंकार अंतमें

लोकाभिमततीर्थदेव्यः स्वाहा ८ ॥ इति विलिख्य त्रिमयामात्रया परिक्षिप्य कौकारेण निरुध्य बहिः
 “ मुखमूलवपोपेतपत्रपद्मांकितः सितः । पत्रवर्णिकादिक्रोणः कलशस्तोयमंडलम् ” ॥ इत्येवं लक्षणं
 वरुणमंडलं चालिख्य परब्रह्मार्चनपुरस्सरं पत्रेषु जलदेवताः स्वस्वमंत्रपूतजलादिभिरुपचरेत् । तद्यथा ।
 तद्ब्रह्मचिन्मयसुधारसपूरभोक्तुं वाक्यामृताद्भुतजगद्धिधिपूर्वमेतत् ।
 अब्गंधतंदुललतांतचरुपदीपथूपमसूतकुसुमांजलिभिर्यजेस्मिन् ॥ ४१ ॥

ॐ ह्रीं अहं श्रीपरमब्रह्मणेऽन्तानंतज्ञानशक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं
 फलं पुष्पांजलिं च निर्वपामीति स्वाहा ।

लिखे । उसके बाहर जलमंडल लिखकर श्री परब्रह्म अर्हंतका पूजन करे, फिर आठ पत्रोंपर
 आठ प्रकारके जलदेवताओंका पूजन अपने २ मंत्रसे मंत्रित पवित्र जलादि द्रव्योंसे करे ॥
 जलमंडलकी विधि इसतरह है कि पहले आठ पत्रका कमल बनावे उसके आगे कलशका
 आकार लिखे उसके मुखभागपर कमल खींचे उसके मध्यभागमें पत्रके ऊपर वकार
 लिखे उसके वाद कलशके नीचे भागपर कमल बनावे उसके मध्यपत्रमें पकार
 लिखे । कलशका वर्ण सफेद है, उस कलशकी चारों विशाओंमें पकार लिखे, बाहरके
 भागमें चारकोनोंमें वकार लिखे—इस प्रकार वरुणमंडल (जलमंडल) जानना ॥ अब अष्टवल
 कमलपत्रकी पूजाविधि कहते हैं—“ तद्ब्रह्म ” इत्यादि श्लोक पढकर “ ओं ह्रीं ” इत्याद्विसे
 परम ब्रह्म अर्हंत देवकी जलावि अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४१ ॥ “ पद्मावि ” इत्यावि श्लोक पढकर

पद्मादिदिव्यहृदवारिश्रुतीभोक्त्री श्रीपूर्वदिव्ययुवतीर्विधिपूर्वमेताः ।
अवर्गंघ..... ॥ ४२ ॥

ओं ह्रीं श्रीप्रमृतिदेवताभ्यः इदं..... ।

गंगादिदिव्यसरिदंबुविभ्रुतिभोक्त्री गंगादिदैवतवधूर्विधिपूर्वमेताः ।
अब्..... ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्यः इदं..... ।

सीतातटुत्तरसरित्प्रणयि हृदांभो भोक्षन्महाहृदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अब्..... ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाहृददेवैभ्यः इदं..... ।

सीतातटुत्तरसरित्प्रणयि हृदांभो भोक्षन्महाहृदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अब्..... ॥ ४५ ॥

“ओं ह्रीं श्रीप्रभृति” इत्यादिसे पहले पत्रके ऊपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४२ ॥
“गंगादि” इत्यादि श्लोक पढकर “ओं ह्रीं गंगादि” इत्यादिसे जलादि अष्ट द्रव्य दूसरे
पत्रपर चढावे ॥ ४३ ॥ “सीता” इत्यादि श्लोक पढकर “ओं ह्रीं सीताविद्ध” इत्यादिसे
तीसरे पत्रपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४४ ॥ “सीता तटुत्तर” इत्यादि श्लोक पढकर

ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाहृददेवैभ्य इदं..... ।

सिंधुप्रवेशपथतोयविभ्रूति भोक्ष्यन् श्रीमागधादिविबुधान् विधिपूर्वमेतान् ।

अब्..... ॥ ४६ ॥

ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागघादितीर्थदेवैभ्यः इदं..... ।

सिंधुप्रवेशपथतोयविभ्रूतिभोक्ष्यन् श्रीमागधादिविबुधान् विधिपूर्वमेतान् ।

अब्..... ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं सीतासीतोदामागघादितीर्थदेवैभ्यः इदं..... ।

संख्यातिगांभुनिधिनीरविभ्रूति भोक्ष्यन् क्षारादिवारिधिसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।

अब्..... ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं सीतोदाविद्ध..... ।

“ओं ह्रीं सीतोदाविद्ध” इत्यादिसे चोथे पत्रपर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ४५ ॥
“सिंधुप्रवेश” इत्यादि श्लोक पढकर “ओं ह्रीं लवणोद” इत्यादिसे पांचवें पत्रपर जलादि
अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ४६ ॥ “सिंधुप्रवेश” इत्यादि श्लोक पढकर “ओं ह्रीं सीतासीतोदा”
इत्यादिसे छठे पत्र पर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४७ ॥ “संख्यातिगां” इत्यादि श्लोक
पढकर “ओं ह्री संख्या” इत्यादिसे सातवें पत्रपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४८ ॥

लोकप्रसिद्धपुरतीर्थजलाद्धिं भोक्ष्यन् लोकेष्टतीर्थमरुतो विधिपूर्वमेतान् ।

अव्..... ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवेभ्य इदं..... स्वाहा ।

एवं जलदेवताः प्रसाद्य तत्पूजां जलाशयमध्ये प्रविश्य मंत्रमिमं पठित्वा ह्यावयेत् ।

ॐ “ एतां भोक्तव्योबुभारानुरुहदसरितां श्यादिगंगादिदेव्यस्तीर्थानां मागधाद्या इम उदाधिसुरास्तोयधीनामिमिमी । अन्येषां चार्पितार्था निजनिजसलिलश्रीविलासैर्जिनेदोर्भक्तिप्रदाः प्रतिष्ठाभिषवमहकृते सारयंत्वेतदर्णः ” ॥ ५० ॥

इति पूजाह्रावनमंत्रः । ततः शक्रास्तज्जलेन कलशान् पूं पूं तीरे प्रस्तीर्य चंदनस्रदूर्वादर्भादिभिरभ्यर्च्य तन्मुखेषु श्यादिमंत्रपूतं पल्लवफलं विन्यस्य कृतकलशोद्धारमंत्रोपहारोपस्कारानेतानेकशः स्वयमुद्धृत्योद्धृत्य तत्क्षणसंमानितपुं ध्रीपाणिपत्रेषु समर्प्य शेषकलशाग्निजकरकमलैरुद्धहंतो

“ लोकप्रसिद्ध ” इत्यादि श्लोक पढकर “ ओं ह्रीं लोकाभिमत ” इत्यादि कहकर आठवें पत्रपर स्थित देवताकी जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जलदेवताओंको पूजासे प्रसन्न करके जलाशयमें घुसकर इस आगेके “ ओं एतां ” इत्यादि श्लोक-मंत्रसे उस लिखित कमलपत्रका विसर्जन कर दे (छोड़ दे) ॥ ५० ॥ उसके बाद वे ईंद्र उस

गजादिवाहनान्यधिरुह्य महोत्सवेनाभिचैत्यालयमागच्छेयुः । ओं श्री ही धृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मीशांति-
पुष्टयः श्रमद्विक्रमार्थो निनेन्द्रमहाभिषेककलशमुलेष्त्रेषु नित्यनिविष्टां भवत भवतेति स्वाहा । इति
श्रयादिमंत्रः ।

ॐ “क्षीराब्धि सर्वतीर्थोदकमयवपुषा स्वैरमाक्रोशतोस्य क्षीरैः पद्माकरस्य प्रणयमु-
पगतान् शतकुंभीयकुंभान् । सानंदं श्रयादिदेवीनिचयपरिचयोञ्जुंभमाणप्रभावानेतानभ्यु-
द्धरामो भगवदभिषवश्रीविधानाय हर्षात् ॥ ५१ ॥

इति कलशोद्धारमंत्रः । एतत्पठित्वा पुष्पाक्षतेनोपहार्यं कलशानुद्धरेत् । इति तीर्थोदकादान-
विधानम् । अथ निनयज्ञादिविधानान्यभिधास्यामः—

जलसे कलशोंको भरकर किनारेपर रखे फिर उनको चंदन; पुष्पमाला-दूव-दर्भ-अक्षत सर-
सोंसे पूजकर उनके मुखपर ‘श्री आदि’ मंत्रसे पवित्रित पत्ता व फल रखके कलशोद्धार मंत्रसे
पूजित कर एक एकको उठावे । फिर उसी समय सौभाग्यवती स्त्रियोंके हस्तकमलोंमें रखे
और बचे हुए कलशोंको आप हाथमें लेकर हाथी आदिकी सवारीपर चढके महान उच्छ-
वके साथ चैत्यालय (जिनमंदिर) में आवें ॥ “ओं श्री ” इत्यादि श्री आदि मंत्र है ।
“ओं क्षीराब्धि ” इत्यादि कलशोद्धारमंत्रश्लोक हैं ॥ ५१ ॥ ऐसा पढकर पुष्प अक्षतादि

इंद्रश्चैत्यालयं गत्वा वीक्ष्य यज्ञांगसज्जनान् । यौगमंडलपूजार्थं परिकर्माचरेदिदम् ॥ ५२ ॥
 स्नानानुस्नानभागात्तथौतवस्त्रो रहः स्थितः । कृतेर्यापथसंशुद्धिः पर्यकस्थोऽमृतोक्षितः ॥ ५३ ॥
 दहनप्लावने कृत्वा दिव्यस्वर्गिणु दिक्षु च । न्यस्य पंचनमस्कारान् प्रयुक्तगुरुमुद्रकः ॥ ५४ ॥
 व्युत्सृज्यर्गं पुरेकेण व्याप्ताशेषजगत्रयम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रतिहार्यादिभूपितम् ॥ ५५ ॥
 पादाधोनं नमद्विश्वं स्फूर्जतं ज्ञानतेजसा । परमात्मानमात्मानं ध्यायन् जह्वापरराजितम् ॥ ५६ ॥

क्षेपण कर कलशोंको उठाना चाहिये ॥ इस प्रकार जलयात्राविधान वर्णन किया ॥ अब
 जिनयज्ञादि विधियोंको कहते हैं—प्रतिष्ठाचार्य इंद्र चैत्यालयमें जाकर पूजा सामग्री और
 श्रावकोंको तैखकर यागमंडलकी पूजा करनेके लिये इस कहे जानेवाले अंगसंस्कारको करे
 ॥ ५२ ॥ पहले तो जलसे स्नान करे; उसके बाद मंत्रस्नान करे; पुनः धुले हुए धोती ड्रुपड़े
 पहरे । उसके बाद एकांतमें स्थित होकर ईर्यापथशुद्धि करके पद्मासन लगाकर अमृतमंत्रसे
 मंत्रित जलको अपने ऊपर छिड़के ॥ ५३ ॥ आगे कहे जानेवाली दहन प्लावन क्रियाओंको
 करके अपने अंगोंमें और दिशाओंमें पंच नमस्कारका न्यास करके पंचगुरुमुद्राको धारण
 करे ॥ ५४ ॥ पूरकवायुसे कायोत्सर्ग करके परमात्माके समान अपना ध्यान करे और नम-
 स्कार मंत्रको जपे । इसप्रकार परिणामोंकी शुद्धिसे पापोंका नाश कर पुण्यात्मा हुआ

१ एते श्लोकाः बहुर्नदिसैद्धांतिकाचार्यविरचितप्रतिष्ठासारसंग्रहेऽपि संति इति तन्वीतीयनुसृत्यात्रापि उद्धृता
 इति प्रतीयन्ते ।

परिणामविशुद्ध्यास्तपाभौघः पुण्यपुंजभाक् । ध्वस्तापायचयः कुर्याज्जिनयज्ञादिसंविधीन् ५७
 शं वं स्वराट्टतं तोयमंडलद्वयवेष्टितम् । तोये न्यस्याग्रतर्जन्या तेनानुस्नानमावहेत् ॥ ५८ ॥
 अर्धचंद्रपुटीरूपं पंचपत्रांबुजाननम् । नांतलांतासादिक्कोणं धवलं जलमंडलम् ॥ ५९ ॥
 पृथग्द्विद्वेकवाक्यांतमुक्तौच्छ्वासं जपेन्नव । वारान् गार्थां प्रतिक्रम्य निप्रधाळोचयेत्ततः ॥ ६० ॥
 गुरुमुद्राग्रभू शं वं हः पीहोभ्योमृतैः स्वके । स्ववद्भिःसिच्यमानं स्वं ध्यायन् मंत्रमिमं पठेत् ॥ ६१ ॥

विघ्नोंको दूर कर जिनेन्द्रदेवकी पूजादि क्रियाओंको करे ॥ ५५ । ५६ । ५७ ॥ अब अनुस्नाना-
 दि क्रियाओंको कहते हैं—शं वं इन दो अक्षरोंको जलमंडलमें लिखकर उसको जलमें रखे;
 फिर तर्जनी अंगुलीसे जल लेकर अपने ऊपर डाले—यह मंत्रस्नान है ॥ ५८ ॥ जो अर्ध-
 चंद्रपुटी स्वरूप हो जिसका मुख पांचकमल पत्ररूप हो जिसके, विशाओंके कोने “प व”
 इन दो अक्षरोंसे व्याप्त हों और श्वेतवर्ण हो, वह जलमंडल है ॥ ५९ ॥ एक उच्छ्वासमें तीन
 बार इस तरह तीन उच्छ्वासोंमें नौवार मंत्रको जपकर “ईर्यापथे” इत्यादि श्लोक पढे ॥ ६० ॥
 यह ईर्यापथशोधन किया है । गुरुमुद्राके अग्रभागकी भूमिमें ‘शं वं हः पी हः’ इन अमृत अक्ष-
 रोंसे अपनेको सींचा हुआ समझ ध्यान करे । फिर इस “ओं हीं अमृते” इत्यादि मंत्रको
 पढता हुआ जलको शरीरपर छांटे ॥ ६१ ॥ यह अमृतस्नान है ॥ त्रिकोण यंत्रके कोनोंमें
 १ मंत्रस्नानम् । २ श्यापथेशोधनम् ।

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतचर्षिणि अमृतं स्वावय स्वावय सं सं ह्रीं २ ब्लूं २ द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय २ सं हं ह्रीं ह्रीं हं सः स्वाहा । इति अमृतस्नानम् ।

स्वस्तिकाग्रत्रिकोर्णातर्गतरेफशिखावृतम् । अग्निमंडलमोकारगर्भं रक्ताभमास्थितम् ॥ ६२ ॥
सप्तधातुमयं देहं देहेद्रेफार्चिषां चरैः । सर्वोर्गदेशैर्विष्वधूयमानैर्नभस्वता ॥ ६३ ॥
नाभिस्यसस्वरद्वयपत्रवर्जातरहं रतः । देहच्छिखौत्रैरुद्यद्भिरष्टकर्मभयं वपुः ॥ ६४ ॥
वृत्तात्सर्विदेदिंकीणस्वायाद्रोमूत्रिकाकृतेः । कृष्णाद्वायुपुराद्द्वैतैः प्रापद्भिः प्रैर्यं भस्म तत् ॥ ६५ ॥
व्योमव्यापिघनासारैः स्वमाग्न्याव्यामृतद्युतम् । खेहं ध्यायन् सृजेद्देहममृतैरन्यमिदुंवत् ॥ ६६ ॥

सांथिया वनावे । उस यंत्रके अंदर रेफशिखासे वेष्टित ओंकारमहित लालचणेवाल
अग्निमंडलका चिंतन करे । फिर सात धातुमई देहको रेफकी रेफकी ज्वालासे भस्म
करे । नाभिमं स्थित सोलह कमलपत्रोंके मध्यमं स्थित अर्धके रेफकी शिखासे अष्टकर्म-
मयी शरीरको भस्म करे । यह देहनक्रिया है ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ फिर गोलाकार
विंदुसरित वायुमंडलसे उस भस्मको दूर करे । उसके बाद “ खे हं ” इन दो अक्षररूपी
अमृतजलसे अपनेको शुद्ध करके कायोत्सर्ग करे ॥ ६५ । ६६ ॥ यह प्लावनक्रिया है । अब
अग्न्यासिक्रिया कहते हैं—दीनों हाथोंकी कनिष्ठा आवि अगुलियोंमे ‘ ओं ह्रां ’ आवि नम-

ओं नमोऽर्हते सर्वे रक्ष हूं फट् स्वाहा । अनेन पुष्पाक्षतं सप्तवारान् प्रजप्य परिचार-
काणां शीर्षेषु प्रक्षिपेत् ॥ इति परिचारकरक्षा । ओं हूं क्षूं फट् किरिटि २ घातय २ परविघ्नान् स्फोटय
स्फोटय सहस्रखंडान् कुरु २ परमुद्रां छिंद २ परमंत्रान् भिंद २ क्षः क्षः हूं फट् स्वाहा । अनेन श्वेत-
सिद्धार्थानिभंज्य सर्वविघ्नोपशमनार्थं सर्वदिक्षु क्षिपेत् ॥ इति सकलीकरणविधानम् । इतो जिनय-
ज्ञादिविधानं ।

व्योमोपगानुत्तमतीर्थवारं धारा वरंभोजपरागसारा ।

तीर्थकराणामियमंत्रिपीठे स्वैरं लुठित्वा त्रिजगत् पुनातु ॥ ७१ ॥

इष्ट कर्मोंको करता है, उसके कोई विघ्न नहीं आता ॥ ७० ॥ “ओं नमो” इत्यादिसे पुष्प-
अक्षतोंको सात बार पढकर पूजाके सहायकोंके ऊपर क्षेपण करनेसे उनको कोई भी विघ्न नहीं
होताहै । इस प्रकार परिचारकोंकी रक्षा वर्णनकी । “ओं हूं” इत्यादि मंत्रसे सफेद सरसोंको

१ इतः पूर्व प्रतिष्ठोसारकपठः क्षिप्यते-णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उव-
ज्जायाणं णमो लोए सववसाह्वणं ॥ १ ॥ चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलपणत्तो धम्मो
मंगलं ॥ २ ॥ चत्तारि लोगेत्तमा अरहंतलोगेत्तमा साहुलोगेत्तमा केवलपणत्तो धम्मो लोयुत्तमा ॥ ३ ॥
नत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलपणत्तो धम्मो
सरणं पव्वज्जामि ॥ ४ ॥ ओं नमो अर्हते स्वाहा । अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दु.स्थितोऽपि वा । ध्यायेत् पंच

ओं ह्रीं अहं श्रीपरब्रह्मणेऽनंतानंतज्ञानराक्तं ये जलं निर्वपामीति स्वाहा । तीर्थोदकधारा ।
 काश्मीरकृष्णागुरुगंधसारकर्पूरपौरस्त्यविलेपनेन ।
 निसर्गसौरभ्यगुणोल्बणानां संचर्चयाम्यंब्रियुगं जिनानाम् ॥ ७२ ॥
 ओं ह्रीं....
 गंधं निर्व० ।

मंत्रित कर सब दिशाओंमें फेंके ॥ इसप्रकार सकलीकरण विधि समाप्त हुई । अब जिनयज्ञादि
 विधान कहते हैं—प्रतिष्ठासारमें “ णमो अरिहंताणं ” इत्यादि टिप्पणीमें लिखे हुए पाठको पढ़े
 उसके बाद जलादि चढानेके श्लोक बोले ॥ “ ह्योमा ” इत्यादि श्लोक पढ़कर “ ओं ह्रीं ”
 बोलकर जलधारा चढावे ॥ ७१ ॥ “ काश्मीर ” और “ ओं ह्रीं ” बोलकर चंदन चढावे
 नगरहारान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वोवस्थान्तोऽपि वा । यः स्मरेत्परमात्मानं स ब्राह्मभ्यंतरे
 शुचिः ॥ ६ ॥ बाध मे क्षालितं गात्र नेत्रे च विमलीकृते । स्नातोहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ श्रीमल्लिजने-
 न्नाभिनय जगत्रयेऽं स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयाहम् । श्रीमूलसंघसुदृशा सुकृतैकहेतुजिनेन्द्रयज्ञाधिधिरेष मयाभ्यधाधि
 ॥ ८ ॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय । स्वस्ति प्रकाशसहजोक्तिहृत्तद्वयमाय
 स्वस्ति प्रसन्नललितादुतवैभवाय ॥ ९ ॥ स्वस्त्युच्छलद्रिमलबोधधुधासुवाय स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय । स्वस्ति
 त्रिलोकविततेकचिदुत्तमाय स्वस्ति त्रिकालसकलायतिवित्स्वताय ॥ १० ॥ अहंन् पुराणपुरुषोऽहंति पावनानि वस्त्वनि
 नूनमखिलाग्नयमेक एव । अस्मिन् ज्वलद्रिमलकेवलबोधवहो पुण्यं समप्रमहमेकमना जुहोमि ॥ ११ ॥ इव्यस्य
 शुःप्रमधिगम्य यथानुरूपं भावस्य शुद्धिमधिकामाधिगंतुकाम । आलभ्यनाभि विविधान्यलंब्य बलगन् भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि

आमोदमाधुर्यनिधानकुंदसौंदर्यशुंभत्कलमाक्षतानाम् ।
पुंजैः समक्षैरिव पुण्यपुंजैर्विभूषयाम्यग्रशुवं विभूजाम् ॥ ७३ ॥
ओं ह्रीं.... अक्षतं निर्व० ।

सुजातजातीकुमुदाब्जकुंदभंदारमल्लीवकुलादिपुष्पैः ।
मत्तालिमालामुखैरैजिनेन्द्रपादारविंदद्वयमर्चयामि ॥ ७४ ॥
ओं ह्रीं.... पुष्पं निर्व० ।

नानारसव्यंजनदुग्धसर्पिपकान्नशाल्यन्नदधीधुभक्षम् ।
यथाहहेमादिसुभाजनस्थं जिनकमात्रे चरुमर्पयामि ॥ ७५ ॥

॥ ७२ ॥ “ आमोद ” और “ ओं ह्रीं ” कहकर अक्षत चढावे ॥ ७३ ॥ “ सुजात ” और
“ ओं ह्रीं ” पढकर पुष्प चढावे ॥ ७४ ॥ “ नानारस ” और “ ओं ह्रीं ” बोलकर नैवेद्य चढावे
यज्ञम् ॥ १२ ॥ (ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमात्रे पुष्पाजलि क्षिपेत् ॥) चिद्रूप विश्वरूपव्यतिकरितमनायंतमा-
नंदसांद्रं यत्प्राक्तैर्विर्वैव्यंश्रुतदतिपतदसुःखसौख्याभिमानैः । कर्मद्वैकात्तदात्सप्रतिषमलभिदोद्भिन्ननिस्सीमतेजः प्रत्यासी-
दत्परीजः स्फुरदिह परब्रह्म यक्षेहमाह्वम् ॥ १३ ॥ (ओं परब्रह्मज्ञयज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पाजलि क्षिपेत् ।)
स्वामिन् संवोपद् कृतावाहनस्य द्विष्टातेनोद्विक्तस्थापनस्य । स्व निनेकुं ते वपट्टकारजाग्रत्सानिध्यास्य प्रारमेयाष्टधेष्टिम्
॥ १४ ॥ ओं ह्रीं अर्ह श्रीपरब्रह्म अत्रावतरावतर संवोपद् । अवेनावाहयेत् । ओं ह्रीं अर्ह श्रीपरब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ
ठ ठ । अनेन तत्प्रतिष्ठापयेत् । ओं ह्रीं अर्ह श्रीपरब्रह्म मम सनिहितं भव बषट् । अनेन तद्वत् संनिधापयेत् ॥)

ओं ही....

ओं लोकानामर्हतां भूर्भुवः स्वर्लोकानेकीकुर्वतां ज्ञानधाम्ना ।
दीपत्रातैः प्रज्वलत्कीलजालैः पादाभोजद्वन्द्वमुद्योतयामि ॥ ७६ ॥

ओं ही...

श्रीखंडादिद्रव्यसंदर्भगर्भैरुच्यद्रुभ्यामोदितस्वर्गिणैः ।

धूपैः पापव्यापदुच्छेददृशानंघ्रीनर्हत्स्वामिनां धूपयामि ॥ ७७ ॥

ओं ही....

फलोत्तमादाडिममातुल्लिगनारिगपुंगात्रकपित्थपूर्वैः ।

हृद्घ्राणनेत्रोत्सवसुद्गिरद्भिः फलैर्भजेहत्पदपद्मयुग्मम् ॥ ७८ ॥

ओं ही....

वार्गधादिद्रव्यसिद्धार्थदूर्वानंघ्रावर्तस्वस्तिकाद्यैरनिद्यैः ।

हैमे पात्रे प्रसृतं विरचनाथात् प्रत्यानंदार्धमुत्तारयामि ॥ ७९ ॥

नैवेद्यं निर्व्व० ।

आरातिकं निर्व्व० ।

धूपं निर्व्व० ।

फलं निर्व्व० ।

॥ ७५ ॥ “ओं लोकाना ” और “ओं हीं ” बोलकर दीप चढावे ॥ ७६ ॥ “श्रीखंडादि ”
और “ओं हीं ” बोलकर धूप चढावे ॥ ७७ ॥ “फलोत्तमा ” और “ओं हीं ” बोलकर
फल चढावे ॥ ७८ ॥ “वार्गधादि ” और “ओं हीं ” बोलकर अर्ध चढावे ॥ ७९ ॥ फिर

ओं ह्रीं...

अर्घं निर्व० ।

वृषभो वृषलक्ष्मीवानजितो जितदुष्कृतः । शंभवः संभवत्कीर्तिः साभिनंदोभिनंदनः ॥ ८० ॥
सुमतिः सुमतिः पद्मप्रभः पद्मप्रभः प्रभुः । सुपाद्वर्चः पार्वरौचिष्णुश्रंद्रथंद्रप्रभः सताम् ॥ ८१ ॥
पुष्पदंतोस्तपुष्पेषुः शीतलः शीतलोदितः । श्रेयान् श्रेयस्विनां श्रेयान् सुपूज्यः पूज्यपूजितः ८२
विमलो विमलोऽनन्तज्ञानशक्तिरन्तजित् । धर्मो धर्मोदयादित्यः शांतिः शांतिक्रियाग्रणीः । ८३ ।
कुंभुः कुंभ्वादिसदयः सुरप्रीतिरप्रभुः । मष्टिर्मष्टिजये मष्टः सुव्रतो मुनिसुव्रतः ॥ ८४ ॥
नमिर्नमत्सुरासारो नेमिर्नेमिस्तपोरथे । पार्वः पार्वस्फुरद्रोचिः सन्मतिः सन्मतिप्रियः ॥ ८५ ॥
एते तीर्थकृतोर्नैर्भूतसद्भावविभिः समम् । पुष्पांजलिप्रदानेन सत्कृताः संतु शांतये ॥ ८६ ॥

पुष्पांजलिः । इति जिनयज्ञविधानं । अथातः सिद्धभक्तिविधानम् ।

प्रक्षीणे मणिवन्मले स्वमहसि स्वार्थप्रकाशात्मके
निर्मया निरुपाख्यमोघचिदमोक्षाथितीर्थोक्षिपः ।

“ वृषभो ” इत्यादि सात श्लोक पढकर आशीर्वादके लिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ८० ॥
॥ ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ ॥ इसप्रकार जिन (अर्हंत) पूजाविधान हुआ । अब
सिद्ध भक्तिकी विधि कहते हैं—“ प्रक्षीणे ” इत्यादि श्लोक पढकर अर्हंतकी प्रतिमाके आगे

कृत्वाऽनाद्यपि जन्मसांतममृतं साद्यप्यनंतं श्रितान् ।

सद्दृग्धीनयष्टत्तसंयमतपः सिद्धान् भजेर्षेण वः ॥ ८७ ॥

अनेनार्हत्प्रतिमात्रे सिद्धानामर्घं दत्त्वा भक्त्या स्तुवीत । तथाहि । अर्हत्प्रतिष्ठारंभक्रियायां पूर्वाचार्या-
नुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । इत्युचार्य णमो अ-
रहंताणमित्यादि दंडकं पठित्वा योऽस्माभीत्याद्विस्तवं चाधीत्य सिद्धभक्तिमिमा पठेत् ।

यस्यानुग्रहतो दुराग्रहपरित्यक्त्वात्मरूपात्मनः

सद्द्रव्यचिदचिकालविषयं स्वैः स्वैरभीक्ष्णं गुणैः ।

सार्थव्यंजनपर्ययैः समवययज्जानाति बोधः समं

तत्सम्यक्त्वमशेषकर्मभिदुरं सिद्धान् परं नौमि वः ॥ ८८ ॥

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यस्थयोर्दीपव-

च्चित्तं द्योतकमुद्दिरन्मुदमरं नो रलयति द्वेष्टि न ।

धारावाह्यपि तत्प्रतिक्षणनवीभावोद्दुरार्थापित-

प्रामाण्यं प्रणमामि वः फलितहृद्गत्पुक्तिमुक्तिश्रिये ॥ ८९ ॥

सिद्धोको अर्घं देवे ॥ ८७ ॥ उसके बाद भक्तिसहित स्तुति करे । वह इस तरह है

सत्तालोचनमात्रमित्यपि निराकारं मतं दर्शनं
 साकारं च विशेषगोचरमिति ज्ञानं प्रमादीच्छया ।
 ते नेत्रे क्रमवर्धिनी सरजसां प्रादेशके सर्वतः
 स्फूर्जती युगपत्पुनर्विरजसां शुष्माकमंगोतिगाः ॥ ९० ॥
 शक्तिव्यक्तिभक्तविश्वविविधाकारौघकिर्मोरिता-
 नंतानंतभवस्थशुक्लपुरुषोत्पादव्यध्रौव्यव्ययात् ।
 स्वं स्वं तत्त्वमसंकरव्यतिकरं कर्तृन् क्षणं प्रत्यथो
 भोत्क्षणमन्वयतः स्मरामि परमाश्चर्यस्य वीर्यस्य वः ॥ ९१ ॥
 यद्वयाहंति न जातु किंचिदपि न व्याहन्यते केनचि-
 ध्यन्निष्पीतसमस्तवस्त्वपि सदा केनापि न स्पृश्यते ।
 यत सर्वज्ञसमक्षमप्यविपयं तस्यापि चार्थाद्भिरा
 तद्गः स्रक्षमतमं स्वतत्त्वमभि वा भाव्यं भवोच्छिद्ये ॥ ९२ ॥
 गत्वा लोकशिरस्य धर्मवशतश्चंद्रोपमे सन्मुख-
 प्राग्भाराख्यशिखातलोपरि मनाश्रुनैकगव्युतिके ।

“ अर्हत्यतिष्ठा ” इत्यादि बोलकर “ णमो अरहंताणं ” इत्यादि वृद्धक पढकर “ थोस्सामि ”

योगोज्झांगदरो न मित्यपि मिथो संवाधमेकत्र य-
च्छब्धानंतमितोपि तिष्ठथ स वः पुण्योवगाहो गुणः ॥ ९३ ॥

सिद्धाश्चेद्गुरवो निराश्रयतया भ्रश्यंत्ययःपिंडव-
त्सेऽधश्चेच्छवोर्कतूलवदितश्चेत्तश्च चंडेन तत् ।

क्षिप्यंते तनुवातवातवलयेनेत्युक्ति युक्तुद्धतै-
र्नासोपज्ञमपीष्यते गुरुलघुः श्रुदैः कथं वो गुणः ॥ ९४ ॥

यत्तापत्रयहेतिभैरवभवोदचिः शमाय श्रमो

युष्माभिविद्धे व्यपच्यत तदव्यावायमेतद्भ्रुवम् ।

येनोद्वेल्लसुखाश्रुतार्णवनिरांतकाभिषेकोल्लस-

च्चित्कायान् कलयापि वः कलयितुं श्राम्यंति योगीश्वराः ॥ ९५ ॥

एतेनंतगुणाहुणाः स्फुटमयोद्भृत्याष्ट दिष्टा भव-

त्तत्त्वा भावयितुं सतां न्यवहृतिमाधान्यतस्ताश्विकैः ।

इत्यादि स्तुति कहकर इसे कहे जानेवाली स्तुतिको पढ़े जो कि “यस्यानुग्रहतो” इत्यादिसे लेकर
९६ श्लोक तक नी श्लोकोंमें कही गई है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ जो

एतद्भावनया निरंतरगलद्विकल्पजालस्य मे

स्तादत्यंतलयः सनातनचिदानंदात्मनि स्वात्मनि ॥ ९६ ॥

उत्क्रीर्णामिव वर्तितामिव हृदि न्यस्तामिवालोक्य-

त्रेतां सिद्धगुणस्तुतिं पठति यः शश्वच्छिवाशाधरः ।

रूपातीतसमाधिसाधितवपुः पातः पतद्दुष्कृत-

त्रातः सोभ्युदयोपशुक्तसुकृतः सिद्धेत् तृतीये भवे ॥ ९७ ॥

इति सिद्धभक्तिविधानम् । अथातो महर्षिपर्युपासनविधानम् ।

वृषं वृषभसेनाद्याः सिंहसेनादयोऽजितम् । संभवं चारुषेणाद्या वज्रनाभिपुरस्सराः ॥ ९८ ॥

कपिध्वजं चामराद्याः सुमतिं पद्मलंछनम् । ये वज्रचमरप्रष्टाः सुपार्श्वं बलपूर्वकाः ॥ ९९ ॥

चंद्रप्रभं दचमुखाः पुष्पदंतं समाश्रिताः । विदर्भाद्याः शीतलेशमनगारपुरोगमाः ॥ १०० ॥

कुंथुप्रधानाः श्रेयांसं धर्माद्या द्वादशं जिनम् । विमलं मेरुपौरस्त्या जयार्याद्याश्चतुर्दशम् ॥ १०१ ॥

धर्मं त्वरिष्टसेनाद्याः शान्तिं चक्रायुधादयः । स्वयंभूपमुखाः कुंथुं कुंभार्याद्यास्त्वरप्रभम् ॥ १०२ ॥

कोई भव्य जीव इस सिद्धगुणस्तुतिको शुद्ध-मन-वचन कायसे करता है वह तसिरे सबमें

अवश्य अनंत सुखका स्थान मोक्षको पा सकता है ॥ ९७ ॥ इस प्रकार सिद्धभक्तिकी विधि

वर्णन की गई है । अब महर्षियोंकी पूजाविधि कहते हैं-“ वृषं ” इत्यादि श्लोकसे लेकर

महिः विशाखमंखा मल्लयाद्या मुनिसुव्रतम् । नमीशं सुप्रभासाद्या वरदत्ताग्रतः सराः ॥ १०३ ॥
 नेमिं पांडर्वं स्वयंभवाद्या गौतमाद्याश्च सन्मतिमृतेभ्यो गणधरेशेभ्यो दत्तोऽर्धोऽयं पुनातु नः ॥ १०४ ॥
 ये सन्मतेरिन्द्रभूतित्रियुभूत्यशिश्रुतिकौ । सुधर्ममौर्यौ मौड्याख्यः पुत्रमैत्रेयसंज्ञितौ ॥ १०५ ॥
 अकंपनो धवेलाख्यः प्रभासश्च गणाधिपाः । एकादशैदंयुगीनमुन्यार्दीस्तानुपास्महे ॥ १०६ ॥
 श्रीगौतमसुधर्माह्वजंब्वाख्यान केचलेक्षणान् । श्रुतकेवलिनो विष्णुनंदिमित्रापराजितान् ॥ १०७ ॥
 गोवर्धनं भद्रबाहुं दशपूर्वधरान् पुनः । विशाखमौडिलाचार्यौ क्षत्रियं जयसाह्वयम् ॥ १०८ ॥
 नागसेनं च सिद्धार्थं धृतिषेणसमाह्वयम् । विजयं बुद्धिलं गंगदेवाहं धर्मसेनकम् ॥ १०९ ॥
 एकादशांगनिष्णातान्नक्षत्रजलपालकौ । पांडुं च ध्रुवसेनं च कंसं चाथाग्रिमांगिनः ॥ ११० ॥
 सुभद्रं च यशोभद्रं भद्रबाहुमनुक्रमात् । लोहाचार्यं यजामोत्र जिनसेनादिकानपि ॥ १११ ॥
 यजेहद्वलिमुक्तांगं पूर्वांशं घनं दिनम् । धरसेनगुरुं पुष्पदंतं भूतबलिं तथा ॥ ११२ ॥
 जिनचंद्रकुंदकुंदाचार्योमास्वातिवाचकौ । समंतभद्रस्वाम्यार्यं शिवकोटिं शिवायनम् ॥ ११३ ॥

एकसौ सत्रहवें श्लोकतक पाठ पढकर वृषभलेन आदि आचार्यको जलादि अष्टद्रव्यसे अर्घ्य देवे ॥ ९८ से ११७ तक । सिद्धोंके बाद पुष्पांजलि देकर अर्घ्य चढाकर पंचांग प्रणाम करे इस प्रकार महर्षियोंका पूजाका विधान समाप्त हुआ । अब यहाँसे यज्ञवीक्षाकी विधि कहते हैं—“न्यस्येह” इत्यादि श्लोक बोलकर भगवाचके सिंहासनके आगे चैकन पुष्प चखादिकी

पूज्यपादं चैलाचार्यं वीरसेनं श्रुतेक्षणम् । जिनसेनं नेमिचंद्रं रामसेनं सुतार्किकान् ॥ ११४ ॥
 अकलंकानंतविद्यानंदिमाणिक्यनंदिनः । प्रभाचंद्रं रामचंद्रं वासुदेन्दुमवाससम् ॥ ११५ ॥
 गुणभद्रादिकानन्यानपि श्रुततपःपरान् । वीरगजातानर्षेण सर्वान् संभावयाम्यहम् ॥ ११६ ॥

निर्ग्रथाः शुद्धमूलोत्तरगुणमणिभिर्येऽनगरा इतीयुः

संज्ञां ब्रह्मादियैर्मन्त्रषय इति च ये बुद्धिलब्ध्यादिसिद्धैः ।

श्रेण्योश्चारोहणैर्यै यतय इति समग्रेतराध्यक्षवोधै-

र्यै मुन्यारख्यां च सर्वान् प्रशुमह इहतानर्षयामो शुमुक्षुन् ॥ ११७ ॥

सिद्धानुत्तरेण पुष्पानलिं वितिर्यं पंचांगं प्रणामं कुर्यात् ॥ इति महर्षिपर्युपासनविधानम् ।
 अथातो यज्ञदीक्षाविधानम् ।

न्यस्येह भगवत्पादपीठे दिव्यं प्रसाधनम् । कुत्वेदमाददेऽनादिसिद्धमंत्राभिमंत्रितम् ॥ ११८ ॥

पूज्यपूजावशेषेण गोशीर्षेणाहृतालिना । देवाधिदेवसेवार्यै स्ववपुश्चार्वयेमुनां ॥ ११९ ॥

जिनाधिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमाः । इमाः स्वर्गरमाडूतीरर्षरयाभि वरस्रजैः ॥ १२० ॥

मंत्रित कर रले । यह चंदनादिका अभिमंत्रण हुआ । ११८ ॥ “पूज्य” इत्यादि श्लोक पढकर

अपने अंगपर चंदनका लेप करे । यह चंदनलेपविधि हुई ॥ ११९ ॥ “जिनांघ्रि” इत्यादि

१ श्रीचंदनाद्यभिमंत्रणम् । २ श्रीचंदनानुलेपनं । ३ स्तम्भधारणं ।

शुंभस्युपतिकादशे शुचिरुची आञ्जिष्णुमैत्रिभरं
 सच्छालापतिना गुणौ नव विशोद्रीर्णेरिवास्तुत्रिते ।
 एकद्रव्यवदार्पदग्भिरपि चोद्देश्ये प्रवेक्ष्ये नख-
 च्छिद्रेपीह महे प्रभोरहमिये दिव्ये दधे वाससी ॥ १२१ ॥
 सुक्ताशेखरपट्टयोनैजकरैराक्रम्य चूलाकिके
 राम्भो जित्खरवत्कमप्यतिकरं रोडुं वलाद् दृष्यतोः ।
 स्फूर्जत्कुंडलकर्णपूररचितोपतैद्रचापश्रमे
 मूर्ध्ने तन्युकुटं जितार्यमजयत्यर्हत्प्रणामोद्धरे ॥ १२२ ॥
 प्राकंबसूत्रजिनसूत्रविराजिद्वार सदृशनस्फुरितात्मतेजः ।
 प्रैवेयकं चरणचारु भजनं जिनेज्या सज्जस्तनोम्यमलचिद्रुचियज्ञैः ॥ १२३ ॥

काण्ठकरं माला पाहरे । यह मालाधारणविधि हे ॥ १२० ॥ “ शुंभत् ” इत्यादि पढ-
 कर देवांगवस्त्रोको पहर । यह वस्त्रधारण हुआ ॥ १२१ “ सुक्ताशेखर ” इत्यादि पढकर
 युक्त धारण करना चाहिये । यह युक्तधारणविधि जानना ॥ १२२ ॥ “ प्राकंबसूत्र ”
 इत्यादि पढकर यज्ञोपवीत (जनेक) धारण करे । यह यज्ञोपवीतविधि हुई ॥ १२३ ॥

केयूरगदकटकदालास्तभा । जनन्द्रमखलक्ष्म्याः ।
 सत्कृत्य शुजौ तद्रसमुन्द्रयितुं करेर्षये मुद्राम् ॥ १२४ ॥
 छुरिकाछविविच्छुरितं रूपरुचिं चुंवनोत्कदाममुखम् ।
 सारसनं वद्धांश्रीं सकनकमुद्रौ जिनाध्वरे दंभे ॥ १२५ ॥
 इदममलिनसम्यग्दर्शनज्ञानदेशत्रतमयचरितात्माकर्षिकब्रह्मचर्यम् ।
 स्फुरदरमुपवासेनाद्य रत्नत्रयं मे भवतु भगवदर्हद्वयज्ञदीक्षाविशिष्टम् ॥ १२६ ॥
 नन्वनहृद्युपवीतमर्जुनरुचिप्रव्यक्तरत्नत्रयं
 ख्याताशुत्रतशक्तिपंचवसुमद्धी श्रुत्करे कंकणम् ।
 मौज्या श्रोणियुजा जिनक्रतुमिति ब्रह्मव्रतं द्योतयन्
 यज्ञेस्मिन् खलु दीक्षितोद्दमधुना मान्योस्मि शकैरपि ॥ १२७ ॥

“केयूरगद” इत्यादि श्लोक पढकर वाञ्छू अंगूठी कडे पहरने चाहिये । यह कडे अंगूठी
 आदि पहरनेका विधान जानना ॥ १२४ ॥ “छुरिका” इत्यादि श्लोक पढकर करधनी व
 चरणमुद्रिका पहरे । यह कटिसूत्रादिविधि हुई ॥ १२५ ॥ “इदममलिन” इत्यादि श्लोक
 पढकर अर्हत्पूजाकी दीक्षाको स्वीकार करे ॥ १२६ ॥ “नन्वनहृ” इत्यादि श्लोक बोलकर

१ केयूरविशुक्कमुद्रिकास्वीकारः । २ कटिसूत्रादिसमेतचरणोर्मिकाधारणं । ३ अर्हद्वैद्यज्ञदीक्षागीकारः । ४ दीक्षा विज्ञोद्बहनं ।

ओं वज्राधिपतये आं हां अः ऐं हौं हः क्षूं क्षं क्षः इन्द्राय संवौषट् । अनेनैकविंशतिवाराना-
 त्मानमधिवासयेत् ॥ इति यज्ञदीक्षाविधानम् । ओं परमब्रह्मणे नमो नमः स्वस्ति स्वस्ति जीव जीव
 नंद नंद वद्धस्व वद्धस्व विजयस्व विजयस्व अनुशाधि पुनीहि पुनीहि पुण्याहं पुण्याहं
 मांगल्यं मांगल्यं । पुष्पांजलिः ।

क्षेत्रपालाय यज्ञेस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे । बलिं दिशामि दिश्यन्नेर्वेद्यां विघ्नविघातिने ॥ १२८ ॥

ओं ह्रीं कौं अत्रस्थक्षेत्रपालाय इदं.....स्वाहा ।

उत्खातपूरितसमीकृततत्कृतायां पुण्यात्मनीह भगवन्मुखमंडपोर्व्याम् ।

वांस्त्वेर्वनादिविधिलब्धमस्वाभिभागं वेद्यां यजामि शशिभृदिशि वास्तुदेवम् ॥ १२९ ॥

पुष्पांजलिः ।

श्रीवांस्तुदेववास्तूनामधिष्ठातृतयानिशम् । कुर्वन्ननुग्रहं कस्य मान्यो नास्तीति मान्यसे ॥ १३० ॥
 द्वीक्षाके चिह्न मौजीबंधन ब्रह्मचर्यादिको धारण करे ॥ १२७ ॥ “ ओं वज्राधिपतये.....
 संवौषट् ” इसको बोलकर इक्कीस बार अपनेको मंत्रित करे ॥ इस प्रकार यज्ञदीक्षाविधि
 जानना । अब मंडफकी प्रतिष्ठाविधि कहते हैं । “ ओं परम ” इत्यादि कहकर पुष्पोंको
 क्षेपण करे । “ क्षेत्रपालाय ” इत्यादि कहकर “ ओं ह्रीं ” इत्यादि पढ़कर क्षेत्रपालको जलादि
 चढावे ॥ १२८ ॥ “ उत्खात ” इत्यादि श्लोक पढ़कर पुष्पांजलि दे ॥ १२९ ॥ “ श्रीवास्त ”

ओं ह्रीं क्रौं वास्तुदेवाय इदमित्यादि.....स्वाहा ।

आयात भो वातकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराससेवाः ।

यज्ञांशमभ्येत सुगंधिशीतमृद्धात्मना शोथयताध्वरोर्वीम् ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पृतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा । दर्भपूलेन भूमिं संमार्जयेत् ।

आयात भो मेघकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराससेवाः ।

गृहीत यज्ञांशमुदीर्णशंपा गंधोदकैः प्रोक्षत यज्ञभूमिम् ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं वं झं यः क्षः फट् स्वाहा । दर्भपूलोपात्तजलेन भूमिं सिंचेत् ।

आयात भो वह्निकुमारदेवा आधानविध्यादिविधेयसेवाः ।

भजध्वमिड्यांशमिमां मखोर्वीं ज्वालाकलापेन परं पुनीत ॥ १३३ ॥

इत्यादि श्लोक तथा “ओं ह्रीं” बोलकर वास्तुदेवको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१३०॥

“आयात भोः” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वायुकुमारको जलादि चढावे । दर्भकी बुहारीसे भूमिको शुद्ध करे ॥ १३१ ॥

“आयात भो” इत्यादि और ‘ओं ह्रीं’ इत्यादि कहकर मेघकुमारको बुलावे; फिर दर्भके पूलेसे जल लेकर छिडके ॥ १३२ ॥

“आयातभोः वह्नि”

ओं रं अशिकुमाराय भूमि ज्वलय २ अ हं सं वं शं ठं यः क्षः फट् स्वाहा ज्वलद्बर्भपूलानलेन भूमि ज्वलयेत् । प्राचीमैशानीं चां । रा वातकुमारादिस्थापनं ।

उद्भ्रात भो षष्टिसहस्रनागाः क्षमाकामचारस्फुटवीर्यदर्पाः ।

प्रवृष्यतानेन जिनाच्चरोर्वीं सेकात्सुधागर्वमृजामृतेन ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं क्रौ षष्टिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्यः स्वाहा । नागर्तर्पणार्थमैशान्यां दिशि जलं क्षिपेत् । ब्रह्मस्थाने मघोनः ककुभि' हुतभुजो धर्मराजस्य रक्षो-
राजस्याहीन्द्रपाणे खनिरुहभृतः शंभुमित्रस्य शंभो-
नागैर्द्रस्यामृतशोरपि सदकलसत्पुष्पदूर्वादिगर्भान्
दर्भान् च वेद्यां न्यंसाभि न्यसितुमिह जिनाद्यासनानि क्रमेण ॥ १३५ ॥

दर्भन्यासविधानम् । “आभिः पुण्याभिरद्भिरेभिरर्चामि भूमिम्” । भूमिशुद्धिः ।

और “ओं रं” इत्यादि पढकर अग्निकुमारका आह्वानन करे । फिर जलते हुए दर्भके पूलेकी आगसे भूमिको तपावे ॥ पूर्व तथा ऐशानदिशामें वातकुमार आविका स्थापन करे ॥ १३३ ॥ “उद्भ्रात” इत्यादि “ओं ह्रीं” इत्यादि पढकर नागकुमारको संतुष्ट करे । नागकुमारके वृत्त करनेके लिये ईशानदिशामें जलको क्षेपण करे ॥ १३४ ॥ “ब्रह्मस्थाने” इत्यादि पढकर दर्भको स्थापन करे ॥ १३५ ॥ “आभिः पुण्याभिः” इत्यादि पढकर मंडपके भीतर ॥ १३५ ॥ तरफ

साष्टारत्निशतद्रिवेदिरुचिरं शक्रः कुबेरेण यं
 ज्यायांसं मणिमंडपं विरचयत्यर्हत्प्रतिष्ठाकृते ।
 अंतर्निर्मितदिविलक्ष्मीकटाक्षोद्भटः

सोयं मंगलमंडपो विजयते जैनद्रतिष्ठोत्सवे ॥ १३६ ॥
 मंल्युतः समंतात् कुंकुमाक्तपुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

पुण्या एतेन भूषा प्रवचनपठितस्तंभयज्ञांगपात्रं
 द्वाभांचद्रव्यवीजध्वजकलशदलत्सग्वितानादिभानाः ।
 स्तोत्राशीर्गातवाद्यध्वनिनिचितदिशो भक्तिकौघास्तथैते
 त्रिःसूत्रैः पंचवर्णैर्विहरहमवसूच्यै नमर्धेण युंजे ॥ १३७ ॥

भूषणादिवस्तुपु पृथक् पुष्पाक्षतं प्रक्षिप्य बहिः पंचवर्णसूत्रेण त्रीन् वारान् वेष्टयित्वा अर्घं दद्यात् ।
 कुंङ्कसे (केशरसे) मिले हुए पुष्प-अक्षतका क्षेपण करे ॥ १३६ ॥ “ पुण्या एतेन ” इत्यादि
 पढकर आभूषण आदि वस्तुओंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करके बाहर पांच रंगके डोरके तिरहारा
 लपेटकर अर्घ्य दे ॥ १३७ ॥ “ मंडपस्यास्य ” इत्यादि बोलकर तोरणके पास वाहिनी तरफ

१ “ इन्द्रवेषि हस्ताना विज्ञेयाद्येत्तरं शतम् । शतेद्रो जिनविधाना प्रतिष्ठा कुरुते स्वयम् ” ॥ तथाहि-द्वादशा-
 रत्निविस्तारं पंचाधिकदशप्रसं । अष्टादशकरायामं सैकविंशतिहस्तकम् । चतुर्विंशतिहस्तं वा द्वादशसूत्रेण सूत्रयेत् ॥

मंडपस्यास्य रक्षार्थं कुमुदांजनवामनान् । पुष्पदंतं च पूर्वोद्दिद्वारेषु स्थापयाम्यहम् ॥ १३८ ॥
तोरणोपांताय सन्यदेशेषु कुंकुमाक्तपुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

मुक्तास्वस्तिकमास्थितं नवसुधाधौतं मुखैः पंचाभि—

र्भातं नव्ययवप्ररोहरुचिरैः कुंभं दशा लालयन् ।

रंभास्तंभरुचात्रमगर्भखचितं सौवर्णदंडं दधत्

प्राग्द्वाराधिकृत प्रतीच्छ कुमुद त्वं पूतमेत वलिम् ॥ १३९ ॥

ओं ह्रीं कुमुदप्रतीहार निजद्वारि तिष्ठ ठ ठ इदं अर्घ्यं पाद्यं गंधं इत्यादि स्वाहा ।

मुक्ता ।

लाहि त्वं वलिमंजनाजनरुचे द्वारे स्थितो दक्षिणे ॥ १४० ॥

ॐ ह्रीं अंजनप्रतीहार स्वाहा ।

मुक्ता..... ।

प्रत्यग्द्वारनियुक्त वामन वलिं कुंदद्युत स्वीकुरु ॥ १४१ ॥

कुंकुसे मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ १३८ ॥ “मुक्ता” इत्यादि “ओं ह्रीं” इत्यादिसे

कुमुदप्रतीहारको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १३९ ॥ “मुक्ता लाहि त्वं” इत्यादि बोलकर

तथा “ओं ह्रीं” पढकर अंजनद्वारपालको जलादिसे संवृष्ट करे ॥ १४० ॥ “मुक्ता—प्रत्य-

ओं हीं वामनप्रतीहार.....स्वाहा ।

मुक्ता..... ।

स्रक्पुष्पोज्ज्वलपुष्पदंत वलिना तृप्योत्तरद्वाः स्थितः ॥ १४२
पुष्पदंतप्रतीहार.....स्वाहा ।

इति मंडलप्रतिष्ठाविधानं । अथातो वेदिप्रतिष्ठविधानं ।

आदेशावहितान्यवासवपरीवारो विनिर्माण्य यां

दृक्शुद्धिप्रतिष्ठये प्रयजते सौधर्मपोऽर्हत्प्रभुम् ।

सोयं वेदिमतल्लिकापरिकरश्चंद्रोपकाद्योप्ययं

सोत्रं स्फूर्जति मंगलादिवदिभे ते भाति भांडोच्चयाः ॥ १४३ ॥

वेद्यां चंद्रोपकादिषु च कुंकुमाक्तं पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

प्रोक्ष्य प्रोक्षणमंत्रपूतपयसा वेदीं वराहैः समा

गद्धार” इत्यादि और “ओं हीं” इत्यादि बोलकर वामनद्वारपालको प्रसन्न करे ॥१४१॥ “मुक्ता
-रुक् पुष्प ” इत्यादि “ ओंहीं ” इत्यादि बोलकर पुष्पदंत द्वारपालको अनुकूल करे ॥१४२॥
इस प्रकार मंडलप्रतिष्ठाकी विधि पूर्ण हुई । अब वेदीप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । “ आदे-
शा ” इत्यादि बोलकर वेदीके चंदोए आदिमें कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षत क्षेपे ॥ १४३ ॥

लभ्याभ्यर्च्य चरुस्रगादिभिरसूं नीराजयाम्योजसे ।

कावण्योद्गतयेवतार्थं लवणस्तामं पवित्रार्णसा

संपूर्णानवतारयामि कलशानस्या महिम्नेष्ट च ॥ १४४ ॥

प्रोक्षणादिविधिः । इति वेदिकास्थापनं । अथातो यागमंडलवर्तनविधानम् ।

नागेंद्रार्थपते हरित्रभजपां भासासिताभ्रिया

युक्ता एत्य सवर्णचूर्णनिचयैः प्रीतेन्द्रवेद्यामिव ।

वेद्यां द्वित्रिचतुर्गुणाष्टदलयुकूपवं चतुर्धाश्चतु-

ष्कोणं वर्तयतात्र मंडलमथो वज्राह्निरखेंद्राश्रिपु ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं ह्रीं श्वेतापीतहरितारुणकृष्णमणिचूर्णं स्थापयामि स्वाहा । चूर्णस्थापनमंत्रः ।

चंद्राभचंद्राभविमानमाल्यभूषांगरागा वरनागराज ।

इस्तांबुजस्थार्जुनरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जितेंद्रयज्ञे ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं नागराजायामितेजसे स्वाहा । श्वेतचूर्णस्थापनम् ।

“ प्रोक्ष्य ” इत्यादि काकर वेदीपर जल छिडके ॥ १४४ ॥ [यह प्रोक्षणाविविधि हुई । इस-
प्रकार वेदीका स्थापन जानना । अब यागमंडलकी विधि कहते हैं । “ नागेंद्रा ” इत्यादि
“ ओं ह्रीं ” काकर पांचों रंगका चूर्ण स्थापन करे ॥ १४५ ॥ “ चंद्राभ ” इत्यादि “ ओं ह्रीं ”
इत्यादि बोलकर नागराजकेलिये सफेद चूर्ण स्थापन करे ॥ १४६ ॥ “ हेमाभ ” इत्यादि

हेमाम् हेमामविलेपनस्रग्निमानभूषांशुकयक्षराज ।
हस्तापिता रत्नसुवर्णचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १४७ ॥
ओं ह्रीं हेमप्रभाय धनदाय ठ ठ स्वाहा । पीतचूर्णस्थापनम् ।

हरित्प्रभामर्तं हरित्प्रभस्रग्वासोविमानाभरणगराग ।
करात्तगारुत्मतरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १४८ ॥
ओं ह्रीं हरित्प्रभाय शत्रुमथनाय स्वाहा । हरितचूर्णस्थापनम् ।

रक्तप्रभामर्त्यं जपाभभूषास्रग्वर्णकालंकरणाभ्रमाय ।
कराब्जराज कुरुर्विदचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १४९ ॥
ओं ह्रीं रक्तप्रभाय सर्वशंकराय वषट् वौषट् स्वाहा । अरुणचूर्णस्थापनं ।

भृंगाभट्टंदारककृष्णवस्त्रविलेपनाकल्पविमानदामन ।
पाणिप्रणीतासितरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं कृष्णप्रभाय मम शत्रुविनाशनाय फट् २ धे धे स्वाहा । कृष्णचूर्णस्थापनम् ।

“ओं ह्रीं” इत्यादि बोलकर कुबेरके वास्ते पीले चूर्णको चढावे ॥ १४७ ॥ “हरित्प्रभा”
“ओं ह्रीं” इत्यादिसे हरित्प्रभदेवको हराचूर्ण चढावे ॥ १४८ ॥ “रक्तप्रभा” “ओं ह्रीं”
बोलकर रक्तप्रभदेवको लाल चूर्णका स्थापन करे ॥ १४९ ॥ “भृंगाभ” “ओं ह्रीं” इत्यादि
कहकर कृष्णप्रभदेवको शत्रुनाशनकेलिये काले चूर्णका स्थापन करे ॥ १५० ॥ “शची”

शचीकटाक्षेषु शरव्यशक्र त्वमेत्य विमौघविघातहेतो
करस्फुरद्वज्रजोभरेण कोणेषु वज्राणि लिखाद्य वेद्याः ॥ १५१ ॥
वेदीकोणेषु प्रत्येकं हीरकं न्यसेत् । वज्रस्थापनम् । इति आगमंडलवर्तनविधानम् ।

इत्याम्नायनिरस्तमोहतिमिरः सम्यग्जिज्जनेष्यादिभिः
काचिद्भावाविशुद्धिमाप्य विधिभिः सौधर्मभावं भजन ।
कृत्वा मंडलपूजनं वितनुते योर्हत्प्रतिष्ठाविधिः
सोत्रामुत्र च मोदते शुभनिधिः स्तुत्यः शिवाशारैः ॥ १५२ ॥

अथाशाथरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्दारे जिनयज्ञकल्पापरचाङ्गि तीर्थोदकादानाद्विविधानीयो
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इत्यादि बोलकर देवके कोनोंमें हीरे रत्नका स्थापन करे ॥ १५१ ॥ इस तरह आगमंडल
विधान कहा है । इस प्रकार गुरुआम्नायसे सब जानकर भावोंको निर्मल कर अपनेको
सौधर्म समझता हुआ जो प्रतिष्ठाचार्य मंडल पूजन आदिसे अर्हतकी प्रतिष्ठाविधिका सब
जगह प्रचार करता है वह पुण्यका खजाना प्रतिष्ठाचार्य दोनों लोकमें सुख पाता है और
मोक्षके चाहनेवाले भव्योंसे अथवा बुद्ध आशाधरसे पूजित होता है ॥ १५२ ॥

इस प्रकार पं० आशाधरविरचित प्रतिष्ठासारोद्दारमें तीर्थोदक लाने आदिको
कहनेवाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथातो यागमंडलपूजाविधानमभिधास्यामः—

निर्ग्रन्थार्याः प्रसादं कुरुत पदमिहायज्ञसद्धर्मदीप्त्यै

देवाः सर्वेच्युतांता विकुरुत सुतनुं क्षमामिमेत शत्यै ।

क्षप्त्वा कर्गोरिचक्रं किमयित दसमस्फूर्जदावर्ज्यं तेजः

सोद्यायं शासदीशस्त्रिजगदिह पश्यन् स्थाप्यतेनुग्रहीतुम् ॥ १ ॥

प्रभावकसिंहसान्निध्यविधानाय समंतात् पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

एते वर्षत्विहाशीमृतमृषिगणाः साधु हृत्वाभिराद्धा

विश्वदेवाश्च शास्त्रव्रजनपरिजना श्रंतु विद्मन्निहैते ।

स्थानस्था एव चैनं सह सुरमुनयस्तेऽहर्भिद्राः सुवंतु

श्रद्धाचार्यीमयाय जिनयजनविधिः प्रस्तुतोधीत्य सिद्धान् ॥ २ ॥

अब याग मंडलकी पूजाकी विधि कहते हैं;—“ निर्ग्रन्था ” इत्यादि कहकर जिनम-

तकी प्रभावना करनेवालोंको निकट करके यज्ञमंडपके चारों तरफ पुष्प अक्षत क्षेपे ॥१॥

“ एते वर्ष ” इत्यादि श्लोक बोलकर साधर्मी भाइयोंके ऊपर पुष्प अक्षतकी वर्षा करे ॥ २ ॥

त्रिभुवनसर्धर्मिकामध्येषणाय समंतात्पुष्पाक्षतं विकिरेत् ।

दृग्शुद्ध्यादिसमिद्धशक्तिपरमब्रह्मप्रकाशोद्धरं

शब्दब्रह्मशरीरमीरितविषयन्मूलमंत्रादिभिः ।

इन्द्राद्यैरभिरांध्यते तदभितो दीप्राग्नि सः क्ष्मासने

न्यस्यार्चामि सुशुक्तिदमहब्रह्मार्हमित्यक्षरम् ॥ ३ ॥

शब्दब्रह्मावर्जनाय कर्णिकामध्ये पुष्पांजलिं विसृजेत् ।

चिद्रूपं विश्वरूपव्यतिकरितमनाद्यंतमानंदसांद्रं

यत्प्राक् तैस्तैर्विवर्तैर्व्यतदतिपतद्दुःखसौख्याभिमानैः ।

कर्मद्रिकाचदात्मप्रतिघमलाभिदोज्ज्वानिःसीमतेजः

प्रत्यासीदत्परौजः स्फुरदिह परमब्रह्म यक्षैर्हमाहम् ॥ ४ ॥

परमब्रह्मयज्ञप्रतिज्ञानाय कर्णिकांतः कुसुमांजलिमावपेत् । इति प्रस्तावना ॥

“दृग्शुद्ध्या” इत्यादि कहकर शब्द ब्रह्मके नामसे कर्णिकाके बीचमें पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥३॥
“चिद्रूपं” इत्यादि पढ़कर परब्रह्म अर्हंतकी पूजाके अभिप्रायसे कर्णिकाकेमध्यमें पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ४ ॥ “स्वामिन्” इत्यादि “ओं ह्रीं” इत्यादि बोलकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण

स्वामिन् संवौषट् कृतावाहनस्य द्विष्टानोदंकितस्थापनस्य ।
स्वं निर्नेकुं ते वपट्कार जाग्रत् सान्निध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अहं श्रीपरमब्रह्म अत्रावतरावतर संवौषट् । अनेन कर्णिकामध्ये पुष्पांजलि प्रयुज्या-
वाहयेत् । ओं ह्रीं अहं श्री परमब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तद्वत् प्रतिष्ठेयत् । ओं इत्यादि
मम सन्निहितं भव भव वषट् । अनेन तद्वत्संनिधापयेत् । आह्वानादिपुरस्सरपूजावसरप्रार्थना ।

अथ पूजा ।

चंचद्रत्नमरीचिकांचनकनचंद्रंगारनालश्रुत-

श्रीखंडस्फुटिकादिवासितमहातीर्थबुधाराश्रिया ।

हंतं दुःकृतमेतया स्वसमयाभ्यासोद्यतैराश्रितां

सत्कुर्वीय मुदा पुराणपुरुष त्वत्पादपीठस्थलीम् ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अहं श्री परब्रह्म.....निरधारा ।

इमैः संतापार्चिः सपदि जयदमैः परिमल-

प्रथामूर्च्छद्घाणैरनिषद्वगंशुव्यतिकरात् ।

करे फिर पूजा करना आरंभ करे ॥ ५ ॥ “ चंचद्रत्न ” इत्यादि और ‘ओं ह्रीं’ कहकर जल-
धारा चढावे ॥ ६ ॥ “ इमैः ” इत्यादि तथा ‘ओं ह्रीं’ पढकर चंदन चढावे ॥ ७ ॥ “ सुगंधि ”

स्फुरत्पीतच्छायैरिव शमनिधे चंदनरसै-

र्विलिपेयं पेयं शतमखदशां त्वत्पदद्युगम् ॥ ७ ॥

ओं हीं.....गंधं ।

सुगंधिमधुरो जूसकलतंदुलच्छन्ना सुभक्तिसलिलोक्षितैरिव निरीय पुण्यांकुरैः ।

सुपुंजरचनाजित प्रणयपंचकल्याणकैर्भवांतकभवत्क्रमांत्रुप हरेयमेभिः श्रियै ॥ ८ ॥

ओं हीं.....अक्षतं ।

हृदयकमलमन्वंचञ्जिरामोदयोगाद्रसविसरविलासाल्लोचनाब्जे हसद्भिः ॥

विशदिसजितबोधैर्बुद्धभावात्कमेतैश्चरणयुगमनूतैः मार्चयेयं प्रसूनैः ॥ ९ ॥

ओं हीं.....पुष्पं ।

सुस्पर्शद्युतिरसंगंधशुद्धिभंगी वैचित्री हतहृदयैर्द्रियैरमीभिः ।

भूतार्थक्रतुपुरुष त्वर्दंभियुग्मं सान्नायैरमृतसखैर्यजेय सुख्यैः ॥ १० ॥

ओं हीं.....नैवेद्यं ।

इत्यादि और 'ओंहीं' कहकर अक्षत चढावे ॥८॥ " हृदय " इत्यादि तथा 'ओंहीं' बोलकर पुष्प चढावे ॥९॥ " सुस्पर्श " इत्यादि और 'ओं हीं' बोलकर नैवेद्य चढावे ॥१०॥ "जाह्न्या"

जाड्याथायित्ववैरादिव शशिनमपि स्नेहयुक्तं दहन्निः
 सोदर्यस्वर्णयोगात् पटुतररुचिभिः सोदरत्वादिवाक्षणात् ।
 प्रेयोभिस्तत्प्रतापापहातिमिरहरैर्विज्वलोकैकदीपः
 श्राद्धश्रंचन्निरेभिस्तव पदकमले दीपयेयं प्रदीपैः ॥ ११ ॥
 ओं ह्रीं..... आरातिकं ।

धूपानि मानसकृदुद्यदुदीरधूमस्तोमोल्लसञ्जनयनहृदलनेत्रनासान् ।
 दुष्कर्मगुह्येदचिरोद्धतये धुताद्य त्वत्पादपद्मयुगमभ्यहृत्क्षिपेयम् ॥ १२ ॥
 ओं ह्रीं..... धूपं ।

शाखापाकप्रणयविलसद्गर्गंधसिद्धि-
 ध्वस्तद्रव्यांतरमधुरसास्वादरस्यद्रस्रस्रैः ।
 एभिश्चोचक्रुक्कुरुचकश्रीफलाम्रातकाम्र-
 प्रायैः श्रेयः सुखफलफलैः पूजयेयं त्वंदर्शनी ॥ १३ ॥
 ओं ह्रीं..... फलम् ।

इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर दीप चढावे ॥१॥ " धूपा " इत्यादि और 'ओंह्रीं' कहकर धूप
 चढावे ॥ १२ ॥ " शाखा " इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर फल चढावे ॥ १३ ॥ " जलार्गवा-

जलगधाक्षतप्रसूनचरुदीपधूपफलोत्तमै-

र्दधिदूर्वादिमंगलयुतैः पृथुकांचनभाजनापितैः ।

रचितमिमं विचित्रतौर्यत्रिककीर्तनजयजयस्वन

स्वस्त्ययनेद्धसभ्यमुदमर्घमनर्घ्यं परिक्षिपेय ते ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं श्री परब्रह्मणे अनन्तानंतज्ञानशक्त्ये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं अर्घं च निर्वपामीति स्वाहा । इमान् मंत्रान् हृद्युच्चारयन् पूजां दद्यात् । एवं सर्वत्र । इति परमपुरुषार्चनविधानम् ।

तद्दीजं परमं सर्वान् विघ्नान् येनाधिवासितं । निहंति मूलमंत्राय तस्मै पुष्पांजलिं क्षिपेत् १५
ओं नमो अरहंताणं हौं स्वाहा । मूलमंत्रपूजा ।

ऋषयः केवलज्योतिरुन्मेषाय स्मरंति यम् । तस्मै केवलिमंत्राय ददामि कुसुमांजलिम् १६
ओं ह्रीं ह्रीं अर्हत्सिद्धसन्नेगिकेवलिभ्यः स्वाहा । केवलि मंत्रपूजा ।

स्त ” इत्यादि तथा “ ओं ह्रीं ” इत्यादि बोलकर अर्घ्य चढावे ॥ १४ ॥ इसतरह परम पुरुष श्री अर्हत्वेवका पूजन हुआ । “ तद्दीजं ” इत्यादि तथा “ ओं नमो ” इत्यादि बोलकर मूलमंत्रको पुष्पांजलि चढावे ॥ १५ ॥ “ ऋषयः ” इत्यादि तथा “ ओं ह्रीं ” इत्यादि बोलकर केवलिमंत्रको पुष्प चढावे ॥ १६ ॥ “ पुण्यश्रेणी ” इत्यादि तथा “ ओं अर्हत् ” इत्यादि पढ-

पुण्यश्रेणिशुद्धहृद्ग्रन्तसेवारगाङ्गुस्तत्तद्देश्वर्यशुक्ता ।
या संहार्याभ्यर्णयद्युद्यबोधिं पुंसो नंध्यावर्तमालां यजे तं ॥ १७ ॥
ओं अहं नंध्यावर्तवलयाय स्वाहा । नंध्यावर्तमालार्चनम् ।

शिवपथमनुवृत्तः समाधि प्रशमवतः सुखपर्वणां प्रबंधम् ।
यवलयमनलपद्युद्धिकाभ्यं वरकुसुमांजलिनाजसार्चयामि ॥ १८ ॥
ओं अहं यवलयाय स्वाहा । यवलयार्चनम् ।

भित्वा कर्मगिरीन् प्रबुद्धसकलज्ञेयादिसंतः शिवः
पुंसां शुद्धिविशेषतोच्छमनसा सेवाविधौ यस्य ताम् ।
सौख्यं लांति द्वर्षार्पणादघहृतेषु वा मलं गालयं—
त्यर्धेणोपचरामि मंगलमहत्तानर्हतोभ्यर्हितान् ॥ १९ ॥

ओं अहंमंगलार्चनम् ।

कर नद्यावर्तमालाको पुष्पोंसे पूजे ॥ १७ ॥ “ शिवपथ ” इत्यादि तथा ओं अहं इत्यादि
कहकर यवलयकी पूजा पुष्पोंसे करे ॥ १८ ॥ “ भित्वा कर्मगिरी ” इत्यादि पढकर अर्हंत
मंगलको अर्थ चढावे ॥ १९ ॥ “ नामध्वंसा ” इत्यादि पढकर सिद्धमंगलको अर्थ चढावे

नामध्वंसा तैजसादायुरंताहुत्कभ्यांगाहुत्तमौदारिकाच्च ।

ये भक्तक्षणां मंगलं लोकमूर्ध्नि प्रद्योतंते तान् भजेऽर्धेण सिद्धान् ॥ २० ॥
ओं सिद्धमंगलार्धम् ।

ये मार्गस्याचारका देशका ये ये चासकं ध्यायकाः साधयंति ।

सिद्धिं साधून् मंगलं भावुकानां तान् सर्वानस्युद्व्यभक्त्यार्धयामि ॥ २१ ॥
ओं साधुमंगलार्धम् ।

हृबोधवर्धिष्णुदयाप्रभूष्णोः क्षात्यादिदोष्णो जगदेकजिष्णो ।

सन्मंगलस्योपहरामि केवलप्रज्ञसधर्मस्य सुवर्मणोऽर्धम् ॥ २२ ॥
ओं केवलिप्रज्ञसधर्ममंगलार्धम् ।

निश्चित्य श्रुत्या नैगमेनानुचितन् न्यस्याद्वा नामस्थापनाद्रव्यभारैः ।

भव्यैः सेव्यंते ये सदा मुक्तिकामैस्तेभ्योऽर्धैश्चर्योऽर्धोस्त्वेप लोकोत्तमेभ्यः ॥ २३ ॥
अर्हल्लोकोत्तमार्ध ।

॥ २० ॥ “ ये मार्ग ” इत्यादि पढकर साधु मंगलको अर्ध चढावे ॥ २१ ॥ “ हृबोध ”
इत्यादि पढकर केवलिकथित धर्ममंगलको अर्ध चढावे ॥ २२ ॥ “ निश्चित्य ” इत्यादि
पढकर अर्हल्लोकोत्तमको अर्ध चढावे ॥ २३ ॥ “ नामादिभिः ” इत्यादि पढकर सिद्ध लोको-

नामादिभियेष्टभिरप्यदुष्टैरिष्टाय संति प्रणिधीयमानाः ।
विन्यस्य नो आगमभावतस्तौल्लोकोत्तमान् साधु यजेत्र सिद्धान् ॥ २४ ॥
सिद्धलोकोत्तमार्थम् ।

इयुना कोट्योनगारर्षियतिमुनिभिदो ये नवोत्कर्षष्टस्या
नानादेशान् वृलोकै शिवपथमनिशं साधयंतः पुनंति ।
घस्त्रे घस्त्रे सनीडी भवदसृतरमांसंगमा साधवस्ते
भ्रूता भव्या भवांतो विधिवदपचिताः पांतु लोकोत्तमा नः ॥ २५ ॥
साधुलोकोत्तमार्थम् ।

श्रद्धाय व्यवहारतत्त्वरुचिधी चर्थात्परत्नत्रय
प्रादुःष्यतत्परमार्थतत्रयमयस्वात्मस्वरूपं बुधाः ।
सद्गुक्तागमचक्षुषो विदधते लोकोत्तमः केवलि-
प्रज्ञसोभ्युदयापवर्गफलदः सोद्ध्येत धर्मोऽनघः ॥ २६ ॥
केवलिप्रज्ञसर्भलोकोत्तमार्थम् ।

त्तमको अर्थ चढावे ॥ २४ ॥ “ इयुनाः ” इत्यादि पढकर साधुलोकोत्तमको अर्थ चढावे
॥ २५ ॥ “ अद्वाय ” इत्यादि पढकर केवलिप्रणीतधर्म लोकोत्तमको अर्थ चढावे ॥ २६ ॥

सर्वप्राग्दिद्यामयेन मनसा शुद्धात्मसंवित्सुधा-
 श्रोतस्यात्मनि सन्निपत्य महसा शश्वत्तपंतः परम् ।
 ये भव्यान्निजभक्तिभावित्तधियो रक्षंति पापात् सदा
 तानावर्ज्यं सपर्ययात्र शरणं सर्वान् प्रपद्येर्हतः ॥ २७ ॥
 अर्हच्छरणार्थम् ।

सांद्रानंदचिदात्मनि स्वमहसि स्फारं स्फुरंतः स्फुटं
 पश्यंतो युगपत्रिकालविषयानंताति पातान्वयाम् ।
 षड्द्रव्यी स्वपदाधिपत्यमचिराद्यच्छंति ये ध्यायतां
 तानर्वेण यजामहे भगवतः सिद्धान् शरण्यानिह ॥ २८ ॥
 सिद्धशरणार्थम् ।

आचारं पंचधा ये भवचकितधियश्चारयंतश्चरंति
 व्याख्याति द्वादशांगीं सुचरितनिरता ये च शुश्रूपकाणाम् ।

“सर्वप्राणी” इत्यादि पढकर अर्हतशरणको अर्थ चढावे ॥ ७ ॥ “सांद्रा” इत्यादि पढकर-
 सिद्धशरणको अर्थ चढावे ॥ २८ ॥ “आचारं” इत्यादि पढकर साधुशरणको अर्थ चढावे

साम्याभ्यासोद्यदात्मानुभवघनमुदो येगिनां ध्रुति वैरं
ते सर्वेष्यर्धिता मे त्रिभुवनशरणं साधवः संतु सिद्धयै ॥ २९ ॥
साधुशरणार्धम् ।

सच्छूद्रोपग्रहीतमर्तिमथनाहार्यवैराग्यकृत्
सम्यग्ज्ञानमसंगसंगवदधिष्ठानं यदात्मा द्विधा ।
सिद्धः संवरनिर्जराभवशिवाह्लादावहः केवलि-
प्रज्ञप्तः शरणं सतामनुमतः सोर्धेण धर्मोर्च्यते ॥ ३० ॥

केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरणार्धम् । ओं चत्तारिमंगलमित्यादिना स्वाहंतेन पूर्ववदत्राप्यधिवासयेत् ।
इत्यर्चिताः परब्रह्मममुखाः कर्णिकार्पिताः । संतु सप्तदशाग्येते सभ्यानां शमशर्मणे ३१
पूर्णार्धम् । इति द्वासप्ततिदलकमलकर्णिकाम्यर्चनविधानं । अथ षोडशपत्रस्थापितविद्यादेवतार्चनम् ।

॥ २९ ॥ “सच्छूद्रो” इत्यादि पठकर केवलिकथितधर्मशरणको अर्घ चढावे ॥ ३० ॥
“ओंचत्तारि मंगलं” यहाँसे लेकर स्वाहातक पहलेकी तरह पाठ करे । “इत्यर्चिता”
इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्ध चढावे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार बहत्तरि पत्तोवाले कमलके
कर्णिका भागका पूजन हुआ । अब सोलह पत्तोपर स्थित विद्यादेवियौका पूजनविधान

विद्या प्रियाः षोडश दृग्विशुद्धि-पुरोगमार्हत्यकृदर्थरागाः ।
यथायथं साधु निवेश्य विद्या-देवीर्यजे दुर्जयदोश्चतुष्काः ॥ ३२ ॥

विद्यादेवीसमुद्रायजूजविधानाय समस्तहव्यद्रव्यपूर्णपात्रपरमपुरुषचरणकमलयोरवतार्य पार्श्वतो निवेशयेत् । एवं सर्वत्रापि विधेयम् ।

विद्याः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।

अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ ३३ ॥

भगवति रोहिणि महति प्रज्ञसे वज्रशृखले स्वचलिते ।

वज्राकुशे कुशलिके जांबूनदिकेस्तदुर्मदिके ॥ ३४ ॥

पुरुधात्रि पुरुषदत्ते कालि कलाढ्ये कले महाकालि ।

गौरि वरदे गुणर्द्धे गांधारि ज्वालिनि ज्वलज्ज्वाले ॥ ३५ ॥

कहते हैं । "विद्याप्रियाः" इत्यादि पढकर विद्यादेवियोंके समूहकी पूजाके लिये सब पूजासामग्रीको अर्हतके चरणकमलोंमें आरतीरूप करके समीपमें रखवे ॥ ३२ ॥
"विद्याः संशब्द" इत्यादि पढकर आह्वाननादि करे ॥ ३३ ॥ "भगवति" इत्यादि तीन श्लोक बोलकर आवाहनआदिपूर्वक हर एककी पूजाके लिये पत्रोंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ३४।३५।३६ ॥ "विशोध्य" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं रोहिणि" इत्यादि बोलकर

मानवि देवि शिखंडिनि खंडिनि वैरौटि शुक्च्युतेऽच्युतिके ।
 मानसि मनस्विनि रते यशसि महामानसीदद्युचितं वः ॥ ३६ ॥
 आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अथ प्रत्येकपूजा ।

विशोध्य यो चेष्टगुणैः सरागो दृष्टि विरागश्च परां प्रचक्रे ।

स कुंभशंखाब्जफलांबुजस्था—श्रिताचर्यसे रोहिणि रुक्मरुक्तम् ॥ ३७ ॥

ओं ही रोहिणि इदं गंधं पुष्पं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यन्नामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

हृद्गानचारित्रतपस्सु सूरिपुरस्सरेष्वप्यकृतादरो यः ।

तद्भारिककां त्वाश्वगतेलिनिलां प्रज्ञासिकेर्चामि सचक्रखड्गाम् ॥ ३८ ॥

ओं ही प्रज्ञसे इदं..... स्वाहा ।

रोहिणीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ३७ ॥ “ हृद्गान ” इत्यादि और ओंहीं इत्यादि बोलकर प्रज्ञासिको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ३८ ॥ “ व्रतानि ” इत्यादि तथा ओं ही बोलकर वज्रशंखलाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ३९ ॥ “ ज्ञानोपयोगं ” इत्यादि, “ओंहीं”

व्रतानि शीलानि च जातु योंतवृत्त्याभनग्नो बहिरिहया वा ।
तद्भंगिम स्थापविशृंखलास्त्रा पीता च तृप्तिं पविशृंखलेस्मिन् ॥ ३९ ॥
ओं ह्रीं वज्रशृंखले..... ।

ज्ञानोपयोगं व्यदधादभीक्ष्णं यस्तं भजंतं श्रितपुष्पयानाम् ।
वज्राकुशे त्वा सृणिपाणिमुद्यद्गीणारसां मंजु यजे जनाभाम् ॥ ४० ॥
ओं ह्रीं वज्राकुशे..... ।

धर्मे रजद्धर्मफलेक्षणे च योजन्मभीस्तस्य मखे शिखिस्या ।
जांबूनदाभा धृतखड्गकुंतौ जांबूनदे स्वीकुरु यज्ञभागम् ॥ ४१ ॥
ओं ह्रीं जांबूनदे..... ।

शक्त्यार्थिनां बोधनसंयमांगं यस्त्यागभाघच तमानमंतीम् ।
कोकाश्रितां वज्रसरोजहस्तां यजे सितां पूरुषदक्षिके त्वाम् ॥ ४२ ॥
ओं ह्रीं पुरुषदत्ते..... ।

इत्यादि बोलकर वज्रांकुशाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४० ॥ “ धर्मे ” इत्यादि तथा
“ओंह्रीं” कहकर जांबूनवाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४१ ॥ “ शक्त्यार्थिनां ” इत्यादि
तथा “ओंह्रीं” बोलकर पुरुषवत्ताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४२ ॥ “ तपांसि ” इत्यादि

तपांसि कष्टान्यनिगूढवीर्यैश्चरन् जगन्निधमथश्चकार ।

यस्तन्नतार्चा भज कालि भर्मप्रभा मृगस्था मुशलासिहस्ता ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं कालि..... ।

चक्रे धिकसाधुषु यः समाधिं तं सेवमाना शरमाधिरूढा ।

श्यामाधनुः खड्गफलास्त्रहस्ता वलिं महाकालि जुषस्व शान्त्यै ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं महाकालि..... ।

तपस्विना संयमवाधवर्जे प्रतिवधतात्मवदापदो यः ।

गोधागता हेमखण्डजहस्ता गौरि प्रमोदस्व तदर्चनशैः ॥ ४५ ॥

ओं ह्रीं गौरि..... ।

तेने शिवश्रीसचिवाय योर्हत्, भक्ति स्थिरां क्षायिकदर्शनाय ।

चक्रासिभ्रत्कूर्मगनीलमूर्ते गृहाण गांधारि तदंघ्रिगंधम् ॥ ४६ ॥

तथा “ओं ह्रीं” बोलकर कालीको अर्थ चढावे ॥ ४३॥ “चक्रेधिक” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर महाकालीको अर्थ चढावे ॥ ४४॥ “तपस्विना” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर गौरीको अर्थ चढावे ॥ ४५॥ “तेने” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर गांधारीको अर्थ चढावे

ओं ह्रीं गांधारि..... ।

सत्स्ररिभक्तिं प्रतिदेवता यो भजे यजे ज्वालिनि तन्महे त्वाम् ।

शुभ्रां धनुः खेटकखड्गचक्राद्युग्राष्टबाहुं महिषाधिरुढाम् ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनि..... ।

शुद्धोपयोगैकफलश्रुतार्थं यो भक्तिमभ्यासवहुश्रुतेषु ।

स्वं धिन्वतो मानवि केकिकण्ठनीलाकित्स्थ्यासद्दशषत्रिभूला ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं मानवि शिखंडिनि..... ।

यो स्पृष्टदृष्टेष्टविरोधमर्हदुपह्नमन्वागममन्वरज्यत् ।

त्वां सिंहगामात्तदर्पसर्पां यज्ञेस्य वैरोटि यजेभ्रनीलाम् ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं वैरोटि..... ।

॥ ४६ ॥ “सत्स्ररि” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” कहकर ज्वालामालिनीको अर्घ चढावे ॥४७॥
“शुद्धोप” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” कहकर मानवीको अर्घ चढावे ॥ ४८ ॥ “यो स्पृष्ट”
इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” कहकर वैरोटीको अर्घ चढावे ॥४९॥ “बोहौ” इत्यादि तथा “ओं
ह्रीं” बोलकर अभ्युताको अर्घ चढावे ॥ ५० ॥ “मार्ग” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर

षोढी नयी ब्याधियशोप्यवश्यं नावश्यकं यः सप्तथाद्यपेक्षम् ।
धौतासिहस्ता हयगेच्युते त्वां हेमप्रभातं प्रणतां प्रणौमि ॥ ५० ॥
ओं ह्रीं अच्युते..... ।

मार्गं वृषे निश्चलयन् विनेयान् प्राभावद्यधः सुतपः श्रुताद्यैः ।
रक्ताहिगा तत्प्रणताप्रणाममुद्रांन्विता मानसि मेसि मान्या ॥ ५१ ॥
ओं ह्रीं मानसि..... ।

योधात्सधर्मस्वतिवत्सलत्वं रक्ता महामानसि तत्प्रणामे ।
रक्ता महाहंसगतेक्षमुत्रंवरकुशासकसहितां यजे त्वाम् ॥ ५२ ॥
ओं ह्रीं महामानसि..... ।

सत्पूजावलिदानलालितमनाः स्फारस्फुरद्भ्रत्सली-
भावावेशवशीकृताः कृतवियामिष्टाश्च पूर्णाहुतिम् ।
विद्यादेव्य इमां प्रतीच्छत जिनज्येष्ठाप्रतिष्ठाजसा
निष्ठा मुख्यमनोरथान फलवतः कर्तुं यतध्वं मम ॥ ५३ ॥

मानसीको अर्ध चढावे ॥ ५१ ॥ “योधात् ” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर महामानसीको
अर्ध चढावे ॥ ५२ ॥ “सत्पूजा ” इत्यादि बोलकर सबको पूर्णाहुति दे ॥ ५३ ॥ “ एवं

पूर्णाहुतिः ।

एवं विद्यादेवताश्रंदनाद्यै रोहिण्याद्याः प्रीणिता मंत्रयुक्तैः ।

निमंत्रतोर्हद्यागविमानशेषान् प्रीत्युत्कर्षं तज्जुषां पोषयंतु ॥ ५४ ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति विद्यादेवतार्चनविधानं । अथ चतुर्विंशतिदलन्यस्त-
जिनमात्रिकार्चनम् ।

यासां गर्भगृहे हरिप्रणिहितश्रयादिक्रिया संस्कृते

दिव्यंभोरुहविष्टरे किल निजामाधाय शक्तिं पराम् ।

उद्धृता दृषभादयो जिनदृषा विश्वेश्वरा निष्कला-

स्तांश्चाये जिनमातृकाः कजलन्यस्ताश्चतुर्विंशतिः ॥ ५५ ॥

जिनमातृसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

विद्या ” इत्यादि बोलकर इष्ट प्रार्थनाके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार विद्यादेवियोंकी पूजाविधि हुई । अब चौबीस पत्रोंपर स्थित चौबीस जिनमाताओंकी पूजा कहते हैं । “ यासां ” इत्यादि श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी पूजाके लिये पहलेकी तरह पूजादेव्यको समीप रखे ॥ ५५ ॥ “ अंवा ” इत्यादि बोलकर आवाहनादिपूर्वक प्रत्येक

अंवाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ५६

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

साकेताधिपमन्वकतिलक—श्रीनाभिराजप्रिये

सङ्कृते पुरदेवसंभवभवद्देवेंद्रसेवोत्सवे ।

त्रैलोक्याग्रपितामहि स्तुतगुणे स्तुत्यैरपीहाभिदां

देवि श्रीमरुदेवि भावयमहं दृष्टिप्रसादेन मे ॥ ५७ ॥

ओं मरुदेव्यै इदं..... !

मनिवक्ष्वाक्कुमहोनुवद्भदिनकृद्भंशस्फुरत्कोशला—

स्वामिप्रीजितशत्रुपार्थिवमनोरोलंबराजीविनि ।

विश्वगंधुजयप्रदा जितजिनाधीशोद्भवन्यककृत—

न्यक्षस्त्रीप्रसवस्मर्येव वित्रये त्वार्चनधिस्याजये ॥ ५८ ॥

ओं विजयसेनायै..... !

पूजाकी प्रतिज्ञा करनेकेलिये पत्रोंमें पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ५६ ॥ “साकेता” इत्यादि तथा ‘ओं मरुदेव्यै’ इत्यादि बोलकर मरुदेवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥५७॥ “मन्वि-क्ष्वाक्कु” इत्यादितथा ‘ओं ह्रीं’ बोलकर विजयसेनाको अर्घ चढावे ॥५८॥ “स्वावस्ति” इत्यादि

स्वावस्तिपुरेश्वर पुरवंशज दृढराज दृढतम प्रणयाम् ।
शंभवजिनरत्नखाने सुखिनि सुवैणे महन्महीये त्वाम् ॥ ५९ ॥

ओं सुवैणायै.....

साकेतपतौ भवतीमिक्ष्वाकुवरे स्वयंवरे निरताम् ।

अभिनन्दनजिनजननीं सिद्धार्थैर्चामि सिद्धार्थाम् ॥ ६० ॥

ओं सिद्धार्थायै..... ।

नाभैयवंशनिषधाद्रिखेरयोध्यानाथस्य मेघरथभूमिपतेः सुपत्नि ।

सेवाप्रपन्नसुमतेः सुमतेः सवित्रि त्वां मंगले भुवनमंगलमर्चयामि ॥ ६१ ॥

ओं सुमंगलायै..... ।

मनुकुलजलर्धीदोर्देवि कौशांब्यधीश-प्रणयिनि धरणस्य क्षमाविपद्वारणस्य ।

भवदपचितिसज्जेकानपद्मप्रभाहर्तु-मणिधरणि सुसीमैस्यान्मयि श्रीरभीमे ॥ ६२ ॥

ओं सुसीमायै..... ।

“ओं ह्रीं” बोलकर सुवैणाको अर्थ चढावे ॥५९॥ “साकेतपतौ” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर सिद्धार्थाको अर्थ चढावे ॥६०॥ “नाभैय” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर सुमंगलाको अर्थ चढावे ॥ ६१ “मनुकुल” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं बोलकर सुसीमाको अर्थ चढावे ॥६२॥

इक्ष्वाकुमुख्यकाशीशसुप्रतिष्ठपप्रियाम् । त्वां यजे पृथिवीपणे सुपाश्वर्जिनमातरम् ६३

ओं वसुंधरायै..... ।

सूर्यान्वयं चंद्रपुराध्विचंद्रं श्रिता महासेनमभेददृष्ट्या ।

चंद्रप्रभेदाप्रभवप्रभावात् कस्य प्रतीक्षासि न लक्ष्मणेस्मिन् ॥ ६४ ॥

ओं लक्ष्मणायै..... ।

कार्कश्यधीशे पुरुदेववंश्ये सुप्रविराजे निरुपाधिरागाम् ।

त्वा पुष्पदंतप्रसवाभिरामे यजामि यज्ञे जय रामिकेस्मिन् ॥ ६५ ॥

ओं रामायै..... ।

त्वां राजभद्र पुरदृप दृपमान्वयदृढरथानुरागरथा ।

शीतलजिनाभिनंद्ये वंदे बंधे सतां सुनंदेद्य ॥ ६६ ॥

ओं सुनंदायै..... ।

“ इक्ष्वाकु ” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर वसुंधराको अर्घ्य चढावे ॥६३॥ “ सूर्यान्वयं ”

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लक्ष्मणाको अर्घ्य चढावे ॥ ६४ ॥ “ कार्कश्यधीशे ” इत्यादि

तथा “ओं ह्रीं” बोलकर रामाको अर्घ्य चढावे ॥६५॥ “त्वां राजभद्र” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं”

बोलकर सुनंदाको अर्घ्य चढावे ॥ ६६ ॥ “ प्राणप्रियां ” इत्यादि तथा “ ओं ह्रीं ” बोलकर

प्राणप्रियां सिंहपुरारिजिष्णोः प्रकाशितेक्ष्वाकुलस्य विष्णोः ।
त्वां देवि नंदेर्चयतोद्यधन्यं श्रेयोजनन्यस्य जनस्य जन्म ॥ ६७ ॥

ओं विष्णुश्रियै..... ।

यथार्हमिक्ष्वाकुविभक्तसंपंचपाधिपश्रीवसुपूज्यवश्याम् ।

श्रीवासुपूज्यप्रजनोपजातजगज्जयेर्चामि जयावति त्वाम् ॥ ६८ ॥

ओं जयायै..... ।

कांता कांपिलपनाथार्ककुल्यश्रीकृतवर्मणः । जयं श्यासे यजामि त्वां जननीं विमलेशिनः ६९

ओं सुरशर्मलक्ष्म्यै..... ।

साकेतनायकैक्ष्वाकुसिंहसेन नमः सुधाम् । पूजयामि जयश्यामे त्वामनंतजितोवकाम् ॥७०

ओं सुव्रतायै..... ।

देवीं भानुमहाराजनाम्नी रत्नपुरेशिनः । कुरुवर्यस्य धर्मार्कप्राचीं त्वार्चामि सुप्रभे ॥ ७१ ॥

विष्णुश्रीको अर्थ चढावे ॥ ६७ ॥ “तथार्ह” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर जयाको अर्थ चढावे ॥ ६८ ॥ “कांता कांपिल्य” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुरशर्मलक्ष्मको अर्थ चढावे ॥ “साकेतनाय” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुव्रताको अर्थ चढावे ॥ ७० ॥ “देवीं मानु” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ऐरणीको अर्थ चढावे ॥ ७१ ॥ “हस्तिनाग”

ओं ऐरण्यै..... ।

हस्तिनागनगरे कुरुवंशे विश्वसेननृपतेर्देयितायाः ।
शांतिकल्पतरुभोगयुवस्ते प्रार्चयामि चरणद्वयमैरे ॥ ७२ ॥

ओं कम्बुधै..... ।

कुरुकुलशशांकदास्तिनपुरपरिदृढरुसेननृपकांताम् ।
श्रीकान्ति कुंयुजिनप्रसवित्रीं पूजयामि त्वाम् ॥ ७३ ॥

ओं सुमित्रायै..... ।

श्रीहास्तिसेनकुरुपस्य पत्नीं सुदर्शनाद्यस्य सुदर्शिनस्य ।
मातः सवित्रीमरतीर्थकर्तुस्त्वां मित्रसेनेन महे महामि ॥ ७४ ॥

ओं प्रभावत्यै..... ।

मिथिलारक्षकेश्वाकुप्रभृकंभाग्रवृष्टभाम् । प्रजापति यजे मल्लिजिने त्वां प्रजापति ॥ ७५ ॥

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कमलाको अर्घ चढावे ॥ ७२ ॥ “कुरुकुल” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुमित्राको अर्घ चढावे ॥ ७३ ॥ “श्रीहास्तिसेनः” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रभावतीको अर्घ चढावे ॥ ७४ ॥ “मिथिलार” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पथावती को अर्घ चढावे ॥ ७५ ॥

ओं पद्मावत्यै

हरिवंशवंशसुमणे राजग्रहेक्षभियां सुमित्रस्य ।

सुनिमुव्रतजिनजननीं सोमे सौम्यां यजामि त्वाम् ॥ ७६ ॥

ओं वप्रायै

मिथिलानाथदृपान्वयविजयमहाराजसंज्ञनृपराज्ञीम् ।

संपूजयामि नमिजिनजनयित्रां वक्ष्यले भवति ॥ ७७ ॥

ओं विनितायै

द्वारवतीपरमेश्वरहरिवंशोत्तरसमुद्रविजयवशाम् ।

मातरमरिष्टनेमैः शिवदेवि यजे शिवाय त्वाम् ॥ ७८ ॥

ओं शिवदेव्यै

काशीश्रियस्त्यायिनि विक्वसेने प्रेमाकुलामुग्रकुलां वराकं ।

पार्श्वप्रसूत्सुदृताविश्वलोकां ग्रह्याह्वये देवि महात्म्यहं त्वाम् ॥ ७९ ॥

“हरिवंश” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वप्राको अर्थ चढावे ॥ ७६ ॥ “मिथिला” इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर विनीताको अर्थ चढावे ॥ ७७ ॥ “द्वारवती” इत्यादि और ओं ह्रीं पढकर शिवदेवीको अर्थ चढावे ॥ ७८ ॥ “काशीश्रिय” इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ॐ देवदत्तायै ॥

स्वर्लक्ष्मीमदस्वर्लङ्किहृन्नगरश्रीकाममर्माचिधो

नाथानृकाविशेषकस्य माहिर्षीं सिद्धार्थधात्रीपतेः ।

अंघां दुर्दमदुःषमासहचरद्भर्तृश्रुतेः सन्मते-

र्यायलिम प्रियकारिणि प्रियकरी त्वास्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे ॥ ८० ॥

ॐ प्रियकारिण्यै इदं..... ॥

नाभेयाद्यहर्दंवाः स्वभिहितमरुदेव्यादयः कौशल्यादि

क्षमाभृन्नाभ्यादिदिव्यो हृदयसरसिजे भासमानाःसमर्च्य ।

पूर्णांश्च प्राप्त्यमाणा निजतनुजगुणप्राप्तगाढानुरागैः

प्रत्याहृत्यातरायान् प्रथयत जगतां यूयद्युचैः प्रमोदम् ॥ ८१ ॥

इति पूर्णावर्षम् ।

इत्येता जिनमातरः सुहृगनुस्यूताखिलश्रीघना—

श्लेषानंदनिदानपुण्यरचना चाव्यर्थतुर्विज्ञातिः ।

बोलकर देवताको अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ “स्वर्लक्ष्मी” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रिय-

कारिणीको अर्घ चढावे ॥ ८० ॥ “नाभेया” इत्यादि पढकर पूर्णावर्ष चढावे ॥ ८१ ॥

भक्त्यास्मिन्नखिलज्ञसमयेऽस्माभिः समभ्यर्चिताः

प्रत्यूहानपहस्य विष्टपहितां तत्सिद्धिमातन्वताम् ॥ ८२ ॥

एतद्वंदनामुद्रया पठित्वा भक्त्या पंचागप्रणामं कुर्यात् । इति जिनमातृपूजनविधानम् । अथ
द्वात्रिंशत्पुत्रारोपितशकार्चनम् ।

तत्तादृक्सुतपोनुपंगजपृथक् पुण्यानुभावोद्भव

स्वैश्वर्यपराभिमानिकरसश्रोतोवगाहोत्सवान् ।

हृत्वान्यस्य यस्य मत्रविहिता सतीन् कराब्जोच्छस—

द्यद्भागोत्वणितद्युवीन् सुरपतीन् द्वात्रिंशत् संयजे ॥ ८३ ॥

त्रिभुवनपतियज्ञे व्यापृतानां व्यवायान् खरमृदुकुहशां तु द्वेषमस्पृष्टां च ।

प्रातिनियतनियोगव्यक्तदुर्वारशक्तीन् व्युपशमयितुमिंद्रानद्य समानयामः ॥ ८४ ॥

द्वात्रिंशद्विद्रसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात्

“इत्येता ” इत्यादि श्लोक पढ़कर वंदनामुद्रासे पंचांग नमस्कार करे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार
जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अब बत्तीस इंद्रोंकी पूजा कहते हैं—“ तत्तादृक् ”
इत्यादि दो श्लोकोंसे बत्तीस इंद्रोंकी समुच्चयपूजा करनेके लिये पूर्वकी तरह कही हुई विधि
करे ॥ ८३ ॥ “ इंद्रा ” इत्यादि श्लोक पढ़कर आवाहन आवि पूर्वक हर एककी पूजा

इंद्राःसंशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥८५
आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीनां पृथक् पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिगुद्यत्सस कोणाद्यनीकं हृद्गुह्यराक्षम् ।

विशेषपादांबुजसख्यहृष्यच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेन्द्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ही असुरकुमारेन्द्राय इदं जलं गंधं.....

कूर्मश्रितं सप्तदिगाशिनोरु नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।

जिनांघ्रिपुष्पांकफलांकमौलिं नागेंद्रमुन्निद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ही नागकुमारेन्द्राय इदं.....

ताक्षर्यादिकक्षकुलसप्तदिकं धौतासिदंडं द्विरदाधिरुढम् ।

यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविधेद्रपादासशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

करनेके नियमके लिये पत्तोंपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ८५ ॥ अब सुरेंद्रोंकी जुही २ पूजा कहते हैं । “कोणस्थ ” इत्यादि तथा “ओं हीं ” इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढाये ॥ ८६ ॥ “कूर्मश्रितं ” इत्यादि तथा ओं हीं ” बोलकर नागकुमारेन्द्रको अर्थ चढाये ॥ ८७ ॥ “ताक्षर्यादिकक्षा ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

ओं ह्रीं सुपर्णकुमारैद्राय इदं.....

सप्तासनसप्तगजादिसप्त सप्तैष्टथष्टोत्कटसप्तकाष्ठम् ।

द्वीपेन्द्रमहार्णव्यहमर्हदंघ्रिनखेंदुलक्ष्मीकृतमौलिपीलुम् ॥ ८९ ॥

ओं ह्रीं द्वीपकुमारैद्राय इदं.....

जलेभयात्रो मकरादिचक्रव्याकीर्णदिको बडिदंडचंडः ।

ईष्टां मदिष्टैस्वदधीस्वरोर्हक्रमाशुरज्यनमकराकमूर्द्धा ॥ ९० ॥

ओं ह्रीं उदधिकुमारैद्राय इदं.....

सिंहाधिरूढं धृतधौतखड्गं खड्गाद्यधिष्ठातृसुरैः परीतम् ।

अर्हत्पदार्धीकृतमौलिबज्रं संभावयामि स्तनितापरैद्रम् ॥ ९१ ॥

ओं ह्रीं स्तनितकुमारैद्राय इदं.....

चराहवाहं करभादिदंडचंडं तडिदंडकरालहस्तम् ।

छायाछलस्यस्तिकरुक्तार्हत्पादासनं विद्युदिनं धिनोमि ॥ ९२ ॥

अर्घ चढावे ॥ ८८ ॥ “ सप्तासन ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर द्वीपकुमारैद्रको अर्घ चढावे ॥ ८९ ॥ “ जलेभयात्रो ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर उदधिकुमारैद्रको अर्घ चढावे ॥ ९० ॥ “ सिंहाधिरूढं ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर स्तनितकुमारको अर्घ चढावे ॥ ९१ ॥ “ चराहवाहं ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर विद्युत्कुमारको अर्घ चढावे ॥ ९२ ॥ “ दिङ्-

ओं ही विष्टुकुमारैद्राय इदं
दिक्कुजरस्थं परिघञ्छतारि सिंहाद्यनेद्रीचरसप्रचक्रम् ।
नतिक्षणार्हचरणार्कशंकाराकासिंहं प्रयजे दिगेंद्रम् ॥ ९३ ॥

ओं ही दिक्कुमारैद्राय इदं
स्तंभाधिरोहं शिविकादिसैन्यव्यासाशमुल्कायुधमयिमौलि ।
अर्धांद्रमर्चामि चिनक्रमाग्रश्रीकुंभलालापितमौलिकुंभम् ॥ ९४ ॥

ओं ही अशिकुमारैद्राय इदं
कुरंगयुग्यं नगहेतिमश्व प्रष्टामरानीकपरीतभूर्तिम् ।
चायेनिलेंद्रं नतमस्तकाश्वच्छयैलिनान्त्रिस्थलमंकयंतम् ॥ ९५ ॥

ओं ही वातकुमारैद्राय इदं
सैन्यैश्वरथेभपत्तिकलवायद्यादिमैःकौणनौ
ताक्ष्ये भास्वरगंडकोष्ठकरटिद्विक्रयाप्ययानार्विगैः ।

जरस्थं ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर दिक्कुमारैद्रको अर्घ चढावे ॥ ९३ ॥ “ स्तंभाधिरोहं ”
इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर अशिकुमारैद्रको अर्घ चढावे ॥ ९४ ॥ “ कुरंगयुग्यं ” इत्यादि
तथा ओं हीं बोलकर वातकुमारैद्रको अर्घ चढावे ॥ ९५ ॥ सैन्यै ” इत्यादि दो श्लोक बोल-

सप्तः प्राक्तनसप्तकक्रमवृताश्चूडाशमदभीखगे—

न्द्रंत्यवजन्वखुर्वमानकष्टगेद्कुंभाश्वमौलिध्वजाः ॥ ९६ ॥

असुरफणिसुपर्णद्विपवाधर्यष्टविद्युच्चिगनलपवनानां भावनानामधीशाः ।

दशविधपरिवर्गपंकरत्नाढ्यधर्माभरणभवनभाजामस्तु पूर्णाहुतिर्विः ॥ ९७ ॥
पूर्णाहुतिः । इति भावेन्द्रार्चनम् ।

अथेह सर्वज्ञपदारविदद्विरेफमभ्युद्यदरेफवेषम् ।

नागायुधं किंनरशक्रमिष्टिमष्टापदाधिष्ठितमर्पयाधि ॥ ९८ ॥

ओं हीं किंनरेंद्राय इदं.....

नेतुं स्वसंज्ञार्थमिवान्यथात्वं शुश्रूषमाणं पुरुषोत्तमांघ्री ।

आलापये किं पुरुषेन्द्रमुद्यज्जयश्रियसायकमुद्दहंतम् ॥ ९९ ॥

ओं हीं किंपुरुषेंद्राय इदं.....

कर पूर्णाहुति षे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इसप्रकार भवनवासी इंद्रोंकी पूजाविधि हुई । “अथेह”

इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर किंनरेंद्रको अर्घ्य चढावे ॥ ९८ ॥ “नेतुं” इत्यादि तथा ओं

हीं बोलकर किंपुरुषेंद्रको अर्घ्य चढावे ॥ ९९ ॥ “मुद्यज्ज” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर

किंपुरुषेंद्रको अर्घ्य चढावे ॥ ९९ ॥ “मुद्यज्ज” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर

किंपुरुषेंद्रको अर्घ्य चढावे ॥ ९९ ॥ “मुद्यज्ज” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर

सुशुशुशाद्रूकमद्रुमुक्तं श्रीप्रियसीं मश्रयतः श्रयंतम् ।
साद्रूलनारूढमयोप्रपिष्ट द्विष्टं महामहोरगेद्रम् ॥ १०० ॥

ओं हीं महोरगेद्राय इदं.....

गंधर्वद्वंद्वदारकगीयमानशुभ्रोरुकीर्तिश्रितमर्हदीशम् ।

प्रीणामि गंधर्वहरिं मराललीलागतिक्लिष्टमरालपत्र ॥ १०१ ॥

ओं हीं गन्धर्वेन्द्राय इदं.....

आरादवज्ञातनिधिब्रजार्हद्वैवक्रमारब्धसंशकसेवम् ।

यक्षामि यक्षेद्रमाधिष्ठिताहिपृष्टफणिश्छिष्टनिधीद्वदप्यम् ॥ १०२ ॥

ओं हीं यक्षेन्द्राय इदं.....

आनंक्ष्यमाणं क्षपिताक्षरक्षः रक्षैः परं पूरुषमाश्रिताय ।

श्रितोग्रहस्ताय हरिश्रिताय रक्षेधिराजाय बलिं ददामि ॥ १०३ ॥

ओं हीं राक्षसेन्द्राय इदं.....

महोरगेद्रको अर्घ चढावे ॥ १०० ॥ “गंधर्व” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर गंधर्वेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०१ ॥ “आराध्य” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर यक्षेद्रको अर्घ चढावे ॥ १०२ ॥ “आनक्ष्य” इत्यादि तथा ओं हीं कहकर राक्षसेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०३ ॥

भूतेशिने भूतदयामयाय भूतार्थनिष्ठायश्चहुर्नमंतम् ।
भूतद्रमाक्रांतुरंगराजं वलिप्रदानेन सुखाकरोमि ॥ १०४ ॥
ओं ह्रीं भूतद्राय इदं

.....
ध्येयं सतां मोहपिशाचशांत्यै शतैकनेतारमुपासितारम् ।

हेमांडकोहुगमरदंडचंडं पिशाचशक्रं वकिना धिनोमि ॥ १०५ ॥
ओं ह्रीं पिशाचैद्राय इदं.....

किन्नरकिंपुरुषगरुडगंधर्वनिधिपनिशाटभूतपिशाचैः ।

प्रतिपन्नशासनानां जिनशासन महिमभासनव्यसनानाम् ॥ १०६ ॥
ताभ्यां द्वाभ्यां प्रियाभ्यामपहृतमनसां द्विद्विदेर्वासहस्र-

प्रेमाद्रोद्रोक्षिभाजां पुरनिकरतताष्टांजनादिक्षितीनाम्
नित्योत्पादादिभौमव्रजविनयसृजां लोकरक्षैकदोष्णां

पूर्णापत्योत्सवानां युगपतिभिरसावस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ १०७ ॥

“ भूतेशिने ” आवि तथा ओं ह्रीं बोलकर भूतैद्रको अर्थ चढावे ॥ १०४ ॥ “ ध्येयं सतां ”
इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर पिशाचैद्रको अर्थ चढावे ॥ १०५ ॥ “ किन्नर ” इत्यादि दो
श्लोक पढकर पूर्णाहुति त्रे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इत प्रकार व्यंतेरत्रका पूजन हुआ । “ सार्ध-

द्राम्यां पूर्णाहुतिः । इति व्यंतरेन्द्रार्चनम् ।

साहचैत्यग्रहार्कम्यनगरोत्तानार्धगोलाकृति—

प्रव्यासांकमणीद्धमंडलकरत्रातामृतैः ह्रावयन् ।

भूलोकं हरिवाहनः परिवृतो भोडुग्रहोपग्रह—

दृष्टेः कुंतकरश्चरस्थिरविधूपेतोथ सोमोऽर्च्यते ॥ १०८ ॥

ओं ह्रीं सोमैद्राय इदं

हित्वाधो दश योजनानि गगने तारा सदैकाध्वगा

मार्गैर्नित्यनवैश्वरन्निह करोति ह्रीं निशां यः स्थितिः ।

तप्तस्वर्णभलोहिताक्षपुरभृद्विषः स सूर्यश्चरै—

र्नालोकैरपरैः स्थिरैश्च रविभिः सत्रार्चतेर्षं जिनम् ॥ १०९ ॥

ओं ह्रीं सूर्येद्राय इदं

विशत्येकयुतानि योजनशतान्येकादशाद्रीश्वरं

मुक्त्वा क्षमापि तच्छतानि विदशान्यष्टौ विमानानि खे ।

त्रैत्य ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर सोमैद्रको अर्घं चढावे ॥ १०८ ॥ “ हित्वाधो ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सूर्यैद्रको अर्घं चढावे ॥ १०९ ॥ “ विशत्येक ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं

उच्चैतच्छतमाघनोदधिदशोपेतं ततान्याश्रितान्
ज्योतिष्कानंशुगृह्णतोब्जस्वयः पूर्णाहुतिवोर्षये ॥ ११० ॥
पूर्णाहुतिः । इति ज्योतिरिन्द्रार्चनम् ।

एकत्रिंशद्युपदलमितेष्टादशे यास्कनान्नि
श्रेणीबद्धे सततवसतिः पंचवर्णैर्विमानैः ।
तिस्रः श्रेणीर्वसुगुणचतुर्लक्षसंख्यैरवंतं
सौधर्मं प्राक् स्वरुक्मिहार्चाम्यथैरावणस्थम् ॥ १११ ॥

ओं ह्रीं सौधर्मैद्राय इदं.....

तद्वच्छ्रेणीबद्धमाय्योदगेकश्रेणीद्रोहाविंशति पंचवर्णाः ।
यक्षाः पाति स्वःपुरीयो जिनांसिसक्चूलं तं यष्टुमीशानमीशे ॥ ११२ ॥

ओं ह्रीं ईशानैद्राय इदं.....

बोलकर पूर्णार्घ्य चढावे ॥ ११० ॥ इसतरह ज्योतिष्कदेवेंद्रका पूजन हुआ । “ एकत्रिंश ”
इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सौधर्मैन्द्रको अर्थ चढावे ॥ १११ ॥ “ तद्वच्छ्रेणी ” इत्यादि
तथा ओं ह्रीं बोलकर ईशानैन्द्रको अर्थ चढावे ॥ ११२ ॥ “ सतस्वपाक ” इत्यादि तथा

सप्तस्वपाकधुपटकेषु सभाह्वर्मत्ये श्रेणीनिबद्धमधितिष्ठति षोडशं यः ।
त्रिश्रेणिगद्विषविकृष्णविमानलक्ष-सार्चो नमन् जिनसुपैतु सनत्कुमारः ॥ ११३ ॥

ओं हीं सनत्कुमारैद्राय इदं.....

एकाष्टकृष्णोनिविमानलक्षश्रेणीशमईत्प्रभुमाभजंतम् ।

महामि माहेंद्र सुदा वसंतं दिव्यास्पदः षोडश एव तद्वतः ॥ ११४ ॥

ओं हीं माहेंद्राय इदं.....

पात्या स्थितोऽपाकूपटके चतुर्थे चतुर्दशं ब्रह्मपदं चतस्रः ।

यः कृष्णनीलोनिविमानलक्षा ब्रह्मैन्द्रमर्चाभि तमाप्तभक्तम् ॥ ११५ ॥

ओं हीं ब्रह्मैद्राय इदं.....

द्वैतीयैके द्वादशं लांतवारुयं श्रेणीबद्धं यः श्रितो प्राकृष्टुचक्रे ।

लक्षार्थं प्राग्भानि श्रुक्ते विमानान्यहैर्भक्तं तं यजे लांतर्वेद्रम् ॥ ११६ ॥

हीं बोलकर सनत्कुमारैन्द्रको अर्थ चढावे ॥ ११३ ॥ “ एकाष्ट ” इत्यादि तथा ओं हीं
बोलकर माहेंद्रको अर्थ चढावे ॥ ११४ ॥ “ पात्या स्थितो ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर
ब्रह्मैन्द्रको अर्थ चढावे ॥ ११५ ॥ “ द्वैतीयैके ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर लांतर्वेद्रको
अर्थ चढावे ॥ ११६ ॥ “ श्रुक्तेन्द्र ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर शुकैन्द्रको अर्थ चढावे

ओं हीं छांतवेन्द्राय इदं..... ।

शुक्रैर्द्रुमैकपटलिक चत्वारिंशत्सहस्रपीतसितद्याम् ।
दशममहाशुक्रोदकश्रेणीवज्रास्पदं यजे जिनभक्तम् ॥ ११७ ॥

ओं हीं शुक्रेन्द्राय इदं..... ।

पीतार्जुनैकैर्द्रुमैकषट्सहस्रविमानशुक्तिं जिनपूजनोक्तम् ।
यजे शतारिन्द्रभिहाष्टमेहं स्थितं सहस्रार उदग्विमाने ॥ ११८ ॥

ओं हीं शतारैद्राय इदं..... ।

सप्तश्वेतौकः शतैः षट् पटल्यां षष्ठ्यां अेकश्रेणिपाथे पटल्याम् ।
पष्टे तिष्ठंत्यादे दक्षिणोदकश्रेण्योश्चाथे तांश्चतुःकल्पशक्रान् ॥ ११९ ॥
तत्रानतैर्द्रं जिनमाग्रहस्य संस्कारविद्रावितमोहतंद्रम् ।
अप्यद्भुतैर्भोगसुखैरलुप्तश्रापण्यशर्मस्मृतिमर्चयामि ॥ १२० ॥

ओं हीं आनतैद्राय इदं..... ।

॥ ११७ ॥ “ पीतार्जुन ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर शतारैद्रको अर्थ चढावे ॥ ११८ ॥
“ सप्तश्वेतौ ” इत्यादि दो श्लोक और ओं हीं बोलकर आनतैद्रको अर्थ चढावे ॥ ११९ ॥ १२० ॥

स्वर्भोगवर्गप्रसृताक्षवगोच्युदीच्यदेहाक्षुलैः पसक्तः ।
अर्हत्प्रभौ व्यक्तविचित्रभावो भजत्विर्मा प्राणतलिष्णुरिष्याम् ॥ १२१ ॥
ओं हीं प्राणतेंद्राय इदं..... ।

स्थितोपि मौक्ते वंशुषि प्रदेशैस्तनूद्युदीचीभलुसंदधानः ।
भजत्यनंतहितवज्रिनं यस्तं श्रीणम्यर्हणयारणेंद्रम् ॥ १२२ ॥
ओं हीं आरणेंद्राय इदं..... ।

कदाचिदप्यस्युतमुच्यतेवाभक्तेश्चतेर्दुश्चुरितात्परीतम् ।
एकात्रषष्ठ्यग्रशतं विमानान्यथीक्षितारं प्रयतेच्युतेंद्रम् ॥ १२३ ॥
ओं हीं अच्युतेंद्राय इदं..... ।
सौधैर्मानसानत्कुमारमाहेंद्रवासवज्जलेन्द्रा
लंतवशुक्रशतारानतशंक्रा प्राणतारणाच्युतशक्राः ।

“स्वभोगवर्ग” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर प्राणतेंद्रको अर्थ चढावे ॥ १२१ ॥ “स्थितो
पि” इत्यादि और ओं हीं बोलकर आरणेंद्रको अर्थ चढावे ॥ १२२ ॥ “कदाचिद्” इत्यादि
बोलकर पूर्णार्थ चढावे ॥ १२३ ॥ “सौधैर्” इत्यादि वो श्लोक
बोलकर इन्द्रप्रार्थनाके

बालाग्रातरमेरुचूलिकथयोवायुभयोरुभूतिभूषांगनाम
 कल्पेन्द्राः प्रददामि बोधितजिना यज्ञेन पूर्णाहुतिम् ॥ १२४ ॥
 ये चत्वारिंशत्तैर्भवनदिविषदां व्यंतराणां द्वियुक्त—
 त्रिंशत्संख्यैर्द्युषाम्ना त्रिगुणवद्युतैः सिंहसम्प्राद शशीनैः ।
 अयन्त्येते चतुर्भिः समवस्यतिषितैस्तन्मखारंभमुख्या
 दद्यां पूर्णाहुतिं वो भवनवनसुरलयोतिरुद्धामरेन्द्राः ॥ १२५ ॥

दात्रिंशत्पूर्णाहुतिः ।

इत्थं यथोचितविधिप्रतिपत्तिपूर्वयज्ञशदानभृशदीपितपक्षपाताः
 सर्वस्यज्ञपरिपूरितदुरीहितं मे मुख्यानुषंगिकफलैः प्रथयंतु शक्राः ॥ १२६ ॥
 इष्टप्रार्थं नाय पुण्यांजलिस्त्रिपेत । इति द्वात्रिंशद्विद्वार्चनविधानं
 अथ पत्रांतरालस्थापितचतुर्विंशतियक्षार्चनम् ॥

नाभेयाद्यपसव्यपार्श्वविहितन्यासांस्तदाराधका
 अब्युत्पन्नहशः सदैहिकफलप्राप्तीच्छयार्चति यान् ।
 आमंत्र्य क्रमशो निवेद्य विधिवत्पत्रांतरालेषु तान्
 कृत्वाराराधयुना धिनोमि बलिभिर्यक्षांश्चतुर्विंशतिम् ॥ १२७ ॥

ल्लिये पुष्पांजलिको क्षेपण ॥ १२६ ॥ इत्त तत्त ए वसीत इत्येकी पूजाविधि ॥ अथ

गोमूलादिचतुर्विंशतियक्षसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्षाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः।अत्रोपविशैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् १२८

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रांतरालेषु पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

सन्ध्येतरोर्ध्वकरदीपप्रश्रधाक्षसूत्रं तथा धरकरांकफलेष्टदानम् ।

प्रागगोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषांकभक्तं यजे कनकभं वृषचक्रार्घिम् ॥ १२९ ॥

ओं हीं गोमुखयक्षाय इदं..... ।

चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निलिङ्गदंडपरशुवराण्यपाणिः ।

चामीकरद्युतिरिभांकनतो महादियक्षोर्च्यतो जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ १३० ॥

पत्रके मध्यमें स्थापन किये गये चौबीस यक्षोंकी पूजाविधि कहते हैं। “ नाभेयाद्य ” इत्यादि श्लोक बोलकर गोमुखवादि चौबीस यक्षोंकी समुच्चयपूजामें पहलेकी तरह विधि करे ॥ १२७ ॥ “ यक्षाः सं ” इत्यादि श्लोक बोलकर आवहनादि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्रके मध्यमें पुष्प अक्षतोंको डाले ॥ १२८ ॥ अब हरएककी पूजा कहते हैं— “ सन्ध्येतरो ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर गोमुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १२९ ॥ “ चक्र त्रिशूल ” इत्यादि ओं हीं बोलकर महायक्षको अर्घ चढावे ॥ १३० ॥ “ चक्रासि ” इत्यादि

ओं ह्रीं महायक्षाय इदं..... ।

चक्रासिन्धुपुगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् श्रितकार्तिकाच ।
वाजिध्वजमभ्रुतः शिखिगोजनाभ—रुचक्षः प्रतीक्षतु बाले त्रिमुखाख्ययक्षः ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं त्रिमुखाख्याय इदं..... ।

प्रेखद्भुतुःखटकवामपाणिं सकंकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।

श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेश्वरयक्षाय इदं..... ।

सर्पोपवीतं द्विपन्नगोर्द्धकरं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।

कौकांकनभ्रं गरुडाधिरुढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ १३३ ॥

ओं ह्रीं तुम्बरयक्षाय इदं..... ।

तथा ओं ह्रीं बोलकर त्रिमुखयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३१ ॥ “प्रेखद्भुतुः” इत्यादि तथा
ओं ह्रीं बोलकर यक्षेश्वरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३२ ॥ “सर्पोपवीत” इत्यादि तथा ओं ह्रीं
बोलकर तुम्बरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३३ ॥ “शृगारुढं” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मृगारुहं कुंतकरापसव्यकरं सखेटा भयसव्यहस्तम् ।
 श्यार्मांगमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ १३४ ॥
 ओं ह्रीं पुष्पयक्षाय इदं ।
 सिंहादिरोहस्य सदंडशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य ।
 कृष्णत्विपः स्वस्तिककेतुभक्तेर्मातंगयक्षस्य करोमि पूजाम् ॥ १३५ ॥
 ओं ह्रीं मातंगयक्षाय इदं ।
 यजे स्वधित्युद्यफलाक्षमाला वरांकवामान्यकरं त्रिनेत्रम् ।
 कपोतपत्रं प्रभयाख्यया च श्यामं कृतेंदुध्वजदेवसेवम् ॥ १३६ ॥
 ओं ह्रीं श्यामयक्षाय इदं ।
 सहाक्षमाला वरदानशक्तिफलाय सव्यापरपाणियुग्मः ।
 स्वारूढकूर्मो मकरांकभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ १३७ ॥

पुष्पयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३४ ॥ “ सिंहादि ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर मातंगयक्षको
 अर्घ चढावे ॥ १३५ ॥ ‘ यजेस्त्रधि ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर श्यामयक्षको अर्घ
 चढावे ॥ १३६ ॥ सहाक्षमाला ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अजितयक्षको अर्घ चढावे
 ॥ १३७ ॥ “ श्रीवृक्ष ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्म यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३८ ॥

ओं ह्रीं अजितयक्षाय इदं..... ।

श्रीवृक्षकेतननतो धनुदंडखेटवशाढ्यसव्यसय इंदुसितोंबुजस्थः ।
ब्रह्मासरश्चधितिखड्गवरप्रदानव्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोर्चाम् ॥ १३८ ॥

ओं ह्रीं ब्रह्मयक्षाय इदं..... ।

त्रिशूलदंडान्वितचामहस्तः करेक्षसूत्रं त्वपरे फले च ।
विभ्रत्सितो गंडककेतुभक्तो लाटवीचरोर्चां वृषगस्त्रिनेत्रः ॥ १३९ ॥

ओं ह्रीं ईश्वरयक्षाय इदं..... ।

शुभ्रो धनुर्वभ्रुफलाढ्यसव्यहस्तोन्यहस्तेषु गदेष्टदानः ।
लुकायलक्ष्मप्रणतस्त्रिवक्रः प्रमोदतां हंसचरः कुमारः ॥ १४० ॥

ओं ह्रीं कुमारयक्षाय इदं..... ।

यक्षो हरित्सपरशूपरिमाष्टपाणिः कौशियकाक्षमणियेटकदंडमुद्राः ।
विभ्रच्चतुर्भिरपरैः शिखिगः किरांकनम्रः प्रतृप्यतु यथार्थचतुर्मुखारुयः १४१

“ त्रिशूलबंध ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईश्वर यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३९ ॥ “ शुभ्रो-
भनु ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुमारयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४० ॥ “ यक्षो हरित् ”
इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर चतुर्मुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४१ ॥ “ पातालकः ”

ओं ह्रीं चतुर्मुखयक्षाय इदं..... ।

पातालकः सप्तृणिशूलकजापसव्यहस्तः कपाहलफलांकितसव्यपाणिः ।
मेधाध्वजैकशरणो मकराधिरुढो
रक्तोर्च्यतां त्रिफणनागशिरास्त्रिवक्रम् ॥ १४२ ॥

ओं ह्रीं पातालयक्षाय इदं..... ।

सचक्रवज्रांकुशघामपाणिः समुद्रराक्षालिवरान्यहस्तः ।
प्रवालवर्णस्त्रिसुखो क्षपस्थो वज्रांकभक्तोचतु किंनरोऽर्च्यम् ॥ १४३ ॥

ओं ह्रीं किंनरयक्षाय इदं.. ।

वक्रानधोऽधस्तनहस्तपद्मफलोन्महस्तापितवज्रचक्रः ।

मृगधजार्हत्प्रणतः सपर्यां श्यामः किटिस्थो गरुडोभ्युपैतु ॥ १४४ ॥

ओं ह्रीं गरुडयक्षाय इदं..... ।

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पातालयक्षको अर्थ चढ़ावे ॥ १४२ ॥ “सचक्र” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंनरयक्षको अर्थ चढ़ावे ॥ १४३ ॥ “वक्रान” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गरुडयक्षको अर्थ चढ़ावे ॥ १४४ ॥ “सनाग” तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वयक्षको

सनागपाशोधर्वकरद्वयोधः करद्वयात्तेषु धनुः सुनीलः ।
गंधर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपशियानः ॥ १४५ ॥
ओं हीं गंधर्वयक्षाय इदं

आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पन्नि
पाशं मुद्गरमकुशं च वरदः षष्ठेन गुंजन् परैः ।
वाणाभोजफलस्रग्च्छपटलीलीलाविलासास्त्रिद्वक्
षड्भुक्कृगरांकभक्तिरसितः खेंद्रोर्च्यते शंखगः ॥ १४६ ॥
ओं हीं खेंद्रयक्षाय इदं.....

सफलकधनुर्दंडपन्न खड्गप्रदरसुपाशारप्रदाष्टपाणिम् ।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापश्रुति कलशांकनतं यजे कुबेरम् ॥ १४७ ॥
ओं हीं कुबेरयक्षाय इदं.....

जटाकिरीटौष्ठमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः ।
कूर्मांकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकाय उषैतु वृत्तिम् ॥ १४८ ॥
अर्घ चढावे ॥ १४५ ॥ “ आरभ्यो ” इत्यादि तथा ओं हीं पढकर खेंद्रयक्षको अर्घ चढावे
॥ १४६ ॥ “ सफलक ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर कुबेरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४७ ॥
“ जटाकिरीटो ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर वरुणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४८ ॥ “ खेटा-

आँ ही वरुणयक्षाय इदं.....

खेटासिकोदंडशरकुशाब्ज-चक्रेष्टदानोच्छसिताष्टहस्तम् ।

चतुर्मुखं नंदिगमुत्पलाकभक्तं-जपार्थं भृकुटिं-यजामि ॥ १४९ ॥

ओं ही भृकुटियक्षाय इदं.....

इयामस्त्रिवक्रो हुघणं कुठारं दंडं फलं वज्रवरौ च विभ्रत् ।

गोमेदयक्षः सितशंखलक्ष्या पूजां तृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ १५० ॥

ओं न्ही गोमेदयक्षाय इदं.....

ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्रदाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणता ।

श्रीनागराजककुदं धरणोन्ननीलः कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् १५१

ओं न्ही धरणयक्षाय इदं.....

सुद्रप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं विभ्रत्फलं वामकरेथ यच्छन् ।

वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंगयक्षोऽगतु तुष्टिमिष्ट्या ॥ १५२ ॥

सि ” इत्यादि तथा ओं हीं बोलकर भृकुटि यक्षको अर्थ चढावे ॥ १४९ ॥ “ श्यामस्त्रि ”
इत्यादि तथा ओं हीं पढकर गोमेदयक्षको अर्थ चढावे ॥ १५० ॥ “ ऊर्ध्वद्विहस्त ” इत्यादि
तथा ओं हीं बोलकर धरणयक्षको अर्थ चढावे ॥ १५१ ॥ “ सुद्रप्रभो ” इत्यादि तथा ओं हीं

ओं च्ही मातंगयक्षाय इदं ।

इत्थं योग्योपचारव्यतिकरपरमो जागरान् गृहाग्रव्यापाराः
शश्वदईत्प्रभुसमयमहस्तायिनो यक्षमुख्याः ।

तत्र क्तोद्धर्षहर्षाष्टतजलधिनिरुच्छ्रासलीलावगाह

प्रत्युहापोहकृञ्चयः सृजतु परमसौपर्चपूर्णाहुतिर्विः ॥ १५३ ॥

पूर्णहुतिः । इति चतुर्विंशतियक्षार्चनविधानम् । अथ चतुर्विंशतिपत्राग्रस्थापितशासनदेवतार्चनम् ।
संभावयंति वृषभादिजिनानुपास्य तद्भागपार्श्वनिहिता वरलिप्सवो याः ।

चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवतास्ताः द्विर्द्विदिशादलमुखेषु यजे निवेश्य ॥ १५४ ॥

चतुर्विंशतिशासनदेवतासमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्ष्यः संशब्दये सुष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् १५५

बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५२ ॥ “ इत्थं योग्यो ” इत्यादि श्लोक पढकर पूर्णार्घ
वे ॥१५३॥ इसप्रकार चौबीस यक्षोंकी पूजाका विधान हुआ । अब चौबीस पत्रोंके अग्रभागमें
स्थापित शासनदेवताओंकी पूजा कहते हैं । “संभावयन्ति” इत्यादि श्लोक पढकर चौबीस
शासनदेवताओंकी समुदायपूजाकेलिये पूर्व कही हुई विधि करे ॥ १५४ ॥ “ यक्ष्यः ” इत्यादि

आवहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्राग्नेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

भर्माभाय करद्रयालकुलिशा चर्काकहस्ताष्टका
सख्यासव्यशयोछसत्फलवरा यन्मूर्तिरार्त्नेबुजे ।

ताक्षये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रश्नुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १५६ ॥

ओं ह्रीं अप्रतिहतचक्रे देवि इदं..... ।

स्वर्णश्रुतिशंखरथांगशस्त्रा लोहासनस्थाभयदानहस्ता ।

देवं धनुः सार्धचतुःशतोर्ध्वं वंदारुचीष्टामिह रोहिणीष्टिः ॥ १५७ ॥

ओं ह्रीं अजितदेवि इदं..... ।

पक्षिस्थार्धेदुपरशुफलासीढीश्वरैः सिता । चतुष्पापशतीच्चारिश्चका प्रज्ञप्तिरिज्यते ॥ १५८ ॥

लोकबोलकर आवाहन आदि पूर्वक हरपककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पत्रके अग्रभागमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १५५ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते हैं—“सर्मा” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर चक्रेश्वरी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ १५६ ॥ “स्वर्णश्रुति” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर अजितदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५७ ॥ “पक्षिस्था”

ओं ही नम्रे देवि इदं..... !

सनागपाशोरफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुसुंका ।
हेमप्रभार्धत्रिधनुः शतोष्णतीर्थशानन्ना पविशंखलार्चाम् ॥ १५९ ॥

ओं ह्रीं दुरितारि देवि इदं..... !

गजेन्द्रगावज्रफलोद्यचक्रवरांगहस्ता कनकरोज्ज्वलांगी ।
गृह्णानुदंडत्रिशतोभ्रताहंसतार्चनां खड्गवराचर्यते त्वम् ॥ १६० ॥

ओं ही मोहिनि देवि इदं..... !

सिता गोदृषगा घंटां फलशूलवराहृताम् । यजे कालीं द्विको दंडशतोच्छ्रायजिनाश्रयाम् ॥

ओं हीं मानेविदावं इदं..... !

चंद्रोज्ज्वलां चक्रशारासपाश चर्मत्रिशूलेपुष्पासिद्धस्ताम् ।

इत्यादि तथा “ ओं हीं ” बोलकर नम्रादेवीको जलावि द्रव्य चढावे ॥ १५८ ॥ “ सनाग ”

इत्यादि तथा “ ओं हीं ” बोलकर दुरितारि देवीको अर्घ चढावे ॥ १५९ ॥ “ गजेन्द्र ”

इत्यादि तथा “ ओं हीं ” बोलकर मोहिनी देवीको जलावि चढावे ॥ १६० ॥ “ सिता ”

इत्यादि तथा “ ओं हीं ” बोलकर मानव देवीको जलावि चढावे ॥ १६१ ॥ “ चंम्री ” इत्यादि

श्रीश्वालिनीं सोर्धधनुःशतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि ॥ १६२ ॥
ओं ही ज्वालामालिनीदेवि इदं..... ।

कृष्णा कूर्मासनाधन्वशतोन्नतजिनानता । महाकालीज्यते वज्रफलमुद्गरदानयुक् ॥ १६३ ॥
ओं ही भृकृति देवि इदं..... ।

ज्ञषदापरुचकदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरिताम् ।
नवतिधनुङ्गुगजिनप्रणताभिह मानवीं प्रयजे ॥ १६४ ॥
ओं ही चामुंढे देवि इदं..... ।

समुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम् । गौरीं यजेशीतिधनुः प्राशु देवीं मृगोपगाम १६५

तथा “ ओह्रीं ” बोलकर ज्वालामालिनीदेवीको जलादि द्रव्य चढ़ावे ॥ १६२ ॥ “ तुष्णा ”
इत्यादि तथा “ ओं ह्रीं ” पढकर भृकृति देवीको जलादि चढ़ावे ॥ १६३ ॥ “ ज्ञष ” इत्यादि
तथा “ ओं ह्रीं ” कहकर चाडुंढा देवीको जलादि चढ़ावे ॥ १६४ ॥ “ समुद्ग ” इत्यादि
तथा ओं ह्रीं-कहकर गोमिधकिदेवीको जलादि अष्टद्रव्य चढ़ावे ॥ १६५ ॥ “ सपचा ” इत्यादि

ओं ह्रीं गोमघकि देवि इदं..... ।

सपथसुशर्काभोजदाना मकरगा हरित् । गांधारी समतीष्वास तुंगप्रभुनतार्च्यते ॥ १६६ ॥

ओं ह्रीं विद्युन्मालिनि देवि इदं..... ।

पष्टिदं द्योच्चतीर्थेशनता गोनसवाहना । ससर्पचापसर्पेषुर्वैरोधी हरितार्च्यते ॥ १६७ ॥

ओं ह्रीं विशादेवि इदं..... ।

हेमाभा हंसगा चापफलवाणवरोयता । पंचशचापतुंगार्हद्भक्ता नतमतीज्यते ॥ १६८ ॥

ओं ह्रीं कुंभिणि देवि इदं..... ।

सांभुजधनुदानांकुशशरोरुपला व्याध्रगा प्रवालनिभा ।
नवर्षचक्रचापोच्छ्रितलिननञ्जा मानसीह मान्येत ॥ १६९ ॥

तथा "ओंह्रीं" कहकर विद्युन्मालिनीदेवीको जलादि चढावे ॥ १६६ ॥ पष्ठि " इत्यादि तथा भोंह्री " बोलकर विद्यादेवीको जलानि द्रव्य चढावे ॥ १६७ ॥ " हेमाभा " तथा ओंह्रीं " बोलकर कुंभिणिदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६८ ॥ " सांभुज " इत्यादि तथा " ओंह्रीं "

ओं ह्रीं परमृते देवि इदं.....

चक्रफलेटिवराकितकरा महामानसीं सुवर्णाभाम् ।

त्रिास्त्रिगां चत्वारिंशद्वज्रुखतानिनमतां प्रयजे ॥ १७० ॥

ओं ह्रीं कंदर्पदेवि इदं..... ।

सचक्रशंखासिवरां रुक्माभां कृष्णकोलगाम् । पंचत्रिंशद्वज्रुखुग् जिन्नमत्रां यजे जयाम् ॥ १७१ ॥

ओं ह्रीं गंधारिणी देवि इदं..... ।

स्वर्णाभां हंसगां सर्पमृगवज्रवरोद्धराम् । चाये तारावतीं त्रिशच्चापोच्चमशुभाक्तिकाम् ॥ १७२ ॥

ओं ह्रीं कान्तिदेवि इदं..... ।

पंचविंशतिचापोच्चदेवसेवापराजितां । शरभस्थार्च्यते खेटफलासिवरयुक् हरित् ॥ १७३ ॥

ओं ह्रीं मनजातदेवि इदं..... ।

बोलकर परमृतादेवीको जल आदि चढावे ॥ १६९ ॥ “चक्रफले” इत्यादि तथा “ओंह्रीं”

बोलकर कंदर्पदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७० ॥ “सचक्र” इत्यादि तथा “ओंह्रीं”

बोलकर गंधारिणी देवीको जल आदि चढावे ॥ १७१ ॥ “स्वर्णासां” इत्यादि तथा

“ओंह्रीं” बोलकर काली देवीको जल आदि चढावे ॥ १७२ ॥ “पंचविंशति” इत्यादि तथा

“ओंह्रीं” बोलकर मनजातदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७३ ॥ “पीतां” इत्यादि तथा

पीतां विशतिचापे च स्वामिका बहुरुपिणीम् । यजे कृष्णादिगां खेटफलवज्रवरोचराम् १७४ ॥
ओं ह्रीं सुगधिनि देवि इदं..... ।

चासुंढा यष्टिखेटाक्षमूत्रखड्गोत्कटा हरित् । मकरस्थार्च्यते पंचदशदंडोन्नतेशभाक् ॥ १७५ ॥
ओं ह्रीं कुसुममालिनि देवि इदं..... ।

सव्यंकद्युपगप्रियंकर सुतुक् प्रीत्यै करे विभ्रतीं
दिव्याम्रस्तवकं सुभंकरकरश्छिद्यान्यहस्तांगुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभामाम्रद्रुमच्छायगां
वंदारं दशकार्मुकोच्छ्रयत्रिनं देवीमिहाभ्रा यजे ॥ १७६ ॥

ओं ह्रीं कूष्मांडिनि देवि इदं..... ।

येष्टुं कुर्केटसर्पगात्रिफणकोत्सा द्विवो यात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्पादिदो अष्टका ।
तां शान्तामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालांबरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायस्मि पद्मावतीम् ॥ १७७ ॥

“ओं ह्रीं” बोलकर सुगंधिनिदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७४ ॥

“ओं ह्रीं” बोलकर कुसुममालिनीको जल आदि चढावे ॥ १७५ ॥

“ओं ह्रीं” बोलकर कूष्मांडिनी देवीको जल आदि त्रय्य चढावे ॥ १७६ ॥

“येष्टुं” इत्यादि तथा

“सव्ये” इत्यादि तथा

“येष्टुं” इत्यादि

ओं ह्रीं पद्मावतीदेवि इदं..... !

सिद्धायिकां सप्तकरोद्धितांगजिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम् ।

श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञै हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम् ॥ १७८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धायिनि देवि इदं..... !

इत्यावर्जितचेतसः समुचितैः सन्यानदानैः स्फुरन्

स्यात्कारध्वजशासनद्विपदपक्षपोच्छलयुक्तयः ।

यक्ष्यं संघनृपादिलोकविपदुच्छेदादिहाईन्येहे

कुर्वाणाः सहकारितां समभिमां गृहंतु पूर्णोद्धृतिम् ॥ १७९ ॥

पूर्णोद्धृतिः । इति शासनदेवतार्चनविधानम् । अथ द्वारपालानुकूलनम् ।

सोमयमत्ररुणधनदा जिनदेवीद्वारपालननियुक्ताः ।

स्वं स्वर्गिहेत्य नियोगं कुर्वद्भ्यः को न वः स्पृहयेत् ॥ १८० ॥

सोमाद्वारपालसांमुख्यविधानाय विदुषु पुष्पासतं क्षिपेत् ।

तथा " ओंन्ही " बोलकर पद्मावती देवीको जल आवि द्रव्य चढावे ॥ १७७ ॥ "सिद्धायिकां

स्त्यायि तथा " ओंशी " बोलकर सिद्धायिनी देवीको जल आवि आठ द्रव्य चढावे १७८ ॥

" इत्यावर्जित " इत्यादि श्लोक कहकर आठ द्रव्यसे सबको पूर्णार्थ दे ॥ १७९ ॥ इस प्रकार

कोदंडकांडस्फुटदृष्टिमरुद्भटोऽन्यकथानुरक्तम् ।
वेद्याः पुरो द्वारगिमामवंतं सोमोपगृह्णाम्युचितैर्भवंतम् ॥ १८१ ॥

ओं धनुषराय अर अर त्वर हूं सोम आंगच्छागच्छ इदं जलं..... ।
द्विद्वगदंडोद्यंतंचंददंडं प्रचंडसामाजिकसंकथास्थम् ।

वेदिप्रतीहारमपांच्यमेतं पातं यम त्वामनुकूलयामि ॥ १८२ ॥
ओं वंदधराय अर २ त्वर २ हूं यम आंगच्छागच्छ इदं..... ।
विषाक्तजिह्वायुगलीढसूक्तस्फुलिंगवर्तियुग्रभुजंगरंडंभुः ।

प्रतीच्यवेदीमुखद्वसभृत्यद्वृतः प्रचेतः कुरु चारुचेतः ॥ १८३ ॥
ओं पाशधराय अर २ त्वर २ हूं वरुण आंगच्छागच्छ इदं..... ।

शासनदेवताओंका पूजन समाप्त हुआ । अब द्वारपालोंको अनुकूल करते हैं । “सोम” इत्यादि श्लोक बोलकर उन सोम आदिको सन्मुख करनेके लिये दिशाओंमें पुष्प अक्षतको बखेरें ॥ १८० ॥ “कोदंड” इत्यादि तथा “ओंधनु” इत्यादि बोलकर सोमको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ १८१ ॥ “द्विद्वग” इत्यादि तथा “ओं वंद” इत्यादि बोलकर यमको जल आदि चढावे ॥ १८२ ॥ “विषाक्त” इत्यादि तथा “ओं पाश” इत्यादि बोलकर वरुणको जल आदि चढावे ॥ १८३ ॥ “उतस्ततो” इत्यादि तथा “ओं गदा” इत्यादि बोलकर

इतस्ततो नाभिगिरेः सगर्भां गर्दां सलीला भ्रमयद्बुदीच्ये ।
द्वारे निषण्णोऽनुचरैर्विर्तदंः कुचेर वीरानुसरोपचार ॥ १८४ ॥

ओं गदाधराय अर २ त्वर २ हूं कुचेर आगच्छगच्छ इदं..... ॥

एवं शियाकृताः सोमप्रमृखा द्वास्यकुंजराः । क्षुद्रान् क्षिपंतो विशतः सलुनु मन्वताम् ॥ १८५ ॥
पुष्पाजलिः । इति द्वारपालानुकूलनविधानम् । अथ दिक्पालानुकूलनम् ।

इंद्राग्निश्राद्धदेवाः शरपतिवरुणस्पर्शनश्रीदरुद्राः

पूर्वाद्यान्नासु वैद्यास्त्रिजगदधिपतेः प्रांसरक्षाधिकाराः ।

तद्यज्ञोस्मिन्नवात्मप्रयति विहरतामेत्य पल्यादियुक्ता

विभ्रंतो यथास्वं वितनुत समयोद्योतमौचित्य कृभ्याः ॥ १८६ ॥

इन्द्रादिविक्पालानामावाहनादिपुरस्सराध्येषणाय त्रिंशु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

रूप्याद्रिस्पद्धिंघंदायुगपटुकडुंढंकास्त्रनानिशुंभ—

ऋपासंख्यातिचित्रोज्ज्वलविलसल्लक्ष्मवर्षमद्वयस्यं ।

कुचेरको जल-आदि-चढावे ॥ १८४ ॥ “एवं शिया” इत्यादि बोलकर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १८५ ॥ इसतरह द्वारपालोंको अलुकलकरनेकी विधि हुई । अब विक्रपालोंको प्रसन्न करनेकी विधि कहते हैं । “इन्द्राग्नि” इत्यादि श्लोक बोलकर बंड आदि विक्रपालोंका आवाहन आदि करनेके लिये चारोंतरफ पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १८६ ॥ अब इनकी जुड़ी जुड़ी पूजा

दृश्यत्सामानिकादित्रिदशपरिद्वृतं रुच्यसंचयादि देवी
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिहेंद्रं यजामि ॥ १८७ ॥
ओं ही इन्द्र आगच्छागच्छ इंद्राय स्वाहा.....!

रुक्मारुघुर्धुरस्रगलचदुलपृथुमायभृंगाभतुंग—
स्यं रौद्रपिंगेक्षणयुगममलं ब्रह्मसूत्रं शिखास्रम् ।
कुंडी वामप्रकोष्ठे दधतमितरपाण्यात पुण्याक्षसूत्रं
स्वाहान्वीतं धिनोमि श्रुतिश्रुत्वरसभं प्राच्यपाच्यंतरेत्रिसू ॥ १८८ ॥
ओं ही अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा ।

कल्पांताब्दोषजेव त्रिगुणफणिगुणोद्गाहितत्रैवधंटा
दंकारीत्युग्रशृंगक्रमहतभधरत्रातरत्काक्षसंस्थं
चंडार्चिः कांडदंडोद्भुमरकरमतिक्रूरदारादिलोकं
क्राण्योर्द्रेकं दृशंस प्रथममथ यम दिश्यपाच्यां यजामि ॥ १८९ ॥

कहते हैं ॥ “रुष्यादि” इत्यादि तथा “ओंही” बोलकर इंद्रको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८७ ॥
“रुक्मा” इत्यादि तथा “ओंही” इत्यादि बोलकर अग्निको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८८ ॥
“कल्पांता” इत्यादि तथा “ओंआं” इत्यादि बोलकर यमको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८९ ॥

ओं आं क्रों ह्रीं यमागच्छागच्छ यमाय स्वाहा ।

आरुढं धूमधूत्रायतविकटसटास्ताग्रदिक्रूरक्षरूक्षमा
लक्षाक्षावशिष्टास्फुटरुदितकला योद्रमाभांगमृक्षम् ।

क्रूरकव्यात्परीतं तिमिरचयरुचं सुद्धरधुण्णरौद्र-

शुद्रौघं त्रात याम्या परहरतमहं नैर्ऋतं तर्पयामि ॥ १९०

ओं आं क्रों ह्रीं नैर्ऋत्यागच्छागच्छ नैर्ऋत्याय स्वाहा ।

नित्यांभः कोलिपांद्भृत्कटकपिलिविशच्छेदसोदर्यदंत-
प्रोत्फुल्यत्पद्मखेलत्करकरिमकरवयोमयानाधिरूढम् ।

प्रेखन्मुक्ताप्रचालापरणभरमुपस्थाह्वदाराहृताक्षं

स्फूर्जन्नीमाहिपासं वरुणमपरदिग्रक्षणं प्रीणयामि ॥ १९१ ॥

ओं आं क्रों ह्रीं वरुणागच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा ।

वल्लगच्छं गाग्रभिर्नामुदपटलगलत्तोयपीतश्रमाभ्र

स्तुत्यस्तस्वांतरंहः सुरकपितकुलग्रावसारंगयुग्यम् ।

“आरुढं” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्यको अर्थ चढावे ॥ १९० ॥
नित्यांभ” इत्यादि तथा” ओं आं” इत्यादि पढकर वरुणको अर्थ चढावे ॥ १९१ ॥” वला”

व्यालोलद्वात्रयंत्रं त्रिजगदसुधृतिव्यग्रमुग्रद्रुमास्त्रं
सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुमानिलमुदक् प्रत्यगंतः प्रणौमि ॥ १९२ ॥
ओं आं क्रीं हीं अनिलागच्छागच्छ अनिलाय स्वाहा ।

हांसोघो नाह्यमानं पवननरिदृतत्केतुपंक्ति विमानं
स्वाखडः पुष्पकाख्यं क्रमसखरसनादाममुक्ताकलापः ।
अग्राम्योद्दामत्रेषः सुललितधनदेव्यादिवक्त्राब्जभृंगः
शक्तीभिन्नारिमर्मा भजतु वलिद्वुदग्भुक्तिवीरः कुवेरः ॥ १९३ ॥
ओं आं क्रीं हीं कुबेरागच्छागच्छ कुबेराय स्वाहा ।

सास्त्रावांचालकिंकिण्यनशुरणनञ्जणत्कारमंजीरसिंजा
रम्योद्यच्छृंगहेलाविहरदुरुशरचंद्रशुभ्रर्षभस्थम् ।
भास्वभ्रूपामुजंगमुजगसितजटाकेतकाद्धेदुचूलं
दधत्शूलं कपालं सगणवमिहार्षामि पूर्वोत्तरेशम् ॥ १९४ ॥
ओं आं क्रीं हीं ईशानागच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा ।

इत्यादि तथा “ओं आं” इत्यादि बोलकर वायुको अर्घ चढावे ॥ १९२ ॥ “हांसो” इत्यादि तथा
“ओं” इत्यादि पढकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ १९३ ॥ “सास्त्रा” इत्यादि तथा “ओं” इ-

इत्यर्हन्मदुसामवायिकनयाह्वानादियोग्यक्रमै—

दिवपालाः कृततुष्टयः परिजनोत्कृष्टश्रियोष्टाप्यमू ।

द्रष्टा कामदमहदध्वरमरं दिक्चक्रमाक्रामतो

भव्यान् संदधतः शुभैः सह भर्जन्तेतर्हि पूर्णाहुतिम् ॥ १९५ ॥

पूर्णाहुतिः । इति दिक्पालार्चनविधानम् । अथ दिक्चतुष्टयीनिविष्टप्रभावनोद्भट्यक्षानुकूलनम् ।

प्रभुं भक्तुमिहागत्य प्राचीं चिन्वन्निजश्रिया । बलिं विजययक्षेश मंत्रपूर्तां स्वसात्कुरु ॥ १९६ ॥

ओं ह्रल्व्यू वि विजययक्ष बलिं गृहाण गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

अत्राप्राचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम् । यथार्हवलिंसंतुष्टो वैजयंत जयंत तु ॥ १९७ ॥

ओं ह्रल्व्यू वै वैजयंत बलिं..... ।

देवाधिदेवसेवायै मतीचीं दिशमास्थितः । बलिदानेन संप्रीतो जयंत जय दुर्जयान् ॥ १९८ ॥

ओं ह्रल्व्यू जं जयंत बलिं..... ।

त्यादि कहकर ईशानको अर्घ चढावे ॥ १९४ ॥ “इत्यर्ह” इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥

१९५ ॥ इसतरह दिक्पालोंकी पूजाविधि पूर्ण हुई । अब चारों दिशाओंके यक्षोंका सत्कार

करते हैं । “प्रभु” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर विजययक्षको अर्घ चढावे ॥ १९६ ॥

“अत्राप्रा” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर वैजयंतको अर्घ चढावे ॥ १९७ ॥ “देवाधि

इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर जयंतको अर्घ चढावे ॥ १९८ ॥ “उचीचीं” इत्यादि

उदीचीं भूययन् भूत्या सर्वज्ञोपासनोत्सुकः । अपराजित यक्ष त्वं प्रीयस्व बलिनामुना ॥ १९९ ॥
ॐ मन्त्रव्यू अं अपराजित बलि..... ।

एवं संमानिता यूयं जिनेन्द्रसमये रताः । प्रतिष्ठासमयेऽयुष्मिन् यतध्वं चिन्वशांतये ॥ २०० ॥
पूर्णहृतिः । इति विजयादियक्षानुकूलनविधानम् । अथैशानदिश्यनावृतार्चनम् ।

जंबूद्वक्षस्य नानामणिमयवपुषः प्राड्यजंबूद्वृतस्य
प्राक्शाखामावसंतं नवजलदरुचं पक्षिराजाधिरूढम् ।

कुंडीशंखाक्षमालारथचरणकरं त्राणनिःशेषजंबू—
द्वीपश्रीकं यजेस्मिन् विधुरविधुतयेनावृतं व्यंतरेंद्रम् ॥ २०१ ॥

ओं दशदिशाधिनाथं त्रैलोक्यदंडनायकं जंबूद्वीपाधिपतिं गरुडपृष्ठमारूढं स्निग्धभिन्नांजनाभ-
देवं समाह्वयामीह स्वाहा हे अनावृतगच्छागच्छ अनावृताय स्वाहा अनावृतपरिजनाय स्वाहा ।

तथा “ओं” इत्यादि बोलकर अपराजितको अर्घ्य चढ़ावे ॥ १९९ ॥ “एवं संमा” इत्यादि श्लो-
क बोलकर पूर्णार्घ्य चढ़ावे ॥ २०० ॥ इस प्रकार विजयादि यक्षोंका सत्कार हुआ । अब
ईशानदिशाके अनावृत यक्षकी पूजा करते हैं । “जंबूद्वक्ष” इत्यादि तथा “ओं दश” इत्यादि
पढकर जल आदि अष्ट द्रव्य चढ़ावे ॥ २०१ ॥ “त्रयान्ति” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर

क बोलकर पूर्णार्घ्य चढ़ावे ॥ २०० ॥ इस प्रकार विजयादि यक्षोंका सत्कार हुआ । अब
ईशानदिशाके अनावृत यक्षकी पूजा करते हैं । “जंबूद्वक्ष” इत्यादि तथा “ओं दश” इत्यादि
पढकर जल आदि अष्ट द्रव्य चढ़ावे ॥ २०१ ॥ “त्रयान्ति” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर

ब्रह्मते दिक्षु रुद्राद्यधिपतिषु समाग्न्यामसूर्याभपूर्व—

द्विद्विस्वर्भूगणैकोचरभृतिषु वसंत्यष्ट-सारस्वताद्याः ।

यद्गर्गस्ते स्वतंत्राः सतविषयवृषो भाविजेन्माप्यमोक्षाः

पूर्वज्ञा मेघ लौकांतिकयुरमुनयस्तीर्थकृच्छंसिनोऽर्च्यः ॥ २०२ ॥

ओं ह्रीं लौकांतिकदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । ब्रह्मेन्द्रोपरि देवर्षिपुष्पांजलिः ।

सुरयोपचारिकचरित्रचितोरुण्यपाकाप्रखस्थसितरत्नविमानवासान् ।

अर्हत्यतिष्ठितिभिमामसुमोदमानान् संमानयामि कुसुमांजलिनाहमिन्द्रान् ॥ २०३ ॥

ओं ह्रीं अहर्मिन्द्रदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । अच्युतेन्द्रोपरि अहर्मिन्द्रपुष्पांजलिः ।

अथ विधिशेषम् ।

पूर्वादिदिक्षु वेद्या मंगलशांतिकजयेष्टसिद्धयर्थम् ।

मंगलशस्त्रपताकाकलशानथ योजयेष्टशः क्रमशः ॥ २०४ ॥

मंगलादिस्थापनाप्रतिज्ञानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

लौकांतिक देवोंके लिये पुष्पांकी चढावे ॥ २०२ ॥ “सुख्यो” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोल-
कर अष्टमिन्द्र देवोंके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ २०३ ॥ अब शेष विधान कहते हैं । “पूर्वा-
दि” इत्यादि श्लोक पढकर मंगल आदि आठ द्रव्योंकी स्थापनाके लिये विशाखोंमें पुष्प अ-

छत्राब्दध्वजचामरयुगतोरणताल्लष्टतनंघ्रावर्तम् ।
दीपं च प्रणवश्रुत्वं न्यसामि मंत्रार्पितं श्रियै स्वाहांतम् ॥ २०५ ॥

ॐ श्रेतच्छत्राश्रियै स्वाहा । एवमन्येष्वपि मंगल्यष्टकस्थापनम् ।
दधती पविर्मिद्राणी चक्रं वैष्णव्यासिं च कौमारी ।
सीरं वाराही मुसलं ब्रह्मणी गदां महालक्ष्मी ॥ २०६ ॥
शक्तिं चासुंडायिनि माहेशी भिंडमालमाघंतु ।
विघ्नान् प्रणवमुखारुखा गर्भस्वाहांतमंत्रविन्यस्ताः ॥ २०७ ॥

ओं इंद्राण्यै स्वाहा । एवमन्यास्वपि आयुधाष्टकस्थापनम् ।

पीता मभारुणा पद्मा कृष्णाभा मेघमालिनी । हरिन्मनोहरा श्वेता चंद्रमालेंद्रीलभा ॥ २०८ ॥
सुमभारुखा जंया श्यामा विजया पंचवर्णभा । दिक्षु तिष्ठंस्विमा देव्यः सर्वर्णध्वजपाणयः २०९ ॥
ओं प्रभायै स्वाहा । एवमन्यास्वपि पताकाष्टकस्थापनम् ।

क्षत बलैरे ॥ २०४ ॥ “छत्र” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि पठकर श्वेतछत्रावि आठ मंगल
त्रयोंको जलावि चढावे ॥ २०५ ॥ “दधती” इत्यादि दो श्लोक तथा “ओं” इत्यादि बोलकर
आठ आयुध (दृथियार) स्थापना करे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ “पीता” इत्यादि दो श्लोक तथा
“ओं” इत्यादि बोलकर आठ पताकाओंका स्थापना करे ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ “मभारुणा” इ-

शुभान् प्रकृतशरणोत्तममंगलार्थान् कुंभान् मुखार्पितसुप्लवमामुल्लिगान् ।
स्रक्चंदनाक्षररुचोऽनुभूतान्निवेश्य सूत्रेण पंचरुचिना त्रिगुणं दृणोमि ॥ २१० ॥
कलशाष्टकस्थापनम् ।

चाणैर्जयाय सिद्धार्थैरर्थसिद्धयै यवारकैः । संतानवृद्धयै च चतुर्वेदीकोणान् विभूषणैः २११
वाणचतुष्टयादिस्थापनम् ।

सगुडलवणां सलोष्टां पांडुशिलासोदरेसु सूत्रवृताम् ।

भोगोपभोगसंपत्प्रथनीं वेद्यां पुरः शिलां निदधे ॥ २१२ ॥

ओं सर्वजनानंदकारिणि सौभाग्यवति तिष्ठ २ स्वाहा । शिलास्थापनम् ।

हैमं रूप्यं चांदनमाहोस्वित् क्षीरवृक्षजं पट्टम् ।
धौतासितवस्त्रपिहितं प्रभुमधिकर्तुं न्यसामि वेद्यंतः ॥ २१३ ॥

ओं भद्रासनश्रियै स्वाहा । पट्टस्थापनम् । अथ पीठचतुष्टयाचनम् ।
तद्वेदीचतुरंतसांगुलवितस्त्युद्देशशुभत्कर—

व्यासायामथुतासनेषु कमलान्यालिख्य तत्कर्णिकाः ।

त्यादि श्लोक बोलकर आठ कलशोंका स्थापन करे ॥ २१० ॥ “वाणै” इत्यादि श्लोक पठ-
कर वाण आदि चार द्रव्योंको स्थापन करे ॥ २११ ॥ “सगुह” इत्यादि तथा “ओं” इत्या-
दि बोलकर शिलाकी स्थापना करे ॥ २१२ ॥ “हैमं” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर

प्राग्वत् प्राच्यं तथा दलेष्वनुदिशं देवीर्जयाद्याः पृथक्—
 जंभाद्याश्च विदिग्दलेषु धिन्यां दिग्द्वारैरक्षिणः ॥ २१४ ॥

बहिर्मूलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलि क्षिप्त । अत्रापि पूर्ववत् कर्णिकाः परब्रह्मादिपदैः पूर-
 गित्ना तत्पत्रावलेषु पूर्वादिविशु ओ नये स्वाहा, ओ विजये स्वाहा, ओ अजिते स्वाहा, ओ अपरा-
 गिनि स्वाहा । आग्नेयादिविशु च ओ जंभे स्वाहा, ओ मोहे स्वाहा, ओ स्तंभे स्वाहा, ओ स्तं-
 यक्षदेवांश्च संस्थाथ निद्रूपं निश्चरूपेत्यादिविधिना कर्णिकार्चनं संक्षेपेण कृत्वा जयादिदेवीर्दिनपालान्
 द्वारपालान् यक्षांश्च पूजयेत् । अथ जयादिदेवतार्चनम् ।

जयाद्याः शब्दये युग्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतेता वो यजे प्रत्येकमादरात् २१५
 काद्यासन (पट्टा) स्थापित करे ॥ २१३ ॥ अथ चार पीठोंकी पूजां कहते हैं । “तद्देवी” व-
 त्यानि श्लोक कहकर बाघामंजलकी पूजाके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ यथांपरभी
 पालेकी तरफ कर्णिकामें अरुंत आवि पर्वोंको लिलकर उस कमलपत्रपर पूर्व आवि विशा-
 ओंभे “ओं जये” इत्यादि चार पत्र लिखे । फिर आग्नेयी आवि विशिशाओंके पत्तोंपर “ओं
 जंभे” इत्यादि चार पत्र लिखे । उसके बाद बाएरके चार बरवाजोंपर चौकोन मंजल लि-
 टाकर उसके बाहर पहलेकी तरफ विकपाल, द्वारपाल और यक्षदेवोंको स्थापन करके
 “चिपूरं” इत्यादि कर्षा द्रव्यं चिन्तये कर्णिकाकी संक्षेपमे पूजा करे । फिर जयादि देवी वि-

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्राप्तिज्ञानाय पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

जये जयाद्ये विजये विजैनि जैने जितेपरजितेस्मिन् ।

जंभेमोहनेस्ति माः स्तंभिनि रक्ष रक्षास्मान् ॥ २१६ ॥

स्वोपग्रहाय पत्रेषु पुष्पाक्षतानि क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

इहार्हतो विश्वजनीनदृचेः कृतौ कृतारातिजये जये त्वाम् ।

सद्वंधपुष्पाक्षतदीपघृपफलादिसंपादनया धिनोमि ॥ २१७ ॥

ओं ह्रीं जये देवि आगच्छागच्छ इदं..... ।

जिनाधिराजे विजयैकविद्ये जगद्विजेतुः कुसुमायुधस्य ।

विजेतरि स्फारितभूरिभक्तिं त्वामत्र यज्ञे विजये यजेहम् ॥ २१८ ॥

ओं ह्रीं विजये देवि..... ।

कपाल, द्वारपाल, और यक्षोंको पूजे ॥ अब जया आदि देवताओंकी पूजा कहते हैं । जया इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हर एककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पुष्प-अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ “जये” इत्यादि श्लोक बोलकर अपने उपकारके लिये पत्रोंपर पुष्प अक्षतको क्षेपण करे ॥ २१६ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते हैं । “इहा” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर जया देवीको जलादि आठ द्रव्य चढ़ावे ॥ २१७ ॥ “जिना” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर विजयाको अर्घ चढ़ावे ॥ २१८ ॥ “जग” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं”

नगजयोज्जागरिणां कपायद्विषां न केनापि जितं जिनेन्द्रम् ।
आवर्जयन्तामृजितोर्जितोर्जितामूर्जासंधे त्वामजितेर्चयामि ॥ २१९ ॥
ओं ह्रीं अजिते.....

पराजितारेपरराजितास्त्रैरप्याश्रितस्यारिपराजयाय ।

नगत्प्रभोरत्र महे महामि पराजिते त्वामपराजितेद्य ॥ २२० ॥
ओं ह्रीं अपराजिते.....

व्यामोहनिद्रां भुवनानि जंभ विशंतुद्भुद्धरतो जिनस्य ।
वितन्वतां यज्ञमजन्यहंर्त्रीं त्वा देवि जंभे परिपूजयामि ॥ २२१ ॥
ओं ह्रीं जंभे.....

चिरं जगन्मोहविषेणसुप्तं स्याद्द्रादमंत्रेण विवोषयन्तम् ।
श्रीबुद्धपाराधयतां हि मोहे त्वां मोहयन्तीमहितान्महाभि ॥ २२२ ॥
ओं ह्रीं मोहे.....

मोहकर अत्रिताको जलावि गढावे ॥ २१९ ॥ "पराजि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर
अपराजिताको गलानि आठ द्रव्य चढावे ॥ २२० ॥ "व्यामोह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं"
मोहकर जंभा ह्रीं पर मन्त्रानि चढावे ॥ २२१ ॥ "चिरं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

जिनं महाभव्यविश्वदिभावप्रासादसुस्तंभसुपास्ति यस्तम् ।
प्रकुर्वतं स्तंभयतां स्तभंतं स्तंभे सृजंतीं भवतीं यजामि ॥ २२३ ॥

ओं ह्रीं स्तंभे देवि..... ।

प्रवादिनां स्तंभयतोत्र मानस्तंभेन दूरादपि संशु मानम् ।
जिनेस्य यज्ञेर्चनया सपत्नधीस्तंभिनि स्तंभिनि संस्तुवे त्वाम् ॥ २२४ ॥

ओं ह्रीं स्तंभिनि देवि..... ।

इत्येताः पृथुयज्ञसो जयादिदेव्यो देव्यामभिरुचिते जिनेद्रयज्ञे ।
पूर्णाहुतिमिह लंभिताः प्रपूज्य श्रेयांसि प्रददतु भव्यभाक्तिकेभ्यः ॥ २२५ ॥

पूर्णाहुतिः ।

प्राच्याद्यग्नेयकोणादित्रैष्विष्टाः क्रमादिमाः । अष्टौ जयादिजंभादिदेव्यः शान्तिं वितन्वताम् ॥
इष्टप्रार्थना । इति जयादिदेवतार्चनविधानम् । अथ दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च संक्षेपेण
सत्कुर्यात् । इति बहिर्मंडलवतुष्टयार्चनविधानम् ।

मोहा देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२२ ॥ “जिनं” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोलकर
स्तंभादेवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२३ ॥ “प्रवादि” इत्यादि तथा “ओं ह्रीं” बोल-
कर स्तंभिनीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२४ ॥ “इत्येताः” इत्यादि श्लोक बोलकर स-

इत्थं निष्ठितपूज्यपूजनविधिः शक्नो महार्घेण तां
त्रिवेदीमवतार्य भूतिभरतो भक्त्या परित्यानतः ।
सद्भूप्राथतुरोष्ट वा सुकुसुमैस्तं जापयन् प्रतस-

द्वूपं मंत्रमनादिसिद्धयुग्धीरीशानवेदीं यजेत् ॥ २२७ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्जायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।
चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलीपणत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगतमा
अरहंतलोगतमा सिद्धलोगतमा साहुलोगतमा केवलपणत्तो धम्मो लोगतमा । चत्तारिसरणं पव्वज्जामि
अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलपणत्तो धम्मो सरणं
पव्वज्जामि हौं स्वाहा । अनादिसिद्धमंत्रः । इति मूलवेदिकार्चनविधानम् । अथोत्तरवेदिकार्चनम् ।

प्राग्वन्मंत्रानथ कजदलेष्वष्टसु श्रयादिदेवीः ।

बको पूर्णार्ध देवे ॥ २२५ ॥ “प्राच्या” इत्यादि श्लोक बोलकर इष्टवस्तुकी प्रार्थना करे

॥ २२६ ॥ इसतरह जया आदि देवताओंकी पूजा हुई । इसके बाद दिक्पाल, द्वारपाल
और यक्षोंका संक्षेपसे सत्कार करे ॥ इसप्रकार बाह्य मंडलचतुष्ककी पूजाविधि जानना ।
“इसप्रकार” यह इंद्र पूजाविधि करके अनादि सिद्ध मंत्रको जपता हुआ ईशानवेदीको
पूजे ॥ २२७ ॥ “णमो” इत्यादि स्वाहातक अनाविस्मिद्ध मंत्र जानना ॥ इसतरह मल्लवेदी-

अष्टद्रादीन् क्षितिपुरवादिंस्तु देवीजयाद्या

न्यस्य द्वारेष्वनु च चतुरो यक्षदेवान् यजामि ॥ २२८ ॥

ईशानवेद्यां यागमंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ पूर्वविधिना कर्णिकांतःस्या-
धितार्त् परब्रह्मादिपूजां विधाय पद्मदलेष्वधौ श्यादिदेवीः पूजयेत् । तथाहि ।

याः सामानिकपर्पदंबुजपरीवारान्वया द्यूर्ध्वभू

पद्मादिहृदपुष्करैर्दुविशदमासादवासा मुदा ।

सेवंते बहुधा जिनेद्रजननीं श्यादीन्नयंत्यो गुणान

भाती पुष्पमुलैः करात्कलशैस्ताः श्यादिदेवीर्यजे ॥ २२९ ॥

श्यादिदेवीसमुदायपूजाविधानाय पत्राष्टके कुंकुमालुलितपुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

की पूजाविधि हुई । अब उत्तरवेदीकी पूजा कहते हैं । “वेद्यां” इत्यादि श्लोक पढ़कर ई-
शानवेदीमें यागमंडलकी पूजा करनेके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २२८ ॥ अब पहले कहीं
हुई विधिके अनुसार कर्णिकाके मध्यमें स्थापित अरुंदत आदि परमेष्ठीकी पूजा करके आठ
कमलपत्रोंपर श्री आदि आठ देवियोंकी पूजा करे । उसीको कहते हैं । “थाःसामा” इत्यादि
श्लोक बोलकर श्रीआदि देवीयोंके समूहकी पूजा करनेके लिये आठ पत्तोंपर केशरसे
लेपे हुए पुष्पअक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २२९ ॥ अब जुदी जुदी पूजा कहते हैं । “श्याद्याः”

श्रद्धाः संशब्दे युष्मानयात सपरिच्छदाः। अत्रोपाधि शैता नो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ २३० ॥

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूनाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

क्षीणया पार्श्वतर्तेद्रकार्मुकताडिदं द्युतिं तन्वतो

हिम्याद्रेरुपरित्यमुज्ज्वलयतः पद्महृदं पुष्करात् ।

यत्यद्रव्यवरैः सुरालहृदतैर्गर्भं विशोध्य श्रियं

तन्वाना जिनमातरं भजति या सा श्रीस्तद्विद्भ्राज्यते ॥ २३१ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते श्रीदेवि आगच्छागच्छ इदं जलं..... ।

नानारत्नमयूखपार्श्वखचितक्षीरादेवेकाक्षिपो

मूर्ध्न्युल्लसतो महाहिमवतः पद्यान् महापद्मिके ।

संविद्बालसखीशुपेत्य विनयालज्जां दशोर्व्यजती

यार्हन्मातुरुपासनां वितनुते सा हीर्जपाभाबति ॥ २३२ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्तोंपर पुष्प और अक्षत क्षेपण करे ॥ २३० ॥ “क्षीण्या” इत्यादि तथा “ओं सुवर्ण” बोलकर श्रद्धेवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ २३१ ॥ “नानारत्न” इत्यादि तथा “ओं रत्न” इत्यादि बोलकर ही देवीको अर्घ चढावे ॥ २३२ ॥ “उद्यंतं” इत्यादि तथा “ओं

ओं रक्तवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते ह्रीदिवि इदं..... ।

उद्यतं सहस्रोभितो हरिधनुष्कीर्णो रविं सीकरे—

भूर्द्धोत्री निपथस्य च्चुचति महापद्मादपि उयायसी ।

कंजादेत्य त्रिगिच्छ एधितरुचैर्धैर्यं परं पुष्यती

या जैनां भजतेविकामुपहरे तां चीनवर्णां धृतिम् ॥ २३३ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते धृति देवि इदं..... ।

पाश्र्वोद्भासिविचित्ररत्नरुचिरां वैडूर्यगाम्नीं गदां

द्वीपेनेव धृतां पुनात्युपरिमे भीलाचलं नीरजात् ।

भातः केसरिणि अथैत्य विधिवद्या सज्जयंती स्तुतो

रुक्माभा वरिवस्यतीशजननीं तां कीर्तिमर्चाम्यहम् ॥ २३४ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते कीर्तिदेवि इदं..... ।

भास्वद्भक्तिविचित्रितोयवपुर्भागैद्रनागप्रती—

क्षिण्णो रुक्मिणिरैर्महांतमृपरित्यं पुंडरीकं श्रितात् ।

“ओ” इत्यादि षोडशकलशहस्ते च्चुचति देवीको जलादि च्चढावे ॥ २३३ ॥ “पाश्र्वो” इत्यादि तथा “ओ”

“ओ” इत्यादि षोडशकलशहस्ते च्चुचति देवीको अर्थ च्चढावे ॥ २३४ ॥ “भास्वद्भ” इत्यादि तथा “ओ”

“ओ” इत्यादि षोडशकलशहस्ते च्चुचति देवीको जलादि च्चढावे ॥ २३५ ॥ “रत्नांशु” इत्यादि तथा “ओ”

याब्जादेत्य हिरण्यरुक्परिचरत्यर्हत्सवित्रीं जग—

श्लोभं कंदलयंत्यलं वलिमहं तस्यै ददे बुद्धये ॥ २३५ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते बुद्धिदेवि इदं..... ।

रत्नांशुच्छुरितोभयांतकनकश्रोणीं ध्रुवगस्निहः

रज्जुर्वाणमधित्यकां शिखरिणो यत्पुंहरिकं श्रिया ।

आवध्याति ततोबुजादुपरतावायै भवोद्भासिनी

भर्माभा जुषतेविकां जिनपतेर्लक्ष्मीं यजे तामहम् ॥ २३६ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते लक्ष्मी देवि इदं..... ।

दृश्यादश्यवपुर्भिरस्फुटशची साक्षात्सुखं श्यादिभि—

स्तत्तन्मंगलधारणादिविधिभिर्देव्या यदुद्भाव्यते

तत्प्रत्यूहवह्निष्कृतं विदधती तस्या मनोनिर्घृति

कांचित्कांचनकांतिरुत्किरति या शान्तिर्मया सार्च्यते ॥ २३७ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शान्ति देवि इदं..... ।

सु” इत्यादि बोलकर लक्ष्मीदेवीको अर्घ्य चढ़ावे ॥ २३६ ॥ “दृश्यादश्य” इत्यादि तथा “ओं
सु” इत्यादि बोलकर शान्तिदेवीको जलादि चढ़ावे ॥ २३७ ॥ “संकांते” इत्यादि तथा “ओं

संक्रांतेषु यथासुखीनवलवकुक्षि जिनाध्यासितं
विभ्रतयावपुषीश्वरे गुणगणे भोगेषु भक्तेषु च ।

देव्याः पुष्टिमनुक्षणं प्रगुणयंत्यन्यासु या स्तभ्यते

गंगियांगरुगर्हतीर्हति महे सा पुष्टिरिष्टिं न काम् ॥ २३८ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते पुष्टिवि इदं ।

इत्यैष्टता दिक्कुमारीर्जिनांवापरिचारिकाः । प्रसाद्य हविषां पूर्णाः पूर्णाहुत्यो विदध्महे ॥२३९॥

पुर्णाहुतिः ।

एवं संभाविताः कर्तुर्जिनजन्ममहोत्सवम् । श्रीसुख्यदेवतास्वष्टास्तुष्टये संतु यज्वनाम् ॥२४०॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । एवं श्यादिदेवीरम्यर्च्यं दिक्पालादीन् पूर्ववत्क्रमेण पूजयेत् ।

इत्युत्तरवेदिकार्चनविधानम् ।

एतिष्यादिति यागमंडलमहं निर्वर्त्य वेदीविधिं

चिद्वृत्यं शुभभावसंपतिपरां निर्माप्य भव्यात्मनाम् ।

सु” इत्यादि बोलकर पुष्टि देविको जलादि चढावे ॥ २३८ ॥ “इत्यष्टै” इत्यादि श्लोक बोल-
कर पूर्णार्धि चढावे ॥ २३९ ॥ “एव” इत्यादि श्लोक बोलकर इष्ट वस्तुकी प्रार्थनाकालिये
पुष्पांका क्षेपण करे ॥ २४० ॥ इसप्रकार श्री आदि देवियोंको पूजकर दिक्क पालोंको पूर्व क-

दृष्ट्वामृश्य च सर्वथाः प्रतिकृतीराशाधरोत्तश्चरत्-
कीर्तिः सोत्तरसाधकोनुरहसं गच्छेत्पुरा कर्मणे ॥ २४१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पपरनाम्नि यागमंडलपूजाविधानीयो नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दे दुष्ट क्रमसे पूजे । इस तरह उत्तर वेदीकी पूजा विधि हुई । मैने (आशाधरने) यह वेदी-
का विधान शास्त्रके अनुसार कहा है । जो कोई इस विधीको जानकर और विचार कर क-
रेगा वह सुसुख भव्यजीव उत्तम सुखको अवश्य प्राप्त होगा ॥ २४१ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें यागमंड-
लकी पूजाविधी कहनेवाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



अथो विविक्तदेशस्थः प्रतिष्ठाचार्यकुंजरः । प्रतिष्ठाविधये कुर्यात् परिकर्मेदमाहृतः ॥ १ ॥
 प्रागेकां सुखसंचार्यां प्रातिहार्यादिशालिनीम् । पुरोधाय सुरम्यार्च्या प्रतिष्ठेयं निरूपयेत् ॥ २ ॥

शस्ताशस्तात्मभावाजितष्टपट्टजिनच्छेदहृत्परा यः

स्वर्गाच्छ्भ्रादथैत्य त्रिजगदुपकृतिव्यक्तिमाहात्म्यसंपत् ।

शक्राद्यैर्योतिरागादहमहमिकया सेव्यते सिद्धचर्षीशः

पश्यंत्यज्ञास्तदर्चां स्वचितमिह नये स्थाप्यतेर्हत्स तेभ्यः ॥ ३ ॥

अब चौथा अध्याय कहते हैं । याग मंडलकी पूजाके बाद उत्तम प्रतिष्ठाचार्य एकां-
 तस्थानमें प्रतिष्ठा विधिके लिये इस आगे कहेजानेवाली क्रियाको करे ॥ १ ॥ सबसे पहले
 एक प्रतिमाको लावे । जोकि अच्छीतरह अपनेपर चल सके, प्रातिहार्य आदि सहित हो
 और देखनेमें बहुत अच्छी हो ॥ २ ॥ “शस्ता” आदि श्लोकोंमें जैसा प्रतिमाका वर्णन कि-
 या है वैसी प्रतिमाको न्यायपूर्वक पैदा किये हुए द्रव्यसे बनवाकर प्रतिष्ठा कराते हैं वे

कल्याणैः श्रितभूतभाविसुनयत्रित्वौभयेः पंचभि-
श्चित्तं, वित्तमशेषमोहमथनाद्भासत्यविद्याभिदि ।

प्रत्यग्ज्योतिषि तीर्थकृत्वनियतं निर्बीजयोगे स्फुरद्
ध्यात्वाच्चां स्थिरचित्तक्षणाष्टकपदे यो क्षेत्रबीजाक्षरम् ॥ ४ ॥

द्रव्यैः स्वैः सुनयार्जितैर्जिनपतेर्विम्बं स्थिरं वा चलं
ये निर्माप्य यथागमं सुदृषदाद्यात्मात्मनान्येन वा ।

लभे बालगुनि लंभयंति तिलकं पश्यंति भक्त्या च ये
ते सर्वेपि महोदर्यात्तमुदयभव्यां लभंतेऽद्भुतम् ॥ ५ ॥

प्रतिष्ठेयनिरूपणा । अथ सकलीकरणम् । अत्रादावनेन मंत्रेण स्वहस्तौ पवित्रयेत् । ओं णमो
अरहंताणं णमो केवल्लिणे सुअंगदेवि पसत्थ हत्थेहिं हुं फद् स्वाहा । हस्तद्वयपवित्रकरणमंत्रः । ततः

मव्यजीव उत्तमपदको पाते हैं ॥ ३ । ४ । ५ । यह प्रतिमाका वर्णन हुआ । अब सकली-
करण क्रिया कहते हैं । उसमें पहले “ ओं णमो ” इत्यादि मंत्रसे अपने हाथ पवित्र करे ।
उसके बाद सुरभिसुद्धा धारण करके इस आगेकी पवित्र विद्याको सात बार चिंतवन करे । वह
विद्या “ ओं णमो ” से लेकर स्वाहा तक कही है । उसके बाद अंगन्यास करे ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

सुरभिश्चद्रां घृत्वा इमां शुचिविद्यां सप्तवारान् न्यसेत्। ओं गमो अरहंताणं गमो सिद्धाणं गमो आगा-
 समामीणं गमो विज्ञायाणं गमो सन्वोसाहिपत्ताणं गमो सयं बुद्धाणं गमो केवलिणे स्वाहा । इमा च ।
 ओ अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्वालासहस्राप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन हन क्षां
 क्षीं धु क्षौ क्षः क्षीरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं स्वाहा । शुचीकरणमंत्रौ । ततः सकलीकुर्यात् । ओं
 अं नमः सुहृदये, ओं सिं स्वाहा शिरसि, ओं आं वषट् शिखायां, ओं ओं धे धे कवचं, ओं सां-
 हूं फट् स्वाहा अर्हं, ओं हौं वषट् नयनयोः । पुनः ओं हा गमो अरहंताणं स्वाहा हृदये, ओं हीं
 गमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे, ओं हूं गमो आइरियाणं स्वाहा शिरोवक्षिणे, ओं हौं गमो उवज्झायाणं
 स्वाहा पश्चिमे, ओं ह्रः गमो लोण् सव्वसाहूणं स्वाहा नामे । पुनस्तान्येव पदानि ललाटे
 मूष्टि दक्षिणे पश्चिमे वामे चेति न्यसेत् । सकलीकरणमंत्रः । ततः ।

ओं “ उसहाइजिणं पणममि सया अमलो विरजो वरकप्पतरु ।
 सवकामदुहा मम रक्ख सदा पुरु विज्जणही पुरु विज्जणिही ॥ ६ ॥

“ओं” इत्यादि पहला मंत्र बोलकर हृदय स्थानको स्पर्श करे । दूसरेसे मस्तकको, तीसरेसे
 चौथीको चौथेसे कवचको पांचवेंसे अस्त्रको. और छठेमंत्रसे नेत्रोंको छुए । अथवा “ओं हीं”
 इत्यादि पहले मंत्रसे हृदयका स्पर्श करे, दूसरेसे मस्तकका, तीसरेसे शिरके द्वाहिनी तरफका,
 चौथेसे पश्चिमकी तरफका, पांचवेंसे बाईं तरफका स्पर्श करे । चर्चिं पर्वोंको बोलकर मस्त-

ओं “ अष्टव यं अष्टसया अष्टसहस्रा य अष्टकोडीओ ।
रखवंतु ते सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा ॥ ७ ॥ स्वाहा ।

अनेन स्वस्यांगप्रत्यंगपरामर्शः कार्यः । ततः ओं धनु धनु महाधनु । स्वाहा । इमां धनुर्विद्यां
वामकरांगुल्लिपर्वसु विन्यस्य प्रतिमात्रे वामपादांगुष्ठेन सरेफायपुरस्सरं धनुरालिख्य वामपादेनाक्रम्य कायो-
त्सोंण स्थितः सन् ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए
सत्त्वसाहूणं थंभेइ जल जलण च्चित्तिथमित्तेण पंचणमोकारो अरि मारि चोर राउल बोरुवसग्गं हां ह्रीं
हं ह्रीं इः विणासेइ स्वाहा । इदं सप्तवारान् हृद्युच्चार्य अष्टोत्तरशतं धनुर्विद्यामावर्तयेत् । इति सक-
लीकरण विधानं । अथ प्रतिष्ठा ।

कके वक्षिण पश्चिम और बाँधे मागमें स्थापन करे ॥ यह सकलीकरण मंत्रकी क्रिया हुई ।
उसके बाद छठे सातवें दो लोकसंत्र पढकर अपने अंग उपांगोंको छुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके
पीछे “ ओं धनु” इत्यादि धनुपविद्याको बाँधें हाथकी उंगलियोंके पोरुओंमें स्थापनकर प्रति-
भाके आगे बाँधे पैरके अंगुठेसे रेफ सहित वाणयुक्त धनुषको लिखकर बाँधे पैरसे आच्छा-
दितकर सद्रासनसे “ओं णमो” इत्यादि स्वाहा पर्यंत मंत्रको सातवार मनमें बोलकर एकसौ
बार धनुषमंत्रको जापे । इसतरह सकलीकरण कियाका कथन किया । अब प्रतिष्ठा क-
रनेकी विधि कहने लगे—सकलीकरणविधि कर्म करनेके बाद प्रतिष्ठाचार्य धेकीके प्रथमसिंहासनके

कृतकर्माधुनावेदीं प्राञ्च्यर्षिठाग्रभृतले । इह गंधार्जुसंसेकसत्पुष्पप्रकारार्चिते ॥ ८ ॥
भद्रासनं निवेश्यात्र चित्रकर्मसमक्षतः । गर्भावतारकल्याणं स्थापयापीदमर्हताम् ॥ ९ ॥

ओं मूलवेद्याः पूर्वस्यां दिशि जयाद्विर्षिठस्य पुरस्ताद्भद्रासनं निवेशयामीति स्याहा ।
भद्रासननिवेशनम् ।

वंशसायिकदृक्साभिद्धसुधियां योस्मिन्मनूनामभ्र-
द्ये चेक्ष्वाकुसुग्रनाथहरियुग्वंशाः पुरोवेधसा ।
आधानादिर्विधिप्रबंधमहिताः स्रष्टास्तदुत्थार्यभ्र-
भर्तृस्वामिकजीविता सुकुलजा जैन्यो जयंत्यंजिकाः ॥ १० ॥

मृत्यादित्रयदृग्विशुद्धयनुगचित्सत्कर्मणो आगम-
द्रव्यो गोतमगोत्रभागभिजनो नेमिस्तथा सुव्रतः ।
तद्दत्कार्यपगोत्रिणस्तदितरे णोकर्मनो आगम-
द्रव्योद्येष्वभवन स्वयं यदुदरेष्वंवाः प्रसीदंतु ताः ॥ ११ ॥

आगेकी जगहको गंधोवकसे छिडककर पुष्पोंको क्षेपण कर उस जगह पर कारीगरके सामने
उत्तम सिंहासन रखे और “में अर्हत्प्रभुका गर्भकल्याणक स्थापन करता हूँ” ऐसा कहे ।
उस समय “ओं मूल ” इत्यादि मंत्र बोलना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ “वंश ” इत्यादि दो श्लोक
बोलकर जिनमाताओंकी स्तुती करे ॥ १० ॥ ११ ॥ अब जिनमाताओंके नाम कहते है ;—

मरुदेवीं वृषस्यांबा विजयामजितस्य च । सुषेणां संभवेत्तस्य सिद्धार्थो नंदनप्रभोः ॥१२॥
 सुमंगलाब्दां सुमतेः सुसीमां पद्मरोचिषः । वसुंधरां सुपार्श्वस्य लक्ष्मणां चंद्रलक्ष्मणः ॥१३॥
 रामां श्रीपुष्पदंतस्य सुनंदां शीतलाहृतः । विष्णुश्रियं श्रेयसश्च वासुपूज्यप्रभोजयाम् ॥१४॥
 सुशर्मलक्ष्मीं विमलाहृतोऽन्तस्य सुव्रताम् । ऐरिणीं धर्मनाथस्य कमलां शान्त्यधीशिनः १५
 सुमित्रां कुंथुनाथस्य अरभर्तुः प्रभावतीम् । मल्लैः पद्मावतीं वप्रां सुव्रतस्य युनीशिनः ॥१६॥
 विनतां नमिनाथस्य शिवां नेमिजिनेशिनः । देवदत्तां च पार्श्वस्य वीरस्य भियकारिणीम् ॥१७॥
 चतुर्विंशतिमप्येताः सवित्रीस्तीर्थकारिणाम् । स्थापयामीह तद्गर्भपवित्रितजगन्मयाः ॥ १८ ॥

ऋपभनाथकी मरुदेवी अजितकी विजया, संभव नाथकी सुषेणा, अभिनवनकी सिद्धार्था,
 सुमतिजिनकी सुमंगला, पद्मप्रभकी सुसीमा, सुपार्श्वकी वसुंधरा, चंद्रप्रभकी लक्ष्मणा, पुष्पदंत-
 ॥१३॥१४॥ विमलनाथकी सुशर्मलक्ष्मी, अनंतनाथकी सुव्रता, धर्मनाथकी ऐरिणी, शान्तिना-
 थकी कमला, कुंथुनाथकी सुमित्रा, अरनाथकी प्रभावती, मल्लिनाथकी पद्मावती, सुव्रतप्रभुकी
 जगत् करुता द्वे । इन्दीके गर्भसे तीन जगत पवित्र होता है । १५१६१७१८ ॥ “ ओ ”

ओं मरुदेव्यादितिनेन्द्रमातरोत्र सुप्रतिष्ठिता भवंत्विति स्वाहा । जिनमातृस्थापनार्थं भद्रपीठस्यो-
परि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

पण्मासान् भुवेष्यतां नवदिवश्चाजग्युपामर्हतां
पित्रोः सौधमपीद्धमुष्टजति या रेदो महेंद्राज्ञया ।
स्वर्णां गावधुतामरद्गुमफलासारभ्रमं कुर्वतीं

व्यजुं तामिहः त्नष्टिमुचितं मुंचामि पुण्योच्चयम् ॥ १९ ॥

ओं वनाधिपते अर्हतिपतासौधे रत्नवृष्टिं मुंच मुंचेति स्वाहा । कनकशालका रत्नपंचकविमि-
श्रचित्रकुसुमाजलिं भद्रपीठस्याग्रतः प्रकिरेत् । रत्नवृष्टिस्थापनं ।

सर्वर्तुकामिवरवल्लफलप्रसूनशय्यासनाशनविलेपनमंडनानि ।
तत्तत्क्रियोपकरणानि तथेप्सितानि तथैभशातुरुपदीक्षुरतां धनेशः ॥ २० ॥

इत्यादि बोलकर जिनमाताओंकी स्थापनाके लिये सिंहासनके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे ।
“पण्मासान्” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर सोनेकी सलाई पांच तरहके रत्न—
“सर्वर्तु” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर उत्तम कपड़े अंगूठी द्वार फल पत्र पुष्प
आदिको सिंहासनके आगे रखे । इन सब वस्तुओंको शिल्पी ग्रहणकरे ॥ २० ॥ उसके बाद

ओं निधीश्वर जिनेश्वरमात्रे भोगोपभोगान्पुनयोपनयेति स्वाहा । चारुवल्त्रमुद्रिकाहारफल-
पत्रपुष्पादिकं पीठान्ने प्रतिष्ठयेत् । तच्च सर्वं विश्वकर्मा गृह्णीयात् ।

माताको सोलह स्वर्गोंका देखना गर्जता हुआ सफेद ऐरावत हाथी १ बैल २ सिंह ३ देव हस्तियोंसे
खान कराई गई लक्ष्मी ४ लटकती दो फूलोंकी मालायें ५ चांदनीयुक्त पूर्णचंद्रमा ६ ऊगता हुआ
सूर्य ७ कमलोंसे ढके हुए सुवर्णमई कलशे ८ सरोवरमें क्रीडा करता मछलियोंका जोड़ा
९ दिव्य सरोवर १० चंचल लहरोंवाला समुद्र ११ रत्नजड़ा सिंहासन १२ मणियोंसे जड़ित
विमान १३ नागेंद्रका भवन १४ प्रकाशमानरत्नोंकी राशि १५ धूमरहित जलती हुए अग्नि
१६-थे सोलह स्वर्ग हैं इनको देखकर माताको जगना । उसके बाद अपने पतिसे स्वर्गोंका
फल सुनना । वह इस तरह है—पहले स्वर्गमें सफेद ऐरावत हाथी देखनेसे उत्तम पुत्रका
होना, बैलके देखनेसे तीन लोकका गुरु होना, सिंह देखनेसे अनंत बलसहित होना, स्नान
कराई गई लक्ष्मीके देखनेसे इंद्रोंकर सुमेरु पर्वतपर अभिषेक होना, पुष्पमाला देखनेसे
धर्मतीर्थका प्रवर्तक होना, पूर्णचंद्रमा देखनेसे संसारको आनंदित करना, सूर्यके देखनेसे
तेजस्वी होना, दो सुवर्णके बड़े देखनेसे रत्नादिकी खानिका स्वामी होना, मछलियोंका
जोड़ा देखनेसे बहुत सुखी होना, सरोवर (तालाब) देखनेसे शुभलक्षणों सहित होना,
समुद्रके देखनेसे कैवल्यज्ञानी होना, सिंहासनके देखनेसे बड़े भारी राज्यका अधिकारी
होना, विमान देखनेसे स्वर्गसे आकर जन्म होना, नागेंद्रका भवन देखनेसे अवाधिज्ञानी

मंद्रं गर्जतमैन्द्रं द्विपशुडुपशयं तत्सगंधं गवेंद्रं
 सिंहं शैलेन दंतं जलरुहि कमलां स्नाप्यमानां सुरेभैः ।
 दात्री खे लंबमाने भ्रमदलिपटले चंद्रिकाकीर्णदिकं
 चंद्रं प्रद्योतमर्कं सरसि श्रपयुगं क्रीडदन्योन्यरक्तम् ॥ २१ ॥
 कुंभौ हेमौ सुधाद्यौ स्फुटकमलमुखौ छन्नमच्छापसरोब्जै-
 अंचद्रत्नोर्षिमित्रि तडिदुचितमरुच्चापजित्सिहपीठम् ।
 कांत्यान्योन्यं हसंत्या सुरफणिमदने द्यां करै रंजयंतं
 रत्नौघं प्रज्वलंतं ज्वलनमपि निशातुर्ययोमे द्विरष्टौ ॥ २२ ॥
 स्वस्मान् दृष्ट्वा प्रबुद्धां श्रुतिं घटितमुच्छृण्वती तुर्यनादान्
 पत्युः प्रीताचदुक्त्या सुतनु सुतमिभस्ते स तादृग्महांतम् ।
 ज्ञते विश्वाग्रिमं गौः करिकुलकषितानंतवीर्यं रमेद्रै-
 भैरी स्नाप्य द्विमालं वृषसमयकरगडौः प्रजाह्लादहेतुम् ॥ २३ ॥
 भास्वान् दीप्रं विशारिद्वयमतिमुखिनं कुंभयुगं निधीशं
 कासारो लक्ष्मसारं परविदुदधिधिष्टरं प्राज्यराज्यम् ।

होना, रत्तराशिके देखनेसे अनेक गुणोंका खजाना होना, निर्धुम अश्रिके देखनेसे कर्मरूपी
 इंधनका जलाना—ये स्वर्गोंको फल है ॥ २१ । २२ । २३ ॥ स्वर्गोंको देखना स्थापन

घरेतारं सुरौकः फणिगृहमवाधिज्ञानिनं सद्गुणाब्धि
रत्नौघोदोन्नमग्निः स्तमितिविदितसत्फलैषार्हदंवा ॥ २४ ॥

पोडश सत्पुष्पाणि तावत्येव च सत्फलानि परिवर्त्य पीठाग्रतः स्थापयेत् । स्वप्नावलोकन-
स्थापनम् ।

श्री ही धृते कीर्तिपती च लक्ष्मि शक्ति च पुष्टे च सहैत्य जिष्णोः ।
आज्ञानियोगेन तथा स्वभक्त्या पित्रे निवेद्यात्तदभ्यनुज्ञाः ॥ २५ ॥

विशोध्य गर्भं सुपवित्रदिव्यद्रव्यैर्यथास्थाननियोगेनाम् ।
सुभक्त्या गूढप्रपास्यमानां श्रद्धया भजध्वं पुरुदिक्कुमार्यः ॥ २६ ॥

ओं दिक्कुमार्यो जिनमातरपुपेल्य परिचरत परिचरतेति स्वाहा । सद्ब्रह्मालंकारा अष्टौ वरकुमा-

रिभगवतांचूलहस्ताः संनिधाप्य पीठं पारतिः सकुंकुमरंजितपुष्पाक्षतं क्षिपेत् । गर्भशोधनपूर्ववादिक्कुमारी-
परिचर्यास्थापनं ।

करनेकेलिये सोलह उत्तम पुष्पोंको तथा सोलह उत्तम फलोंको सिंहासनके आगे स्थापन
करे । श्री ही धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी शांति पुष्टि—इन देवियोंकर गर्भ शोधन करना ॥
२५ । २६ ॥ आठ कुमारी कन्यायें स्वच्छ वस्त्र आभूषणोंको पहनके हाथमें फल आदि सं-
गठित कर लेंकर सिंहासनके साम आके केसर मिले हुए पुष्प अक्षतोंको छिपण करे । २७

सर्वौषधिचंदनपंचमृद्धिर्विलिप्य तीर्थोदकपंचकेन ।

विशोध्य पीठं जिनमञ्जगर्भं गर्भोपमेस्मिन्नवतारयामि ॥ २७ ॥

तामेव रहासि पुरा निरूपितप्रतिष्ठेयामहत्प्रतिमां नूतनसितनसितसिद्धब्रह्मच्छादितान्
किकाकरविश्वकर्मसौधमेन्द्रौ महोत्सवेनानीय सुविशुद्धमद्रासनगर्भपद्मे निवेशयेतां ।

पुरस्सरैः

यो गंगाबुसुरत्नपुष्पकृतभूपस्कारार्मिद्रासन—

द्रकूपं प्रमदाकुलीकृतजगद्गर्भं प्रविश्योत्तमे ।

लग्ने वामतिरंजयन् रत्रिरिह प्राची पराग्रह-

ग्राह्येद्यद्भृतिवर्द्धतेस्म सुदृशां सोऽयं जिनस्तन्मुदे ॥ २८ ॥

ओं णमोर्हते केवलिने परमयोगिने शुक्लध्यानशिनिर्दग्धकर्मन्धनाय सौम्याय शांताय वरदाय

ह गर्भशोधन और दिक्कारियोंकी सेवाविधि स्थापन कीजाती है । सर्वौषधि चंदन आविसे सिंहासनको पवित्र करके कारीगर और सौधमेन्द्र दोनों उत्तम वस्त्रसे ढकी हुई प्रतिष्ठेय प्रतिमाको महान उच्छवके साथ लाकर शुद्ध सिंहासनके भीतर कमलपत्रमें स्थापित करें ॥ २७ ॥ उसके वाक् “ यो गंगां ” इत्यादि तथा “ ओणमो ” इत्यादि बोलकर कुंकुसे रंगे हुए चमेलीके पुष्प तथा अक्षतोंको मूलनाथक और दूसरी प्रतिमाओंके ऊपर क्षेपण करें ॥ २८ ॥ गर्भावतार विधि कहते हैं । “ दृक् ” इत्यादि दो श्लोक बोलकर

अष्टादशदोषविवर्जिताय स्वाहा । जात्यकुंकुमर्पिजरितिजातिपुष्पाक्षतं तस्या अन्यासा च प्रतिष्ठेयमाना-
नामुपरि क्षिपेत् । गर्भावतारणं ।

दृक्शुद्ध्यादिविशेषवद्धसुकृतस्कंधेग्रसर्गांगिक-
स्फूर्जच्छुष्मणि विदवकर्माणि निजव्यापारयोग्यं वपुः ।
स्रष्टुमस्तभरस्त्रिवोधरुचिभागास्येन योर्काब्दवद्
गर्भं मातुरिभाकृतिर्वसति वै सोत्रावतीर्णः प्रभुः ॥ २९ ॥
इत्युक्त्वा प्रणतामहचरिकया निर्दिश्यमाना पृथक्
स्थानारुष्यादिभिदा जिनेद्रजननीमभ्यर्च्य नुत्वा स्फुटं ।
नाथं पत्रशुदाभिनीय पितरं चापृच्छथ जग्मुः पदं
स्वं शक्राः स जयत्ययं जिनपतेर्गर्भावतारोत्सवः ॥ ३० ॥

जिनमातृपूजनार्थं मद्रासनगर्भनिवेशितप्रतिमात्रे पुष्पांजलि क्षिपेत् ।
अथैतैः सिद्धचारित्रशांतिभक्तिभिरादरात् । गर्भावतारकल्याणक्रिया तत्यास सूरिभिः ॥ ३१ ॥

जिनमाताके पूजनके लिये सिंहासन (भद्रासन) में स्थापित प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि
क्षेपण करे ॥ २९,३० ॥ उसके बाद वे ईंद्र सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति शांतिभक्ति-इन तीनोंको
करके गर्भावतार कल्याणकी समाप्ति करे ॥ ३१ ॥ इस तरह गर्भावतार कल्याणककी चिन्धि

इति गर्भावतारकल्याणस्थापना । अथ जन्मकल्याणस्थापना ।

देवानां नमयन् शिरांसि समनांस्याकंपयन्नासना-
न्यभ्रं निर्मलयन् सदिक्सुमनसो देवदुर्भैर्वर्षयन् ।
जन्यन् शीतसुगंधिमंदमनिलं यः सिंधुमुद्वेल-

ब्राधुन्वन् स धराधरां च निरगात् कुक्षेः शुभेहोषसः ॥ ३२ ॥
वक्ष्यापनयनम् ।

किं तां सवित्रीमिह वर्णयामि किं चर्चये कथमथास्पदं तत् ।
यदेष देवो भुवनत्रयैकगुरुः स्वयं स्वप्नसवेधिचक्रे ॥ ३३ ॥
पुण्याहमद्याद्य मनोरथा नः पूर्णां जगंत्यद्य सनायकानि ।
प्रमोदते कोद्य न चेतनोस्मिन्नृजेपि जन्मांत्यमिदं प्रपन्ने ॥ ३४ ॥

जिनजन्मस्थापनाय तस्या अन्यासां च प्रतिष्ठेयप्रतिमानामुपरि पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

पूर्णं छुरै । अब जन्मकल्याणककी स्थापना कहते हैं । “ देवानां ” इत्यादि श्लोक पढकर बखको अलग कर देना ॥ ३२ ॥ “ किं तां ” इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिन भगवानके जन्मकी स्थापना करनेके लिये मूलप्रतिमा तथा अन्य प्रतिष्ठेय प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३३।३४ ॥ पसेवरहित शरीर १ मलरहित शरीर २ सम चतुरस्र

निःस्वेदत्वमनारतं विमलता संस्थानमाद्यं शुभं
 तद्वत्संहननं मृशं सुरभिता सौरूप्यसुत्तैः परम् ।
 सौलक्षण्यमनंतवीर्यसुदितिः पथ्याप्रियासुख्य यः
 शुभ्रं चातिशया दशेह सहजाः संत्वर्हदंगानुगाः ॥ ३५ ॥

सनव्यंजनशतैरष्टाशतलक्षणैः । विचित्रं जगदानंदि यज्जिनर्गं तदस्त्विदं ॥ ३६ ॥

सहजदशातिशयस्थापनार्थं प्रतिभोपरि दशपुष्पीमावेयत ।

भृंगाराब्दातपत्रोज्ज्वलचमररुहाण्युद्धहंत्योष्ट्रशो या
 द्वात्रिंशद्विक्रुमार्यो जिनजनुषि भजंत्यंविकायाश्चतस्रः ।

संस्थान ३ वचस्पृपमनाराच संहनन ४ सुगंधमय शरीर ५ अत्यंत सुंदर शरीर ६ शुभ एक
 एजार आठ लक्षणवाला शरीर ७ अतुल बल ८ हितमित वचन ९ बुद्धके समान सफेद लोह
 नौसी व्यंजन और एकसी आठ लक्षण सहित होता है वह यही है ॥ ३५ ॥ जिनेंद्रका शरीर
 स्वभावसे उत्पन्न वृश अतिशयोक्ती स्थापनाकेलिये प्रतिमाके ऊपर दस पुष्प रले । “भृंगारा”
 प्रायादि तथा “ओ गन्धक” इत्यादि कठकर भद्रासनपर विराजमान प्रतिमाके चारों
 तरफ कुम्भेर्गि द्वार पूज्य अक्षतोंको दक्षिणे ॥ ३७ ॥ यह विज्यानि वेद्यताओंका स्तकार स्थापन

नेहं विद्युत्कुमार्यो रुचकवरनगाग्रास्पदा द्योतयंते
या चाष्टौ जातकर्मा दधति तदद्युगास्ताः स्फुरंस्त्वत्र धरन्याः ॥ ३७ ॥
ओं रुचकवरगिरीन्द्रशिखरनिवासिन्यो विजयादिदेव्यो यथास्वमर्हत्प्रमुमिहेदानीं परिचरत्विति
स्वाहा । पीठस्थप्रतिमां सर्वतः कुंकुमरंजितपुष्पाक्षतं विकिरेत् । विजयादिदेवतोपास्तिस्थापनं ।

दिव्यद्रव्यविशुद्ध एव जवरे यो रत्नदृष्टिं क्षण—
प्रीतायाः पयसीव पव्यमवसन्मालुः स्वयं शुद्धिमान् ।
यन्नामापि विशुद्धयेस्ति जगतौ ध्यायंति यं योगिन—
स्तस्याप्याकरशुद्धिमप विधिरित्यातन्वतां देवताः ॥ ३८ ॥
आकरशुद्धिविधानख्यापनार्थं तीर्थोदकाप्लुतपुष्पणि प्रतिमोपरि निद्वध्यात् ।

घंटासिंहासनकजलरुहां निःस्वनैरेदोस्त्रै—

ज्ञात्वातुल्यजिनजनिमुपेत्योच्चकैः स्वस्वभूत्या ।

किया । “ दिव्य ” इत्यादि श्लोक पढकर आकरशुद्धिकी विधि दिखलनेकेलिए तीर्थ
जलसे धोये हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥ ३८ ॥ “ घंटा ” इत्यादि श्लोक
बोलकर इंद्र और यजमान आदिकोंके ऊपर उन अशुक नामवाले इंद्रादि भावोंको स्थापनके-
लिए सौधर्म प्रतिष्ठाचार्य पुष्प और अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३९ ॥ उसके बाद “ अर्थ ”

कल्पज्योतिर्वनभवनगीर्वाणनाथाः स्वयं यत्
तत्कल्याणं यधुराभिनयत्यत्रतं नाम तेमी ॥ ३९ ॥
इन्द्रयजमानादिषु तत्तदिन्द्रादिभावस्थायनाय सौधर्मः पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अयं शच्या गुप्तं कृतवति सुतिं छत्रशयना—
त्रिमील्यांवा मायातनयमुपहृत्यार्हति ते ।
समांगलयश्च्यदित्रजमनुव्रजंत्याक्षिकरणीः
शिरो निधानाद्यैः सकलयति सेंद्रोभ्रगगजः ॥ ४० ॥

इन्द्राण्या भद्रासनादुद्धृत्य समर्थमाणां प्रतिमां जय जयेति वदन् प्रणतिशिराः करकमलाभ्यां
गृहीत्वा सर्वसंन्यसमन्वित इमानि वृत्तानि पठन्नुत्तरवेदीं नीत्वा जन्माभिवेकोत्सवाय स्नपनपीठे निवेशयेत् ।
यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोके विधृतातपत्रः ।
ईशानशकेण सनत्कुमारमोहेंद्रसच्चारमवीज्यमानः ॥ ४१ ॥

इत्यादि श्लोक धोलकर इन्द्राणी भद्रासनसे प्रतिमाको उठाकर जय जय शब्द करती हुई
मस्तक नयाकर हस्तकमलोंपर रखती हुई सब जनसंघके साथ आगे कहे जानेवाले
श्लोकांको पढ़ती हुई उत्तर वेदीपर ले जाकर जन्माभिवेक उत्सव करनेके लिए स्नान करनेके
आमनपत्र रखे ॥ ४० ॥ फिर “ यः श्री ” इत्यादि आठ श्लोकांको तथा “ ओं श्री ” इत्यादि

शच्यादिभिः श्यादिभिरप्युदारं देवीभिरात्तोज्ज्वलमंगलाभिः ।
 पुरस्सरंतीभिरिवाप्सरोभिरग्रे नटंतीभिरुपास्यमानः ॥ ४२ ॥
 शेषैस्तु शकैर्जय जीव नंद प्रसीद श्वश्वत्पतप क्षिपार्त्नि ।
 इत्यादि वागुत्वणितप्रमोहैर्मुहुः प्रमूनैरुपहार्यमाणः ॥ ४३ ॥
 सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योल्लुतवालितानि ।
 समंगलाशीर्धवल्स्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणा ॥ ४४ ॥
 अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्वपीक्ष्यः ।
 यः सैप साक्षाद्भ्रुवमीक्षितोर्हन्नभेद्यनादिः स्वयमात्मबंधः ॥ ४५ ॥
 सविस्मयानंदमिति ब्रुवाणैरालोक्यमानोभिमुखगतैः खे ।
 देवार्षिभिः स्पर्धितदेवयुग्मं नभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥ ४६ ॥
 प्रदाक्षिणाध्वव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि मेरुशृंगम् ।
 निवेश्य तत्रत्यशिलोद्यपीठे क्षीरोदनीरैः स्त्रपितः सुरेन्द्रैः ॥ ४७ ॥
 तं देवदेवं जिनमद्य जातं शय्यास्थितं लोकपितामहत्वम् ।
 इमं निवेश्योत्तरेदिपीठे प्राग्वक्क्रमस्मिन् विधिनाभिषिचे ॥ ४८ ॥

बोलकर पांडुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ४१४२१४३१४४१४५१४६१४७
 ४८ ॥ उसके वाद आकर शुद्धिके अभिषेक स्वरूप जन्मभिषेकको दिखलाते हैं । “ रत्न ”

ओं ह्रीं अहं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह पांडुकशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठेति स्वाहा । उत्तरवे-
दिकालापनपीठे प्रतिमानिवेशनमंत्रः । अथातः आकरशुद्धयभिषेकरूपेण जन्माभिषेकमनुक्रमिष्यामः ।

रत्नस्वर्णमयोत्तरीयरसनासंव्यानमौलिप्रभै—

भैरुर्भाति वनैः सहस्रराहितं यो योजनान्युच्छ्रितः ।

लक्षं सोयभियं च पांडुकशिला दीर्घा शतं स्फाटिकी

साष्टी चार्धशतं तात्र सुरभिः श्रेष्टार्द्धचंद्राकृतिः ॥ ४९ ॥

सोत्रायं पृथुमंडपोद्भुपकृतो देव्योर्धहस्ता इमा—

स्तास्तान्याप्सरसाममूनि नटितान्यास्येतता योजनम् ।

निम्नाश्चाष्ट सुरैः पयोर्णवजलैर्भृत्वार्णमाणा इमे

ते कुंभाः स जिनोऽयमस्मि स हरिस्तत्काप्यहो संभृतिः ॥ ५० ॥

अभिषेकप्रकरणसज्जीकरणाय समंतात्पुष्पाक्षतं विकिरेत् । प्रस्तावना । ओं ऋपभादिदिव्य-
देहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनंतचतुष्टयाय परमसुखप्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपद-
प्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्ठिने अहंते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूज्याय अष्टदिव्यनगप्रपूजिताय देवाधिदे-

वत्यादि वी श्लोक कष्टकर अभिषेक आरंभकी तयारी करनेके लिये चारों तरफ पुष्प अक्षत
बखेरे ॥ ४९, ५० ॥ “ ओं ऋपभा ” रत्यादि “ स्वाहा ” तक मंत्र बोलकर प्रतिमाके अंग

वायं परमार्थसच्चिहितोस्मि स्वाहा । अनेन प्रतिमाया अंगप्रत्यंगानि परमामृशन् ससवारानमिमंभ्य
सकलीं कुर्यात् । ततो दशापि लोकपालानावाहनदिविधिनोपचरेत् । तथाहि ।

इंद्रा मिश्राब्देवा शरपतिवरुणाधारै देशनाग्रे धिष्णोशा दिक्षु वेद्या ? ॥५१॥
इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सराध्येषेणाय समस्तहव्यद्रव्यं जुहोमीति स्वाहा ।

अथ पृथग्भिक्तिः ।

दिगीशाः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान्वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥५२॥
दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अत्र रूप्याद्रिस्पर्द्धीत्यादि वृत्ताष्टकं प्रागुक्तमेव वक्ष्यमाणमंत्रोपेतं
प्रयुंजीत । तथाहि ।

उपांगोंको छुकर सातवार मंत्रितकर सकलीकरण क्रिया करे । उसके बाद दश लोकपालोंका
आवाहन आदि विधिसे सत्कार करे । वह इस तरहसे है—“ इंद्रा ” इत्यादि तथा “ इंद्रादि ”
बोलकर हवन करनेकी सामग्रीसे अवाहनादि पूर्वक इंद्रादिका सत्कार करे ॥ ५१ ॥ अब
वेदीपूजा कहते हैं । “ विगीशा ” इत्यादि श्लोक बोलकर दिशाओंमें पुष्प अक्षत
क्षेपण करे ॥ ५२ ॥ यहाँपर “ रूप्याद्रि ” इत्यादि पहले कहे हुए आठ श्लोकोंका मंत्र
पूर्वक प्रयोग करे । वह इस प्रकार है । “ रूप्याद्रि ” इत्यादि तथा “ हे इंद्र ” इत्यादि

रूप्यादि..... ॥ ५३ ॥

हे इंद्र आगच्छगच्छ इंद्राय स्वाहा, इंद्रपरिजनाय स्वाहा, इंद्रानुचराय स्वाहा; अग्नेये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सौमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा स्वः स्वाहा, ओं इंद्राय स्वर्गणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञ-
भागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

रुक्मारु..... ॥ ५४ ॥

हे अग्ने आगच्छगच्छ अग्नेये स्वाहा..... ।

कल्पांताः... ॥ ५५ ॥

हे यम आगच्छगच्छ यमाय स्वाहा..... ।

आरूढं..... ॥ ५६ ॥

हे नैऋत्य आगच्छगच्छ नैऋत्या स्वाहा..... ।

मंत्र बोलकर इंद्रको जल आवि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ५३ ॥ “ रुक्मारु ” इत्यादि तथा “ हे अग्ने ” इत्यादि बोलकर अश्वि कुमारदेवोंको जल आवि द्रव्य चढावे ॥ ५४ ॥ “ कल्पांता ” इत्यादि तथा “ हे यम ” इत्यादि बोलकर यमदेवको जल आवि चढावे ॥ ५५ ॥ “ आरूढं ” इत्यादि तथा “ हे नैऋत्य ” इत्यादि बोलकर नैऋत्य दिक्पालको अर्घ्य चढावे ॥ ५६ ॥

नित्यांभ ॥ ५७ ॥
 हे वरुण आगच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा..... ।
 वल्गच्छ ॥ ५८ ॥
 हे पवन आगच्छागच्छा पवनाय स्वाहा..... ।
 हंसौधे ॥ ५९ ॥
 हे धनदागच्छागच्छ धनदाय स्वाहा..... ।
 साक्षनावा ॥ ६० ॥
 हे ईशान आगच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा..... ।

वक्षौजस्तर्जिपृष्टश्वसनसमतरः कूर्मराजाधिरूढं
 शुद्रछीविभकुंभाक्रमणचणसृणिसफारणव्यग्रपाणिम् ।

“ नित्यांभ ” इत्यादि श्लोक तथा “ हे वरुण ” बोलकर वरुणको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५७ ॥ “ वल्गच्छं ” इत्यादि तथा “ हे पवन ” इत्यादि बोलकर पवन कुमारको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५८ ॥ “ हंसौधे ” इत्यादि तथा “ हे धनद ” इत्यादि बोलकर कुवेरको अर्थ चढावे ॥ ५९ ॥ “ साक्षनावा ” इत्यादि तथा “ हे ईशान ” इत्यादि बोलकर ईशानको जलआदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ६० ॥ “ वक्षौज ” इत्यादि तथा “ हे धरणेन्द्र ”

सां श्लिष्टं हृत्सहस्राद्वितव्यघृणिफणारत्नरुकुसवाक-
ब्रह्मौघ्यापीडमर्हच्छ्रितमहि यमधौर्चसि पद्मासेमतम् ॥ ६१ ॥

हे धरणेन्द्र आगच्छगच्छ धरणेन्द्राय स्वाहा..... ।

वैरिस्तवेरमास्रोच्छसदरुणसटाटोपशुभ्रांगभीकृ—

द्वालेंद्रुस्पादिदंष्ट्रोत्क्रमखरनखरारक्तहृक् सिंहसंस्थम् ।

कुंतास्त्रं रोहिणीष्टं कुवलयसुमनः स्रक् अत्रितां शंभयुक्तं

उयोत्तना पीयूषवर्षं यज यजनपरं सोममर्धं महामि ॥ ६२ ॥

हे सोम आगच्छगच्छ सोमाय स्वाहा..... ।

एवं सत्कृत्य दिक्पालानेभ्यो मंत्रैः पुनर्दे । अकुंठे सप्तत्राः सप्तधान्यमुष्टिभिराहुतिः ॥ ६३ ॥

ओं आं क्रौं इंद्राय स्वाहा । अनेन जलपूर्णकुंडे सप्तमे सप्तधान्यमुष्टिभिरिन्द्राहुतिं दद्यात् ।

इत्यादि बोलकर धरणेन्द्रको अर्घ्य चढावे ॥ ६१ ॥ “ वैरिस्तं ” इत्यादि तथा “ हे सोम ”

इत्यादि बोलकर सोम विक्पालको जलआदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ६२ ॥ “ एवं ” इत्यादि

तथा “ ओं आं ” इत्यादि बोलकर जलसे भरे हुए कुंडमें सातवार सात धान्योकी सुठी

भरकर आहुतियां दे ॥ ६३ ॥ इसीतरह अग्नि आहुतिके कुंडमेंभी जानना । उसके बाद फिर

पुत्रमन्यादिभ्योपि । अथ पुनस्तामेव प्रतिमां जिनमंत्रेण सप्तवारानभिर्मन्त्र्याकरशुद्धिं विदध्यात् । जिन-
मंत्रो यथा । ओं अर्हद्भ्यो नमः, पादानुसारिभ्यो नमः, कोष्ठशुद्धिभ्यो नमः, बीजशुद्धिभ्यो नमः ।
मानथानिभ्यो नमः, परमागधिभ्यो नमः, ओं ह्रीं वल्गु २ निवल्गु २ महाश्रवण । ओं ऋपभादिव-
र्धपानेभ्यो यपद् चैपद् स्वाहा ॥ अथाभियेकः ।

पूरं पूरमयस्तटावधिपयः सिंधोपसृत्त्यामरै—

ईस्तात्रस्तिकयापित्तैर्गैलुलनुक्ताफलस्रग्भरैः ।

श्रीखंडद्रवचर्चितैः परिदिनश्रीकर्मणा भर्मणात्

ऋर्णैः साष्टसहस्रमानकलितैः कुंभैः सिताब्जाननैः ॥ ६४ ॥

आनोषध्वनिगीतमंगलरवैः सहर्षहर्षद्युतां

देवानां नटदस्सरोगणवपुः श्रीभिश्च कीर्णवरे ।

पादर्वेन्द्रासनभासि पांडुकशिलासिंहासने प्राङ्मुखं

सौधर्भप्रमुखा निवेद्य जिनपं जन्मन्यसिचत् किल ॥ ६५ ॥

उत्थी प्रतिमाको जिनमंत्रसे सातवार मंत्रित करके आकरशुद्धि करे । वष्ट जिनमंत्र “ ओं
अर्ह ” यत्नासे लेकर “ स्वाहा ” तक है ॥ अत्र अभियेक वर्णन करते हैं । “ पूरं ” इत्यादि
तीन श्लोक पढ़कर कलशोंपर पुष्प अक्षत और जलको क्षेपण करे ॥ ६४।६५।६६ ॥ “गोवृत्तं”

धूलीपण्डवमंगलौषधिफलत्वग्मूलसर्वौषधी
संपृक्ताखिलतीर्थचारिसुभृतैर्मन्त्रातिपूतैः कुट्टैः ।
अष्टाभिः स्वपदे स्थितं स्थिर मुदा वेद्यांचलं चारु तद्
विवं चाकरशुद्धिसेचनमिदं तज्जातकर्मार्षये ॥ ६६ ॥
एतन्नयं पठित्वा कलशेषु पुष्पाक्षतोदकं क्षिपेत् ।
गोष्टदशंगतो गजपतेर्देतान्महातीर्थतः

शैलद्रा नृपतोरणादुरुसरिचौराच्च पद्माकरात् ।
आनीताभिरुपस्कृतेन शुचिभिर्मृद्भिः सुतीर्थोभसा
पूर्णेन स्नपयामि हेमकलशेनार्या जिनार्चां मुदा ॥ ६७ ॥

शिल्प्यादीन् संमान्य सूत्रधारेण धूलीकलशाभिषेकः । कुल्याभिषेकः ।
कुल्याभिः शुचिभिः सतोः स्वसुरपो पित्रोश्च पत्यात्मजैः
संयुक्ताभिरश्लिपकाभिरनिशं सक्ताभिरहन्मते ।

इत्यादि बोलकर कारीगर आदिका सत्कार करके शुद्धवाह्य आदिसे अभिषेक करे ॥ ६७ ॥
“ कुल्याभिः ” इत्यादि बोलकर उत्तम कुलकी स्त्रियोंसे प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करावे
॥ ६८ ॥ इन्हीं स्त्रियोंसे प्रतिष्ठा योग्य उक्तना करावे । बेल, ऊमर, चंपा, आम, वसुल,

सिद्धार्थाक्षतसत्फलोद्भ्रमनिशाद्रूर्वादिमैत्रीद्युषा
 काढमुखोद्धृतेन जिनपं संमोक्षयामि श्रियै ॥ ६८ ॥
 प्रोक्षणकप्रणयनम् । एताभिरेषु च स्त्रीभिः प्रतिष्ठायोग्यमूलादिवर्तनं कारयेत् ।

विल्वोदुंबरचंपकात्रवकुलन्यग्रोधनीषार्जुन—
 पुक्षाशोकपलाशपिप्पलदलप्रच्छादितश्रीमूलैः ।
 पुण्याशोष्यसरित्तडागसरसीपूर्वोत्तरीयांबुभिः
 पूर्णैः पूर्णमनोरथैरिव कुटैः कुर्वे निषेकं विभोः ॥ ६९ ॥

ओं णमो अरहंताणं सव्वसरीरावच्छिंदे महाभूप आय ३ गिण्ह ३ स्वाहा । एष मंत्र उत्तरबापि
 योज्यः । द्वादशपल्लवाभिषेकः ।

दूर्वापत्रकदनागुरुयवश्रीखंडवर्हिस्तिलै—
 नैद्यावर्तकजातिकुंदकुसुमैः स्वर्णार्जुनत्रीहिभिः ।

भूम्यभासपवित्रगोमयनदीकूलोद्यमृद्रोचना—
 सिद्धार्थैश्च समं भूतैः सुपयसा कुंभैः प्रशुं स्नापये ॥ ७० ॥

वड़, कपूर, अर्जुन, पाकर, अशोक, ढाक, पीपल इन बारह वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए जलके
 कलशोंसे “ ओं णमो ” इत्यादि मंत्र बोलकर अभिषेक करे ॥ ६९ ॥ यह द्वादश पल्लवका

अष्टादशमंगलद्रव्याभिषेकः ।

श्यामाशर्मादीवरभृंगविष्णुक्रांतागुहची सह देविकाभिः ।

पिशैः पवित्रैः सलिलैः सुपूर्णेरोषैर्जिनार्चा स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥
सप्तौषधस्नपनम् ।

लवंगमल्लोतकधिल्वजातीफलाम्रकम्रामलवारिपूर्णैः ।

शुभ्रैर्धेदरिष्टफलासिंहतोः संस्नापये स्नातकनाथविवम् ॥ ७२ ॥
फलपंचकस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशर्मापलाशन्यग्रोधकलकव्यतिकीर्णमर्णः ।

तैर्धे वहद्भिः कलशैर्वैलक्षैर्भक्त्याभिषिञ्चामि जिनेद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषिक्तं हुआ । " दूर्वा " आदि बोलकर दूब आदि अठारह मंगलीक वस्तुओंसे मिले हुए कलशके घड़ोंसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ । " श्यामा " इत्यादि सातकर उममें कथित श्यामा आदि सात वनस्पतियोंसे मिले हुए जलपूर्णकलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ " लवंग " इत्यादि बोलकर उसमें कहे हुए लवंग, मल्लोतक, बेल, जायफल, आमरदन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घड़ोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह फलपंचक स्नपन हुआ ॥ " उदुम्बरा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित

छाछिर्षचकल्पनम् ।

व्याघ्री गुह्यची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
मूलैर्वलायाश्च युतेन सर्वैः कुंभाभसाहं स्त्रपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौषधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

कत्कलैका जातिपत्रलवंगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमेव्यौ ।

सर्वौषध्यावासितैस्तर्थाथैः कुंभोद्गीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौषधिस्नपनम् । एवं जन्मामिषेकस्थानीयमाकरशुद्ध्याभिषेकं विधायनेन मंत्रेण जिनार्चाम-
धिवासयेत् । ओं णभो भयवदो बहुमाणस्स रिस्सहस्स जस्स चक्कुजलंतं गच्छइ आयासं पायालं
लोयाणं भूयाणं जूए वा विवादे वा रणांगणे वा गयंगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं
अपरजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्रः ।

कमर, पीपल, शमी, ढाक, बड़-इन पांचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन
करे ॥ ७३ ॥ “व्याघ्री” इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (एरंड) गिलोइ, आदि
आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥
“कत्कलै” इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

यस्योन्मिल्य निसर्गजे श्रवणयोर्वज्रेण रंभ्रे हरिः
 शब्द्यासेचनकं वयुस्त्रिजगतां भक्त्याभिसंस्कारयेत् ।
 त्रैवर्ण्योज्ज्वलसूत्रहृदयवमत्सिद्धार्थरत्नश्रिय—

श्रुत्वा चारुश्रुजेस्य श्रूषणमयं बध्नंतु ताः कंकणम् ॥ ७६ ॥

इंद्रकरहीरककृतकर्णविधादनंतरं प्रोक्षणकाधिकृतनारीभिर्जात्यकुंकुमश्रीखंडागरुकर्पूरचर्चनपूर्वकं
 दक्षिणमुले षोडशाभरणात्मककंकणविधानम् ।

गृह्णति यस्य समयामृतधैतचित्ता नामानि कोटिमृषयः कलुषक्षयाय ।

भैरौ महेंद्र इव संव्यवहारहेतोस्तं व्याहरेहभिह यष्टमतेन नाम्ना ॥ ७७ ॥

अभिषेक करे । यहं सर्वौषधिस्नपन विधि हुई ॥ ७५ ॥ इसीप्रकार जन्माभिषेकके स्थानरूप
 आकार शुद्धिका भी अभिषेक करके आगे कहे जानेवाले मंत्रसे जिन प्रतिमाका संस्कार
 करे ॥ “ ओं णमो ” इत्यादि “ स्वाहा ” तक श्रीवर्धमानमंत्र है । “ यस्यो ” इत्यादि
 बोलकर कर्णवेध करके स्त्रियोंसे केशर बंदन अगुरु कपूरकर लेप किये गये सोलह आभू-
 षणोंके साथ दाहिनी भुजाकी तरफ कंकण बांधे ॥ ७६ ॥ “ गृह्णति ” इत्यादि बोलकर
 प्रभुका नाम रखनेके लिये कुंडसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥ ७७ ॥

नामंकरणार्थं कुंकुमाक्तपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् । अथानंदस्तवः ।

जय देव प्रासिद्धेन स्वनाम्ना गां पुनीहि मे । जय शुद्ध नय स्वांतं स्वभक्त्या मेऽसुरंजय ७८
जय दिव्यांगंगात्राणि स्वनत्या मे कृतार्थय । जय तेजोनिधि स्वामिन् नेत्राब्जे मे विनिद्रय ७९
यद्दर्शनविशुद्ध्यादिभावना दैवतं विभो । तपस्तप्त्वा जगज्ज्योतिस्तज्ज्येतिस्ते तनिष्यति ८०
थात्त्वयज्ञा हतैः पुण्यैस्तद्भागद्वारसंगतैः । त्वयि प्रयुज्यते कोपाच्छमीस्तान्येव इति सा ८१
सा चैयं च विभ्रुतिस्ते कार्पीश जगतां हवाः । लब्धा विशुद्ध्या तद्दृष्ट्या स्वस्याहान्वयशुद्धताम् ॥
शुंजानोभ्युदयं चार्हन् जनैर्भोगीव लक्ष्यते । बुधैर्योगीव तत्त्वं तु जानाति त्वाद्येव ते ८३ ॥
नमस्तेऽर्चित्यचरित नमस्ते त्रिजगद्गुरो । नमस्ते त्रिजगन्नाथ नमस्तेत्यंतनिस्पृह ॥ ८४ ॥
नमस्ते केवलज्ञान नमस्ते केवलक्षण । नमस्ते परमानंद नमस्तेऽनंतविक्रम ॥ ८५ ॥
एवमानंदतः स्तुत्वा शक्रः पूर्ववदादरात् । जन्माभिषेककल्याणक्रियां कृत्वा स्फुटं नदेत् ॥ ८६ ॥

उसके वाद आनंदस्तुतिका पाठ "जय देव" इत्यादिसे लेकर पचासीवें श्लोकतक पढ़े ॥७८॥
७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५॥ इसप्रकार वह इन्द्र आनंदसे भक्तिपूर्वक स्तुतिकरके और जन्मा-
भिषेक कल्याणकी क्रिया करके अच्छीतरह तांडवचृत्य करे ॥ ८६ ॥ यह जन्माभिषेककी

इति जन्माभिषेकविधानम् ।

अथोद्धृत्य निजस्कंधे तामर्हत्यातिमां मुदा । आरोप्य व्यंजयन्निद्रस्तमैर्द्रं परमोत्सवम् ॥८७॥
संधेन महता युक्तः प्राप्य तां मूलवेदिकाम् । त्रिःपरीत्य पठन्मंत्रमिमं न्यस्येत्तदासने ॥८८॥

ओं “ एतद्राजांगणं तत्सुरकृतसुषमं सिंहापीठं तदेतत्
देवोयं जातकर्मोद्यत इयममरीसेव्यमाना प्रबोध्य ।
देवी साचोपर्नाता प्रमदवरवशा सेवमानास्तथैते
देवाः सर्वेर्हतीमं परिकरमयमेवेत्यमुं स्थापयेऽस्मिन् ॥ ८९ ॥

ओं नमोर्हते केवल्लिने परमयोगिने अनंतविशुद्धपरिणामपरिस्फुरच्छुक्लव्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबी-
जाय प्रासानंतचतुष्टयाय सौम्याय शांताय मंगलाय वरदाय अष्टादशदोपरहिताय स्वाहा । मूलवेदी-
मध्यस्थपितमद्रासने प्रतिमानिवेशनमंत्रः । अथ जिनमातृस्नपनम् ।

विधिं हुर्ष । उसके बाद ईंद्र उस अर्हत्प्रभुकी प्रतिमाको हृषिके साथ अपने कंधेपर रख परम
उत्सवको विखाता हुआ बहुत सार्धर्मियों सहित उस मूलवेदीमें लेजाकर तीन परिक्रमा वृत्ते
रुस आगे कंधे जानेवाले मंत्रको पढता हुआ उस सिंहासन पर चिराजमान करे ॥८७॥८८॥
यद्मंत्र “ ओं एतत्रा ” इत्यादि श्लोकसे लेकर स्वाहा तक छे । इससे मूलवेदीके मद्रासनपर

अं व प्रसीद दृशमेपु चतुर्निकायगोर्वाणमर्तृपु निधेहि सनञ्जवत्सु ।
एतास्वर्षद्रिंदयितासु ललाटघृष्टपादाग्रभूपु सुदमुल्वणयस्मितेन ॥ ९० ॥
नित्याश्रियेभ्युदयदुर्मदिनां त्वयीशे त्वज्ज्योतिरेतदपि नः परमरुवत्याम् ।
कर्मस्विहाभ्युदयिकेषु मतेति कोद्य प्राच्याशयोस्तमयपाक्युदयार्कसूतेः ॥ ९१ ॥

मथाः निमज्जंति जगंत्यमूनि मंक्ष्यंति वा मोहार्णवे कः ।

इहोपगृह्णाति भवादर्शादृक् सर्वज्ञबीजं यदि न प्रसूते ॥ ९२ ॥

त्वं कल्याणी त्रिश्रुवनजनन्येकसूररयासि त्वं

कीर्तिज्योत्स्नां किरयति सदा क्षालयंती जगत्ते ।

स्त्रीसर्गेऽत्रि गणयति शिवांगेष्वपि स्वं त्वमेव

त्वत्पूताः स्मो नियतमधुना विश्वमान्ये नमस्ते ॥ ९३ ॥

पीठिकायां कुंकुमाक्तकुसुमानि क्षिप्त्वा प्रणमेत् ।

जिनदेवीं जिनाभ्यर्णीं स्तुत्वा दिव्यांवरादिभिः। प्रसाद्यानंदनाट्येन स्वयं चाराध्य तं पुनः ९४

प्रतिमाको रखा जाता है ॥ ८९ ॥ अब जिनमाताके अभिषेककी विधि कहते हैं- “अं व प्रसीद” इत्यादिसे लेकर तिरानवै तक श्लोक बोलकर वेदीमें कुंकुमसे मिले हुए फूलोंको डालकर प्रणाम करे ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उसके बाद जिनदेवीको उत्तम वस्त्रादिसे पूज तथा

रक्षायाम् तस्य दियायान् देवताः परिकर्मणि । भोगसंपादने श्रीदं क्रीडने शक्रपुत्रकान् ९५
अंगुष्ठे चामृतं स्तन्यलौल्यच्छेदाय वासवः । यद्वदस्थापयत्तद्वदचायां स्थापयाम्यहम् ॥९६॥

दिव्यवल्खगंधभूषणस्वस्तिकशाल्यमक्षीरान्नविचित्र-भक्षपक्वान्नादुग्धदधिघृतशर्कराचारुपुष्पफलपत्र-
दीपधूपपादि भोज्यवस्तुजातं कांचनमानने विरचय्य शिलायां निवेशयेत् ।

सिद्धयुद्धाह महोत्सुकोपि तदलं कर्मण कालासये

निर्ग्रथं परपर्वन्त्यविधिना धर्मेण शासद्धराम् ।

यः सन्नाहिति लक्ष्यते त्रिजगतीनाथोसतीवेश्वरं

यो भक्तेति कुमार एव च भजन् भोगान्यसाम्यत्र तम् ॥ ९७ ॥

स्तुतिकर प्रभुकी रक्षाके लिये विष्णुपालोंको, देवताओंको सेवाके लिये, भोगादि सामग्रीके
लिये कुंवरको, खेलनेकेलिये इंद्रपुत्रोंको, दूध पीनेकी लालसाको दूर करनेकेलिये अंगू-
ठेमें अमृतको जैसे पहले इंद्रने प्रभुके पास रखा था उसी तरह मैं भी इस प्रभुकी प्रतिमाके
सामने स्थापित करता हूँ ॥ ९४।९।९६ ॥ ऐसा कहकर उत्तम वल्ख सुगंधित पदार्थ आ-
भूषण (गहने) सातिया खीर अनेक पक्वान्न दूध दही घी मिश्री उत्तम फूल फल पत्ते
दीप धूप आदि भोगोंकी सामग्री सौनेके पात्रमें रखकर शिलापर रखे । “ सिद्धयु
इत्यादि बोलकर पुण्यके उदयसे प्रातः राज्य संपदा आवि उपभोगोंकी स्थापना करनेके

पुण्यविपाकसंपादितसौराज्यसंपदुपभोगस्थापनाय कुंकुमाशणितपुष्पाणि प्रतिमोपरि विकिरेत् ।

एवं वैषयिकैः सुखैः सुरनराधीशामपि प्रार्थितैः

शश्वत्तीतमनाः सुराधिपदृष्टैः राज्ञार्थिभिः सेवितः ।

कालैकक्षणीयमोहमहिमान्याधृतिसंसूचक—

प्रेक्षांतिकततीर्थकृच्छिवरतोप्यास्ते द्वितीयाश्रमे ॥ ९८ ॥

देवोषनीतभोगोपभोगानुभवनाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति जन्मकल्याणस्थापना
॥ २ ॥ अथ निष्क्रमणकल्याणं ।

प्राप्ते सामज्वरवदणुता दृत्तमोहे विवेक—

ज्योतिष्युद्यत्तथ किमपि तत्कारणं वीक्ष्य मंशु ।

निर्विणोर्हत्समरससुधास्वादनौकः सहैत्य

श्रीत्यानत्य सततदुपधीनभ्यनंदत्सुदर्शन ॥ ९९ ॥

ल्लिये केशरसे रंगे हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर बखेरै ॥ ९७ ॥ “ एवं ” इत्यादि श्लोक बोलकर देवोंसे लाये गये भोग उपभोगोंका अनुभव दिखानेके लिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ९८ ॥ इस प्रकार जन्मकल्याणकी स्थापना हुई ॥ (२) ॥ अब तपकल्याणकका वर्णन करते हैं । “ प्राप्ते ” इत्यादि श्लोक बोलकर शमसुखके एक स्वादी होनेकी स्थापनाके

प्रशमसुलैकरासिकत्वस्थापनार्थं जिनेोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

विजयस्व जिनाधीश स्वयंभूरद्य खल्वसि । वक्ति स्वायंश्रुवं ज्योतिः शिवप्रस्थानमेव नः १००
दुर्घां काममियं चित्तं सुद्रव्यादिचतुष्टयी । एनामेवेयमन्वेतु सुष्टूसाहोयमेधताम् ॥ १०१ ॥
कृंभतां तत्परं ज्योतिः प्रीयंतां प्राणिनोऽखिलाः । भव्यात्मानः प्रबुध्यंतां छिद्यंतां कर्मशृंखलाः
निर्मलोन्मुद्रितानंतशक्तिचेतयित्वतः । ज्ञानं निःसीमशर्मात्मन् विंदन् प्रतपत्पदे ॥ १०३ ॥
इमं विधिं नियोगेन सार्धमंप्रणयेन वा । वाचाल्येमहि कृत्ये तु त्वाद्दशो जाग्रयुः स्वयम् १०४
इति स्तुतो शिवोद्योगं लौकांतिकसुरैः सुरैः । कृतनिःक्रमकल्याणं स्थापयाम्यत्र तं प्रभुम् १०५

निःक्रमणकल्याणोपक्रमस्थापनाय चंदनालुलितपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् ।

न्यग्रोधो मदगंधि सर्जसुशुनश्यामे शिरीषोर्हता-
मेते ते किल नागसर्जजटिनः श्रीतिंदुकः पाटलः ।

जंबवश्चत्थकपित्थनंदकविठाम्रावंजुलंश्रंपको
जीयासु वकुलोत्र वांशिकधवौ शालश्च दीक्षाद्रुमाः ॥ १०६ ॥

लिये भगवानके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे । ९९ ॥ उसके बाद प्रभुके वैराग्य होनेके समय लौकांतिक वेवोंकर “ विजयस्व ” इत्यादि छह श्लोकोंसे स्तुति करना । १००।१०१ १०२।१०३।१०४।१०५ ॥ फिर तपकल्याणका आरंभ स्थापन करनेके लिये चंदनसे मिश्रित

ओं णमो अरहंताणं जिनदीक्षावनवृक्षा अत्रावतरंत्विति स्वाहा । जिनदीक्षावनवृक्षस्थाप-
नाय मूल्ध्वेया प्रत्यग्धियोशितायाः प्रतिष्ठेयमहाप्रतिमायाः पुरस्तात्पुष्पाणि प्रकिरेत् ।

कल्पार्तार्णवशीचिविभ्रमनिपानाक्रान्तदिकं प्रभुः
शक्तेरेत्य कृता स्तवादिकाविधिः स्वं वर्गमापृच्छयमां ।
त्यक्ता भूपखगामरोढशिविकामारुहा गत्वा चनं
पर्यंकस्य उद्गमुखो नतशिवो वा प्राङ्मुखः प्रव्रजेत् ॥ १०७ ॥
सोयं युक्तिपुरीं प्रयान् विजयतां स्तादस्य पंथाःशिवो
नंध्यादस्य मनो विशुद्धिरनिशं सेज्जा गुणाः पास्वसुम् ।
क्रोधादिप्रतिरोधिनोस्य मुतपःशङ्खैः पतंतु क्षताः
संतश्चैनमनारतं परिचरंत्वेतत्पदं प्रेप्सवः ॥ १०८ ॥

पुण्य अक्षतांती प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे । “ न्यग्रोधो ” इत्यादि तथा “ ओं णमो ”
प्रत्यादि बोलकर भगवानके वाङ् सप्तपर्ण आदि दीक्षाचनवृक्ष स्थापन करनेकेलिये मूलध्वे-
रीके पश्चिमकी तरफ स्थापित प्रतिष्ठेय महाप्रतिमाके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १०६ ॥
“ कल्पार्ता ” इत्यादि श्लोक बोलकर मूलध्वेवर्किके सिंहासनसे प्रतिमाको उठाकर उत्तम
पालकीमें गीठाकर मछान उच्छ्रवके साथ लेजाकर पहले स्थापनकिये गये वीक्षाचन वृक्षके

एतत्पठन् मूलवेदीपीठात् प्रतिमामुत्क्षिप्य दिव्यशिविकामारोप्य महोत्सवेन नीत्वा पूर्वस्थापितदीक्षाव-
नवृक्षतले निवेशयन्निमं मंत्रं पठेत् । ओं नमो सिद्धानं भगवान् स्वयंभू रत्न सुनिविष्टो भवत्विति स्वा-
हा । अनैव मंत्रेण शेषप्रतिमास्वपि निष्क्रमणकल्याणस्थापनाय पुष्पाणि क्षिपेत् ।

स्वस्त्यस्मै वनशाखिने दृषदियं स्ताच्चाद्रकाती सुदे ।
ये दीक्षांगमिनो व्यधान्नम इमान् राज्ञः समं दीक्षितान् ।
शक्रः सतस्वधियोधिरत्नपटलौ प्रत्यग्रहीचत्कचां-

स्तार्थेषु प्रतपत्वलं तदुपदा हस्योर्णवः पंचमः ॥ १०९ ॥
ममेदमहमस्येति मतिं भित्वाहंतोद्धिताः ।

पुनंतु चित्रवस्त्रग्वस्त्रभूषाः संपूजिताः सुरैः ॥ ११० ॥

ओं नमो भगवतेर्हते सद्यः सामायिकप्रपन्नाय कंकणमपनयामीति स्वाहा । कंक-
णमपनीय दीक्षाविस्थापनाय प्रतिमादिषु पुष्पाणि क्षिपेत् । वनप्रस्थानप्रज्याग्रहणाविस्थापनं ।

नीचे स्थापन करे और उस समय “ ओं. णमो ” इत्यादि स्थापनमंत्र बोले ॥ १०७।१०८ ॥
इसी मंत्रसे अन्य प्रतिमाओंमें भी तपकल्याण स्थापन करनेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे
“ स्वस्त्यस्मै ” इत्यादि दो श्लोक तथा “ ओं नमो ” इत्यादि बोलकर कंकणादिको उतार
कर दीक्षास्थापनकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे । इस तरह वनमें जाना,

स्वामीसिद्धमधुगुणरतः सर्वसावद्ययोग-
व्याघ्रत्तात्मा स्वल्लितविष्टुखस्तत्क्षणादुद्भूतेन ।

तप्तं बोधत्रय इव मनःपर्ययेणोपगूढो

व्युत्कृष्टांगः स्वरसचिलसद्भावनो देदिवीति ॥ १११ ॥

मतिश्रुतावाधिमनःपर्ययाख्यसम्यग्ज्ञानचतुष्टयख्यापनाय चतुर्वर्तिदीपावतारणं विदध्यात् ।

अथैन्द्राः सिद्धचारित्रयोगशातशिक्षिभिर्युः । जिननिष्कमणकल्याणक्रियां कुर्युः समूरयः ११२

स्वं विदन् स्वतया परंपरतया तीत्रैस्तपोभिर्भवान्

कृष्ण पाकमवाप कष्टव्यनिशं कर्माशतः शातयन् ।

अकैवल्यपदाद्यथोत्तरविशुद्धयुद्धिद्यमानात्मचित्

सांद्रानंदरसं स्वयं पिबति यः सोयं जगन्नायताम् ॥ ११३ ॥

दीक्षा ग्रहण करना, केशलोच करना आदिका स्थापन हुआ ॥ १०९, ११० ॥ “ स्वामी ”
इत्यादि बोलकर मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय-इन चार ज्ञानोंको वतलानेके लिये चार वक्ति-
योंवाला हीपक जलावे ॥ १११ ॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्ध चारित्र शांति आदि भक्तिको
करके भगवानके तपकल्याणकी क्रियाको करें ॥ ११२ ॥ “ स्वं विदन् ” इत्यादि बोलकर

विशिष्टतपोनुष्ठानप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

ततोर्चां तां पुनर्वेदीं नीत्वा ताभिः सह्रांजसाध्यानावतारितजिनां योजयेत् तिलकादिना ११४
एष क्रमश्चलार्चानां विस्तरेण प्ररूपितः । स्थिराणांतु यथास्थाने सर्वमेनं प्रकल्पयेत् ॥ ११५ ॥

किंच—गर्भावतारादिविधिः समस्तं स्थानस्थिता चाल्याजिनेन्द्रविंबे ।

संकल्प्य सिंहासनपादपीठमध्येस्य हेर्मी निदधे शलाकाम् ॥ ११६ ॥

श्रीपादपीठसिंहपीठयोर्मध्ये सुवर्णशलाकानिवेशनम् । इति निःक्रमणकल्याणस्थापना ।
अथातस्तिलकदानविधानं । तत्रादौ तावकल्याणपंचकरोपणमनुवर्णयिष्यामः ।

यद्गर्भावतरे गृहे जनयितुः प्रागेव शक्राज्ञया

षण्मासान्नव चानु रत्नकनकं विचेत्स्वरो वर्षति ।

विशेषतः प्रस्थापन करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करें ॥ ११३ ॥ उसके
वाव उस प्रतिमाको देवीपर लेजाकर तिलकादि क्रियासे युक्त करे ॥ ११४ ॥ यह क्रम चल
प्रतिमाओंका विस्तारसे कहा गया है परंतु स्थिर प्रतिमाओंका उसी स्थातं पर कल्पना
करे ॥ ११५ ॥ “ गर्भाव ” इत्यादि बोलकर भद्रासनोके मध्यमें सोनेकी संलाई रखे ।
यह निष्क्रमण कल्याणकी स्थापना हुई ॥ ११६ ॥ अब तिलकदानविधि कहते हैं । उसमें
सबसे पहले पांच कल्याणोंका स्थापन कहते हैं । जिस प्रभुके गर्भमें आनेके पहलेही छंद

भयपूर्वा माणिकार्थिणी सुरसरिन्नीरोक्षिता षोडश-
स्वप्नेक्षामुदितां भजंति जननीं श्रीदिक्कुमार्योसि सः ॥ ११७ ॥

प्रच्छन्नं जननीष्टुपास्य शयनादानीय शच्यापितं
यं तत्वास चतुर्णिकायविबुधः श्रीमत्कर्णोद्रश्रितः ।

सौधमैकनिवेशितं सुरगिरिं नीत्वाभिषिच्यवावया
संयोज्योपचरत्यजस्रमसमैभेगैः स भास्येष नः ॥ ११८ ॥

किं कुर्वाण सुरेन्द्रविषयानंदाद्विरक्तस्तुतो
यो लौकांतिकनाकिभिः शिविकया निःक्रम्य गेहान्महैः ।

दिव्यैः सिद्धनतीद्वियावनतरं पूत्वा परादीक्षया
भुंक्ते शुद्धनिजात्मसंविदमृतं स त्वं स्फुरस्येष नः ॥ ११९ ॥

महिने तथा आनेके वाद नौ महीने इस तरह पंद्रह महीने इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने पिताके घर रत्न आदिकी वर्षा की तथा सोलह उत्तम स्वर्गोंके देखनेसे हर्षित जिनमाताकी दिङ्गुमारियां सेवा करती हुई ॥ ११७ ॥ जिसके जन्म कल्याणकर्म इंद्राणिने साताको निद्रामें मग्न करके प्रभु वालकको लाकर इंद्रको सौंप दिया, फिर उसे ऐरावत हाथी-पर विठाके सुमेरु पर ले जाकर इन्द्रादिने अभिषेक किया, उसके बाद राज्यसंपदा आदि भोगोपभोगकी दिव्य सामग्रीसे शोभायमान हुआ ॥ ११८ ॥ उसके बाद किसी

सम्यग्दृष्टिश्चाकृशत्रतशुभोत्साहेषु तिष्ठन् कचिद्
 धर्मध्यानवलादयत्नगलिताभायुस्त्रयः सप्त यः ।
 दृष्टि मप्रकृती समातपचतुर्जातित्रिनिद्रा द्विधा
 स्वप्नस्थानवरसूक्ष्मतिर्यगुभयोद्योतान् कषायाष्टकम् ॥ १२० ॥
 कैव्यं स्रैणमथादिमेन नवमे हास्यादिषट्कं नृतां
 क्षित्वोदीचि पृथक्कुधादिदशमे लोभं कषायाष्टकं ।
 निद्रा सप्रचलामुपात्यसमये हृग्धीम्विष्माश्चतु-
 र्द्विः पंच क्षिपते परेण चरमे शुक्लेन सोर्हन्नसि ॥ १२१ ॥

निमित्तको पाकर भोगोंसे वैराग्यरूप हुए, उससमय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की फिर दिव्य पालकीमें बैठकर वनमें लगये वहां पर दीक्षावृक्षके नीचे बैठके प्रभुने सिद्धोंको नमस्कार कर आप ही दीक्षा धारण की, केसलौच करके ध्यानमें मग्न हुए निजस्वभावामृतका स्वाद लेते हुए । ऐसे प्रभु हमारे कल्याण कर्ता हो ॥ ११९ ॥ जिस प्रभुने धर्मध्यान और शुल्कध्यानके बलसे अनायासमें ही गुणस्थान क्रमसे कर्म प्रकृतियोंका क्षय किया । वह क्रम कर्मकांडमें विस्तारसे लिखाहुआ है । विस्तारके मयसे यहां नहीं लिखा । क्षयके क्रमसे चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान आदि अनंतच-

द्रव्यं भावयथातिस्वप्नमधियन्युक्ता वितर्कं स्फुर-
 न्मर्थव्यंजनमंगरीरपि पृथक्त्वेनापि संक्रामता ।
 कर्माज्ञानत्र स्थितेन मनसा प्रोढार्भकोत्साहवत्
 कुंठेन द्रुमिवाणुशः परशुना छिदन् यतिष्वध्यसि ॥ १२२ ॥
 क्षुण्णे मोहरिपौ भजन्बुरयथाख्याताधिराज्यश्रियं
 शुद्धस्वात्मनि निर्विचारविलसत्पूर्वोदितार्थश्रुतः ।
 स्वच्छंदो छलदुत्कलोज्ज्वलचिदानंदैकभावो लस-
 च्छेपारित्रजैवभवः स्फुटमसि त्वं नाथ निर्ग्रथराट् ॥ १२३ ॥
 विश्वैश्वर्यविघातिघातिदितिजो छेदो गतानंतहृक्
 संविद्दीर्घसुखात्मिकां त्रिजगदाकीर्णे सदस्या स्थितः ।
 जीवन्मुक्तिमूर्षीद्रचक्रमहितस्तोर्थं चतुस्त्रिंशता
 कुर्वाणोतिशयैः पुनात्यपि पशन् संप्रतिहार्याष्टकैः ॥ १२४ ॥

षष्ठ्य पाकर सयोगकेवली हुए । उससमय इंद्रने समयसरणकी रचना की । उसी समय
 चौंतीस अतिशय आठ प्रतिहार्य तथा पूर्वोक्त अनंतज्ञानादि चार—इसतरह छयालीस गुण
 मंडित हुए दिव्यध्वनिद्वारा तिर्यचौं आदि जीवोंका कल्याण करते हुए ॥ १२० । १२१ । १२२
 १२३ । १२४ ॥ उसके बाद प्रभुने योगोंको रोककर शुद्धध्यानके बलसे मोक्षअवस्थाके

देवव्यक्तिविशेषसंबन्धवहृतिव्यवत्युल्लसल्लाञ्छन-
 श्रीमत्त्वक्क्रमपद्मयुग्मसततोपास्तौ नियुक्तं शुभैः ।
 यक्षद्वंद्वमवश्यमेतदुचितैः प्राच्यैरिदानींतनै-
 र्देवैरपि मान्यते शिवमुदोप्येष्यन्दिरीशिष्यते ॥ १२५ ॥
 द्वौ गंधौ रसवर्णबंधनत्रयुः घातकान् पंचशः
 पद् पद् संहननाकृतीः शुभगतिः स्वस्वानुपूर्व्यासुभे ।
 खत्रज्ये परघातकागुरुलघूच्छ्वासोपघाता यशो
 नादेयं शुभसुस्वरस्थिरयुगैः स्पर्शाष्टकं निर्मितम् ॥ १२६ ॥
 त्र्यगोपांगमपूर्णदुर्भगयुगे प्रत्येक नीचैः कुले
 वेधं चान्यतरद्विसप्तसिमुपात्ये मूरयोगं क्षणे ।
 आदेयं सनिजानुपूर्व्यदृगतिं पंचाक्षयोतिशयः
 पर्याप्तत्रसवादराणि सुभगं मर्त्यायुरुचैः कुलम् ॥ १२७ ॥

अंतके दो समयोंमेंसे पहले समयमें पचासी कर्म प्रकृतियोंमेंसे बहतर प्रकृतियोंका क्षय
 किया और अंतसमयमें अवशेष तेरह प्रकृतियोंका नाशकर कर्मोंसे मुक्त हुए तीनलोकके
 शिखरपर जा विराजे ॥ १२५ । १२६ । १२७ । १२८ । १२९ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त श्लोकोंको

बेधेनान्यतरेण तीर्थक्रमारअग्रादशास्यंतिमे
निष्कृत्यप्रकृतरिनुचरसमुच्छिन्नक्रियध्यानतः ।

यः प्राप्नो जगदग्रमेकसमयेनोर्ध्वंगमात्पाष्टभिः

सम्यवत्त्वादिगुणैर्विभाति स भवानत्रार्थितोच्यज्जिगत् ॥ १२८ ॥

शक्तिश्रीपरिरंभनिर्भरचिदानन्देन येनोज्झितं

देहं द्राक् स्वयमस्तसंहतितडिद्वाभेव मायामयम् ।

कृत्वार्थीद्रकिरीटपावकयुतैः श्रीचन्दनाचैर्भुदा

संस्कृत्याभ्युपयंति भस्म भुवनाधीशाः स जीयात् प्रभुः ॥ १२९ ॥

पतत्पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिमापयेत् । इति कल्याणपंचकारोपणविधानं । अब संस्कार-
मालाधिरूपणम्।

न्यस्यामथेह विवेष्ट चत्वारिंशत्तमर्हतः । संस्कारान् दृष्टिलाभादिशिवांतपदगोचरान् ॥ १३० ॥

पठकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे । यह कल्याणपंचककी आरोपणाविधि
दुर्दे । अब संस्कारमालाकी आरोपण विधि कहते हैं । “न्यस्या” इत्यादि श्लोक चोळकर
साम्यगर्भर्शनप्राप्तिके संस्कारसे लेकर मोक्षप्राप्तिक संस्कार स्थापनेकी प्रतिज्ञा करे ॥ १३० ॥

सदर्शनस्य संस्कारः स्फुरत्वयमिहार्हति । संज्ञानस्यैव सदृत्तस्यैष सत्तपसोप्ययम् ॥ १३१ ॥
 एष वीर्यचतुष्कस्य मात्रष्टतयमंडले । प्रवेशस्यायमेषोष्टशुद्धवष्टंभनिष्ठिते ॥ १३२ ॥
 परीषहजयस्यायं त्रियोगासंयमच्युतेः । शीलमस्यायमेष त्रिकरणासंयमारतेः ॥ १३३ ॥
 अयं दशा संयमोपरमस्यैषोक्षनिर्जितेः । अयं संज्ञानिग्रहस्य दशधर्मधृतेरयम् ॥ १३४ ॥
 अष्टादशसहस्राणां शीलानामयमेषकः । चतुरम्यधिकार्शीतिगुणलक्षसमाश्रयः ॥ १३५ ॥
 विशिष्टधर्मध्यानस्य अयमेषोतिशायिनः । अप्रमत्तयमस्यायं सुदृढश्रुततेजसः ॥ १३६ ॥
 अक्रं प्रकरणश्रेण्यारोहणस्यामुकोसकौ । अनंतगुणशुद्धेऽथाप्याप्रष्टत्तकृतेरयम् ॥ १३७ ॥
 अयं पृथक्त्ववीतर्कवीचारप्रणिधेरयम् । अपूर्वकरणस्यैषो निवृत्तिकरणस्य च ॥ १३८ ॥
 वादराणां कपायाणामयं किट्टिकृतेरयम् । सूक्ष्माणामेष पूर्वेषां किट्टिनिर्लेपनस्य च ॥ १३९ ॥
 एषोन्येषामयं सूक्ष्मकषायचरणस्य च । प्रक्षीणमोहनस्यायं यथाख्यातविधेरयम् ॥ १४० ॥
 अयमेकत्ववीतर्कवीचारध्यानभूरयम् । घातिघातस्य कैवल्यज्ञानदृष्टुद्यतेरयम् ॥ १४१ ॥
 तीर्थप्रवर्तनस्यायमेष सूक्ष्मक्रियस्य च । शैलेशीकरणस्यायं परसंवरवर्त्यसौ ॥ १४२ ॥
 योगकिट्टिकृतेरेष तत्रिलेपनगाम्यसौ समुच्छिन्नक्रियस्यायं श्रितोयं निर्जरां पराम् ॥ १४३ ॥

“सदर्शन” इत्यादि एकसौ पेंतालीस तक श्लोक बोलकर अभिप्राय मनमें धारण करके प्रति-
 माके ऊपर पुष्पांजली क्षेपण करे ॥ १३१ से १४५ ॥ इसप्रकार अठतालीस संस्कारोंकी

सर्वेषु स्यम्यायपनादिभनपर्ययः । विनाशस्याशुक्रानंतसिद्धत्वादिगतरयम् ॥ १४४ ॥
 आद्वयसहजमानोपयोगीश्वर्येचार्यसौ । एष देहसाहात्येक्षोपयोगीश्वर्येगोचरः ॥ १४५ ॥
 एतदर्थशिषणपरायणातःकरणः पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पाजलि क्षिपेत् । इत्यष्टचत्वारिंशत्सं-
 *काभ्यात्रासंपणनिानम् । अथ मंत्रन्यासविधानम् ।

विद्वोद्भासि परब्रह्मव्यंजकं स्यात्पदांकितम् । शब्दब्रह्मेति मंत्राली न्यस्याभीह जिनेशिनः १४६
 मंत्रन्यासप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पाजलि क्षिपेत् ।

भास्वनेत्रथयोनासारुपोलरदंपक्तिपु । स्कंधयोर्मूर्ध्नि जिह्वात्रे ओमायाई रमोत्तरान् ॥ १४७ ॥
 स्थापनाका विधानं बुधा । अथ मंत्रन्यास विधिं कथ्यते— मंत्रं स्यात्पवसे चिन्हित, जग-
 त्का प्रकाशक और परब्रह्मको कानेवालें ऐसे शब्दब्रह्म एस मंत्रको अर्थात् ब्रह्म नामको
 तिनेश्वरमें स्थापित करता हूं ऐसा कहकर मंत्रन्यासकी प्रतिज्ञा प्रगट करनेकेलिये प्रति-
 नाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि चढ़ाने ॥ १४६ ॥

इसके बाद "आम्" इत्यादि चार श्लोक बोलकर ओं हीं अहं श्रींपूर्वक अकारादि वर्णोंको
 द्वारा सातके निर्मल संवसाके समान चितवन करे तथा प्रतिष्ठय प्रतिमामें हाथसे स्थापन करे ।
 यह इत्यस्त है— " तं" इत्यादिको ललाटेमें बाहिनी बाईं तरफ स्थापन करे, एसीप्रकार 'ईं'
 ओं तेषां, उरुको तानां, हृत् को नामं, ललाटेको गालोंपर, एते को दातोंमें, ओ ओ को
 कानोंमें, श्रोणी भागोंमें, ओं हीं मस्तकमें, अः हो त्रीभक्त अगाड़ीके भागपर, कवर्गको बाहिनी

स्वरान् द्विधः पृथक्त्वंद्वाबोर्दक्षिणवामयोः । कचवर्गौ तथा कुक्ष्येष्टतवर्गौ पृथक् पफी ॥ १४८ ॥
 ऊर्वोर्धि गुह्यके नाम्यां भं मं मांसलतापदे । देहे य मूर्ध्ना रं लं प्रष्टेधिसंधि वं ॥ १४९ ॥
 गं जानुनोर्गुल्फयोः पं पादयोः संनिवेश्य हं । सर्वप्राणपदे साक्षाज्जिनमेषोवतारये ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं श्रीं एतत्पूर्वकानकारादिवर्णान् शरश्चंद्रगौरान् यथोक्तस्थानेषु मनसा ह्यत्वा
 प्रतिष्ठेयप्रतिमासु करेण विन्यसेत् । तथाहि । ओं ह्रीं अहं श्रीं अ आ ललाटे दाक्षिणतः प्रश्चति
 न्यसेत्, ओं ह्रीं अहं श्रीं ईई दक्षिणेतरेनेत्रयोः । एवं सर्वत्र । उक्त कर्णयोः ऋ ऋ नासापुटयोः,
 लृ लृ गंडयोः; ए ऐ ऊर्ध्वाधो दंतपंक्तयोः; ओ औ स्कंधयोः; अं मस्तके, अः जिह्वामे, क ख ग
 घ ङ दक्षिणभुजे, च छ ज झ ञ वामभुजे, ट ठ ड ढ ण दक्षिणकुक्षौ, त थ द ध न वामकुक्षौ,
 प दक्षिणोरौ, फ नागोरौ, ब गुह्ये, म नाभिमंडले, म स्फिजोः, य शरीरस्थाने उदरे, र ऊर्ध्वरोमांचे
 मस्तकदिकेशेष्वित्यर्थः; ल लृष्टे, व त्रीवाकक्षादिसंधिषु, श जानुयुग्मे, ष गुल्फमूलयोः; स पदयोः;
 ह सर्वप्राणस्थाने हृदये । इति मंत्रन्यासविधानं । अथ प्रतिष्ठातिलकदानं ।

शुभार्थे, चवर्गको वाईं बांएमें, दवर्गको वांछिनी कूलमें, तवर्गको वाईं कूलमें, प वाहिनी जां-
 यमें, फ बाईं जांधमें, व गुह्यस्थानमें 'भ नाभिस्थानमें, म चूतडोंमें, य उदरमें, र शिरके के-
 जोमें, ल पीठमें, च गले कांए आविकी संधिओंमें, श घुटनोंमें, ष पैरोंमें, हकारको हृदय-
 स्थानमें, ह्यापन करे ॥ १४७ । १४८ । १४९ । १५० ॥ यह मंत्रन्यास विधि हुई । अब प्रति-

प्रीत्यै पिगा प्रियंशूफलमचिरफलं मंगलार्थं द्वांश्र स्यात्
 सिद्धार्था वाञ्छितार्थान् ददाति सुमनसः सौमनस्यं मन्नायुः ।
 दूर्वा श्रीखंडलोहप्रभृतिसुरभितामृद्धिमृद्धिश्च वृद्धि
 वृद्धिः शैत्यं तुषारो क्षतविशदयशास्यक्षतात्रित्यमीभिः ॥ १५१ ॥
 शुच्या कौसुंभवस्त्राभरणधुसृणुसन्माल्यभाजा चतुष्के
 तिष्ठंत्या भर्तृवस्त्रांचलयुतवसनप्रतया यब्दपह्या ।
 कोणोद्भासि प्रदीपामलजलपविताभ्यर्चितायां शिलायां

पिष्टिर्दत्त्वा गुडादौस्तिलकयतु कृतावाहनादिर्जिनार्चाम् ॥ १५२ ॥

तिलकद्रव्यसज्जीकरणं । अत्र स्थापनानिक्षेपेण यमाश्रित्यावाहनादिर्मंत्राः कथ्यन्ते तद्यथा ।
 ओं ह्रां ह्रीं हूं हौं हः असिआउसा एहि २ संवौपट् आवाहनं, ओं हां हीं हूं हौं हः असि आउसा
 तिष्ठ २ ठ ठ स्थापनं, ओं हा हीं हूं हौं हः असिआउसा अत्र सन्निहितो भव २ वपट् सन्निर्घीकरणं
 धातिलकदानकी विधी कहते हैं ॥ इतराल आदि तिलक द्रव्य सौंनिके पात्रमें रखकर “ स्ति-
 द्धार्था” इत्यादि तीन श्लोक तथा “ओं” इत्यादिसे आवाहनादि करके जिन प्रत्तिमामें तिलक
 लगावे अथवा उसके आगे तिलक द्रव्य चढ़ावे ॥ १५१ । १५२ । १५३ ॥ इसप्रकार वह इंद्र

कृत्वैवं कर्म शक्नोर्ची पूरक्रेण जिनं स्मरन् । सुलभे रेचकेनांतः प्रियां वा तत्पदं न्यसेत् ॥ १५४ ॥

तिलकमंत्रः । इति तिलकदानविधानं । अथाधिवासनाविधानं ।

गंधाक्षतस्रग्त्रान्नयवार्णिकंकणेषुभिः । चरुधूपारार्तिकफलैर्विरूढकयवारकैः ॥ १५५ ॥

सवर्णपूरेश्चुत्रलिवातिभृंगारकैरिमैः । मंत्राभिर्मंत्रितैश्चित्तैः सार्धस्वस्त्ययनैः क्रमात् ॥ १५६ ॥

एष निष्प्रतिघो देष्यत्केवलज्ञाननिर्घृतिम् । प्रतिष्ठितमहाचार्यां जिनेन्द्रमधिवासये ॥ १५७ ॥

स्वासन्नोक्तचदनाद्यधिवासनद्रव्येषु पुष्पाक्षतं प्रक्षिप्य तत्कालप्रतिष्ठितार्हप्रतिमां नमस्कुर्यात् ।

कर्पूरगकलवंग एला कररंजितं चंदनौघैः ।

दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुरारात् विद्राणसौरभमदैरपि चर्चयेन्नीन् ॥ १५८ ॥

ॐ नमोर्हते सर्वेशरीरावस्थिताय पृथु २ गंधं २ गृहाण स्वाहा ।

पूरक प्राणायामसे जिनैन्द्र देवका स्मरण करता हुआ रेचक प्राणायामसे चरणकमलोंमें तिलकद्रव्य चढावे ॥ १५४ ॥ यह तिलकवान निधि हुई । अब अधिवासनाविधि कहते हैं- केवलज्ञान कल्याणसे प्रतिष्ठित हुई महान् अर्हत प्रतिमामें अर्हत्प्रभुको स्थापित करके चंदन अक्षत आदिसे पूजा करे ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ यह पूजा इसप्रकारसे है-पहले आवाहन-नाशि करके पुष्प अक्षत क्षेपण करे । फिर "कर्पूर" इत्यादि श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि श्लोककर चंबन चढाते ॥ १५८ ॥ " शुंभत " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि श्लोककर अक्षत

शुभच्छारदपार्विकेदुसुहृदामामोदनमोत्वण-

आणप्राणितचेतसां द्युतटिनीतोयाभिपिक्तात्मनाम् ।

अच्छेदाजितसाधुशीलयशसां शालयक्षतानां चयै-

राचारैरिव पंचभिः सुरचनैरर्हत्पदाब्जे यजे ॥ १५९ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ अक्षतानि गृहाण २ स्वाहा ।

सौरभ्यसांद्रमकरंदपरागजाती मंदारमल्लिकमलादिमयेन दाम्ना ।

कल्याणपंचकरुचिं शरपंचकेन प्रव्यंजता जिनपते रचयामि पूजाम् ॥ १६० ॥

ओं नमोर्हते जय सर्वतो मेदिनीपुष्प वरपुष्पाणि गृहाण २ स्वाहा । पंचशरमालारोपणम् ।

जल्पच्छुक्कृतया परां विमलतां तात्कालिकीं लभ्यतां

नव्यत्वेन लसद्दशापरिचयेनोत्कर्षपर्याप्तता ।

माहार्धेण महर्घतां च परमध्यानस्य दुर्लक्ष्यतां

सूक्ष्मत्वेन ददे जिनस्य वदने वस्त्रं प्रनष्टावृते ॥ १६१ ॥

चढावे ॥ १५९ ॥ “सौरभ्य” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर पुष्प चढावे ॥ १६० ॥

“जल्प” इत्यादि दो श्लोक तथा “ओं नमो” इत्यादि बोलकर वस्त्र और जौमाला सहित सात

भक्तद्विष्टद्विष्टदनुक्षणभाविशर्म सम्यक् फलामितगुणावलिमुद्गिरंत्या ।

रावद्विष्टद्विष्टयवमालिकयार्चितोर्हन् गां सप्तधान्यकमदोर्हेतु सप्तभंगी ॥ १६२ ॥

ओं नमोर्हेते सर्वशरीरावस्थिताय समदनफलं सर्वधान्ययुतं मुखवस्त्रं ददामि स्वाहा । मुखवस्त्र-
दानपूर्वकं यवमालामारोप्य निनस्य पादाग्रतः सप्तधान्यान्युपहरेत् ।

सूत्रे रूप्यमयेथ पट्टरचिते प्रोतं विविक्तात्मचि-

दीव्यदर्शनबोधवृत्तककुदं रत्नत्रयं स्वात्म यत् ।

रागात् क्षिप्तवरस्रजः शिवरमासंगोत्सुकस्य प्रभोः

जीवनमुक्तिरमाविवाहविवधये बध्नाम्यदः कंकणम् ॥ १६३ ॥

ओं “ अष्टविहकम्पमुत्तो तिलोयपुज्जो य संथुओ भयवं । अमरणरणाहमहिओ अणाइणि-
इणो सिवं दिसओ ” स्वाहा । कंकणबंधनम् ।

पंचोन्मादनमोहने स्मृतिसुवः संतापनं शोषणं

वाणान् मारणमप्यपार्थितवत चत्वारि विघ्नच्छिदे ।

अनाजोंकी भगवानके चरणकमलोंके आगे चढावे ॥ १६१ । १६२ ॥ “सूत्रे” इत्यादि तथा
“ओं” इत्यादि बोलकर कंकणबंधन करे ॥ १६३ ॥ “पंचो”, इत्यादि बोलकर चतुष्का स्था-

शुद्धध्यानत्रिकल्पना निवसनप्रतिपुर्काडान्यमू-
न्युद्यत्संखमयूत्सते जिन फलान्धारोपयाम्यर्हतः ॥ १६४ ॥

कांडस्थापनमंत्रः ।

प्राज्याज्यं परमान्नमुत्कटसितं पक्वान्नवर्गं वर-
भक्षानक्षसुखान् शशांककिरणप्रष्टान् समं शालनैः ।
शाल्यन्नं सुरसैः सुगंधिविशदं पेयं पयःपूर्वकं
सान्नाय्यं कनकादिपात्रविततं श्रीरोचिभर्त्रे ददे ॥ १६५ ॥

ओं नमोऽर्हते सहभूतायानंतसुखतृप्तायात्रे चरुं विस्तारयामि स्वाहा ।

धूपैर्यौगिकगंधसारनिधिद्रव्याव्यायायविर्भवत्
सौरभ्यातिशयैः शिखिव्यतिकराद्भूमायमानैर्मुहुः ।

सद्भयानानलदह्यमानतनुकैरिवाधिष्ठित-

क्रोढान् साधुजनाशयान् प्रतिदिशं न्यस्यामि कुंभान् प्रभोः ॥ १६६ ॥

पन करे ॥ १६४ ॥ “प्राज्य” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर नैवेद्य (पक्वान्न) चढावे
॥ १६५ ॥ “धूपे” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर आठों विशाओमें आठ धूपदान रखे

ओं नमो अहं सर्वतो दह २ तेजोधिपतये सहस्रताय वृषं गृहाण गृहाण गृहाण स्वाहा । अष्टासु
विशु वृषघटाष्टकनियोगम् ।

स्फूर्जज्जोतिः सज्जितैः कज्जलाहो दाहं दाहं स्नेहमेभिर्वहस्त्रिः ।

दीपैः शुद्धज्ञानरोचिः कलापप्रख्यैरहं देवमाराधयामः ॥ १६७ ॥
ओं नमोर्हते सर्वतः प्रज्वल २ अमिततेजसे दीपं गृहाण स्वाहा ।

श्रीमद्वाडिमोचचोचरुचका क्षौटा प्रघोटा शिवा

जंबूजंभलनागरंगपनसद्राक्षाकपित्यादिजैः ।

छायागंधरसप्रमाकृतिदशाभेदैर्मनोहारिभिः

साक्षात्पुण्यफलैर्जिनेन्द्रचरणावभ्यर्चयामः फलैः ॥ १६८ ॥
ओं नमोर्हते सहस्रताय फलानि गृहाण गृहाण स्वाहा ।

मुद्राद्यशेषाद्विदलप्रसूतैर्वालांकुराक्षिसगुणप्ररोहैः ।

विरूढकैः प्रौढविशुद्धभावं यजे जिनें भव्यशुभोद्भवाय ॥ १६९ ॥

॥ १६६ ॥ “स्फूर्ज” इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर दीपक चढावे ॥ १६७ ॥ “श्रीमद्वा”
इत्यादि तथा “ओं” इत्यादि बोलकर फल चढावे ॥ १६८ ॥ “मुद्रा” इत्यादि बोलकर दो व-
लवाळे धान्यके अंकुरे शुभउदय होनेके लिये चढावे ॥ १६९ ॥ “यवादि” बोलकर जौका

विरूढकस्थापनम् ।

यवादिजैर्मगलदानहसैर्यावारकैः कांतिजिताश्मगर्भैः ।

जगत्पतेः सिद्धबधुविवाहवेदीमिमां भूमिमलंकरोमि ॥ १७० ॥

यवारकस्थापनम् ।

सहानवस्थानहतान् स्वपंचवर्णोच्चयेन द्युविमानवर्णान् ।

आक्षिप्यतोभि प्रभु वर्णपूरान् स्वर्वासिपुण्याय निवेशयामि ॥ १७१ ॥

वर्णपूरकस्थापनम् ।

व्याहारान् जिनवाक्यवन्मधुरताशैत्यप्रसादोद्भुरै-

रिक्तान् स्वादुविपाकवद्भिरितरान् प्रत्यादिशञ्ची रसैः ।

स्यूलैरायतिशालिभिः कलयुतं कोदंडकृत्यै ।

ग्रन्थारिष्टरसोन्मुखं जिनपतिः पुंड्रेक्षुभिः प्रार्चये ॥ १७२ ॥

इक्षुस्थापनम् ।

वस्तुं सभाभुवि मनोज्ञफलप्रवालपुष्पावलीरूपहृता द्युवनश्रिये वा ।

चित्रामपिष्टमयपुष्पफलप्रवालरूपास्तनोमि बलिर्वर्तिततीर्जिनात्रे ॥ १७३ ॥

आटा स्थापन करे ॥ १७० ॥ “सहान्” इत्यादि बोलकर पांच रंगोंको चढावे ॥ १७१ ॥
“व्याहारान्” इत्यादि बोलकर पोंडा चढावे ॥ १७२ ॥ “वस्तु” इत्यादि बोलकर घीकी बत्ती

त्रल्यितिकास्थापनम् ।

सूत्रार्थैरिव निर्मलैर्मतिफलैराह्लादिभिः शीतलैः
भीषुपैरिव जीवनादिकगुणग्रामस्फुरद्भौरवैः ।

पुर्णं तीर्थजलैः सुपल्लवशुखं हैक्षं सदूर्वाक्षतं

दिव्यांगं दधतं न्यसामि धृतये भृंगारमग्रेर्हतः ॥ १७४ ॥

भृंगारस्थापनम् ।

एवं देवे विश्वदेवाचसेत्रे न्यस्तेर्चायां चारुवस्तूपचारैः ।

व्यक्तात्यंतोदात्तशस्तानुभावे प्राहुंकामानर्धमभ्युद्धरामः ॥ १७५ ॥

पूर्णार्धम् ।

आदिनाथोस्तु नः स्वस्ति स्वस्ति स्तादजितेश्वरः ।

शंभवो भवतु स्वस्ति भूयात्स्वस्त्यभिर्नंदनः ॥ १७६ ॥

अस्तु नः सुमतिः स्वस्ति पद्माभः स्वस्ति जायताम् ।

सुपार्श्वः स्वस्ति भवताव स्वस्ति स्ताच्चंद्रलालनः ॥ १७७ ॥

नकाशित करके चढाये ॥ १७३ ॥ “सुत्रार्थ” इत्यादि बोलकर जलसे मराठुआ खेतिका लो-
टा कलशा चढाये ॥ १७४ ॥ “पर्वं केत्रे” इत्यादि बोलकर पर्णार्चं चढाये ॥ १७५ ॥ “आदि-

सतां स्वस्त्यस्तु सुविधिर्भवतु स्वस्ति शीतलः ।
 श्रेयान् संपदातां स्वस्ति स्वस्त्यस्तु वसुपूज्यजः ॥ १७८ ॥
 राज्ञोस्तु विमलः स्वस्ति स्वस्ति भूयादनंतचित् ।
 भूयाद्धर्मचितः स्वस्ति शांतीशः स्वस्ति जायताम् ॥ १७९ ॥
 संघस्य कुंतुः स्वस्त्यस्तु भवतु स्वस्त्यरप्रभुः ।
 स्वस्ति महिजिनेद्रोस्तु स्वस्त्यस्तु मुनिसुव्रतः ॥ १८० ॥
 जगतोस्तु नमिः स्वस्ति स्वस्ति स्तान्नेभिनायकः ।
 स्वस्ति पार्श्वजिनो भूयात् स्वस्ति सन्मतिरस्त्विति ॥ १८१ ॥
 अस्मिन्निमे स्वस्त्ययने भक्तिरागादघातिनाम् ।
 स्वस्तिमंतः स्वयं शश्वत्संतु स्वस्त्ययनं जिनाः ॥ १८२ ॥
 एतस्सप्तकं पठित्वा पुष्पांजलिं क्षिपेत् । स्वस्त्ययनविधानं ।

अथ केवलज्ञानफल्याणस्थापनम् ।

इत्यधुणकृताधिवासनविधेः शक्त्या निधायार्हतः
 क्रौंशे नित्यमहार्थमर्थमुचितं यष्टा निधायार्पितं ।

नाथो" इत्यादि सात श्लोक बोलकर पुष्पोंकी अंजलि चढावे ॥ १७६ से १८२ ॥ यह स्वस्ति-

स्वीकार्यापि शिवाय सदृष्टभिमे कुर्भोवतार्यात्तिकं
तस्योत्सप्य च धूपमध्वमधदत्तच्छ्रीमुखोद्घाटनम् ॥ १८३ ॥

ॐ उसहादिपट्टमाणं पंचमहाकृष्णसंपण्णं महइ महावीरवड्डुमाणसार्माणं सिज्जउ मे
मइइ महाविज्जा अट्टमहापाडिहेरसहियाणं सयलकलाघराणं सज्जोजादरूवाणं चउतीसातिमयविसे-
सभंजुत्ताणं वत्तीसेद्विंदमणिमउडमत्थयसहियाणं सयल्लोयस्स संतिपुट्टिकृष्णाणाओ आरोगाकराणं
वत्तेद्विवासेयचनहरिसिमुणिजदिअणागारोवगूढाणं उहयलोयसुहयफल्यराणं थुइसयसहस्सणिलयाणं
पारापरमप्याणं अणाइणिरुणाणं वल्लियाहुवल्लिसहिदाणं वीरवीरे ओ हां क्षां सेणवीरे वड्डुमाणवीरे हंसं
नगंतं वराइएज्जसिगळेभमयाणं सस्सदवंमपइट्टियाणं उसहाइवीरिमंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालप-
इट्टियाणं इत्थ सण्णिहिदा मे भवंतु मे भवंतु ठ ठ क्ष क्ष स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः ।

येनोन्मील्य समस्तवस्तुविशदोद्भासोद्भटं केवल-
ज्ञानं नेत्रमदंशिशुक्तिपदवी भव्यात्मनामृव्यथा ।
तस्यात्रार्जुनभानार्पितसिता क्षीराज्यकर्पूरसुक्

वक्रस्वर्णशलाकया प्रतिकृतौ कुर्वे हगुन्मीलनम् ॥ १८४ ॥

राजन मिधि भूई । अब केवलज्ञान कल्याणका स्थापन करते हैं—“ इत्यथु ” इत्यादि श्लोक
मया भो उगहा ” इत्यादि श्रीगुरुद्वाराटन मंत्र बोलकर भगवानके मुखको उघाड़े ॥ १८३ ॥
“धनो” इत्यादि तथा “भो नमो” इत्यादि नेत्रोन्मीलनमंत्र बोलकर नेत्रोंको उघाड़े ॥ १८४ ॥

ओं तमो अरहंताणं अभियरसायणं विमल्लेत्याणं संति त्रुट्टि पुट्टि वरव सम्भादिट्टणिं वृषधं
अमयवरसनं स्वाहा । नेत्रोन्मालिनमंत्रः । अथ गुणाध्यारोपणं ।

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यत्वयोर्दीपव—

च्चित्तं द्योतकमर्हतः समुदभूत्ते हक् चिदो ये च यत् ।

तद्व्यापारनिर्वधि वीर्यमपि यत्सौख्यं तदव्याकुली—

भावोऽनंतचतुष्टयं तदिह तद्भिन्ने न्यसाम्यांतरम् ॥ १८५ ॥

अनंतज्ञानादिचतुष्टयप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोक्षमांगे चतुःपुष्पीमारोपयेत् ।

सौभिक्षं भवतिस्म योजनशतं यत्संसदं सर्वतः

सार्धक्रोशशुगोञ्छितक्षितितलं यश्चै स्पृहं सद्व्रतम् ।

यथेष्टास्वसितांगसंगवशतोप्यप्राणघातोर्गिनां

या तावत्त्यपि विग्रहस्य कवलाहारं विनैव स्थितिः ॥ १८६ ॥

हुंढामप्यवसर्पिणीं प्रतिवदन् यो नोपसर्गोद्भव—

स्तैजोवैभवतश्चतुर्मुखतया वीक्ष्यैकमुख्येपि या ।

अब गुणोंकी आरोपणविधि कहते हैं—“यत्सामान्य” इत्यादि बोलकर अनंतज्ञान आदि अ-
नंत चतुष्टयकी स्थापनाकेलिये प्रतिमांके मस्तकके ऊपर चार पुष्प चढावे ॥ १८५ ॥ “सौ-

त्रिधा स्वप्यखिलासु यः परिवृष्टीभावो दृढः सर्वदा
यच्छायाविरहस्तिरश्चरदिनेऽप्यंगे क्षिपेयेपि च ॥ १८७ ॥

पक्षस्पंदविपर्ययोऽनिशमृतं व्याधेः प्रयत्नाच्च यो
यो मूर्तेर्नखकेशद्वयुपरमो मर्त्यप्रकृत्यत्ययात् ।

ते घातिक्षयजा दशाप्यतिशया बाह्याश्च चेतश्चमत्-

कारोद्रेककृतो निनस्य निहिता विधे मयात्राधुना ॥ १८८ ॥

घातिक्षयजशातिशयस्यापनार्थं पीठिकायां दश पुष्पाणि क्षिपेत् ।

धूलीशालोऽतः क्षितौ चैत्यगंह्रसादालयो नाट्यशालाः सरांसि ।

मानस्तंभाश्चाधिदिग्ब्रीथ्यतोर्णः पूर्णं खेयं वेदिरम्यं विदिक्षु ॥ १८९ ॥

वेदीभूया पुष्पवाट्यस्तर्तोतो नाट्याशोकाद्याद्यभूर्हेमशाला ।

वेदीरुद्रावैध्वजोर्वाशतारप्राकारतो नाट्यकल्पद्रुमोर्वी ॥ १९० ॥

वेदीद्भ्रातः स्तूपदिव्यालयोर्वीयत्पाद्युर्ध्वितः सनाद्यार्कशाला ।

तन्मध्येऽर्हंगंधकुट्यासने भाद्यत्रास्थानीं तामिह स्थापयामि ॥ १९१ ॥

भिक्षं' इत्यादि तीन श्लोक बोलकर केवलज्ञानके समय होने वाले दस अतिशयोक्ति स्थाप-
न करनेके दस कुलोंको घेवीपर चढावे १८६ । १८७ । १८८ ॥ "धूली" इत्यादि तीन

समवसरणस्थापनार्थं प्रतिमायाः समंतात् पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । इति समवसरणस्थापनम् ।

उपानीयं यतोदैवैर्देवदेवातिशायिनः । चतुर्दशाश्रुता भावाः स्थापयामीह तानपि ॥ १९२ ॥
ब्रुवतोर्द्धसर्वाङ्गि मागधोक्तिमयी प्रभोः । सभायामन्वकार्यत मागधैर्वागिहास्तु सा ॥ १९३ ॥
जातिकारणवैरेकधस्मरेष्याश्रमे पुष्यन् । यया मीतिकरा भर्तुमक्तान् मैत्रीह भातु सा ॥ १९४ ॥
सर्वतुसंपद्वाजिष्णु दुमा रत्नमयी ब्रुवंत । या गिनाब्दतलासार्जि मशुभक्त्यास्तु सा मशुः १९५ ॥
यो विस्रसा विहरति प्रभौ मृद्धतिलोन्ववात् । यश्चाश्रुत्परमानंदः सर्वेषां तामिहापि तौ ॥ १९६ ॥
संमार्जनं योजनं यद्भोजिनाग्नेनिलैः कृतम् । या गंधोदकदृष्टिश्च मैथैस्ते भवतामिह ॥ १९७ ॥
यांतं तं सर्वतः पद्याः पंक्तिद्वात्रिशता तताः । सप्तसोधपदोश्चैको यत्तत्पद्यायनं त्विदम् १९८ ॥
त्रिभुवैभवनिध्यानहृषिता पुलकानि च । फलभारानतत्रीहिव्याजाद्भूया सा त्विह ॥ १९९ ॥
प्रभोर्दिशावसंहर्षोद्यन्नैर्मुख्यं दशुर्दिशः । तद्योगादिव यत्सं च प्रसन्नं तद्भवत्विवह ॥ २०० ॥
वसप्रदं त्रिभुमत्तुमेतैतत्पभितो व्ययुः । यद्भावनाः समस्तान्यदेवाज्वनं तदस्त्विवह ॥ २०१ ॥
रत्नरुक् चक्रदीपारसहस्रेण रवि क्षिपन् । धर्मचक्रं चचाराग्रे यत्प्रभोस्तत्स्फुरत्विदम् ॥ २०२ ॥
छत्रचापभृंगारकुंभाब्दव्यजनध्वजान् । स्वसुप्रतिष्ठान् यानिद्रो मर्तुस्तेनेत्र संतु तो ॥ २०३ ॥

श्लोक बोलकर समवसरण स्थापन करनेके लिये प्रतिभाके चारोंतरफ पुष्प और अक्षत फेंके ॥ १८९ । १९० । १९१ ॥ “ उपानीयं ” इत्यादि बारह श्लोक बोलकर दे- नकरन अतिशयोक्तिसे स्थापन करनेकेलिये देहाण्य चौदह पष्प चढावे ॥ १९२ से २०३ ॥

चतुर्दशदोषनीतातिशयस्थापनार्थं पीठिकायां चतुर्दश पुष्पाणि क्षिपेत् । इति दिव्यातिशय-
स्थापनम् ।

स्पृश्याः स्पृशतो नापस्त्रिर्यन्नामापि तथापि तम् । येनेन्द्रो यष्टभक्त्या तत् प्रातिहार्याष्टकं त्विदम् ॥
अष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनाय पीठिकायामष्टपुष्पीं क्षिपेत् ।

रत्नाशुवर्धेन्द्रधनुर्व्यतास्या हरिवाहनम् । यचक्रे धर्मैकात्प्रा सिंहपीठं तदस्त्वदः ॥२०५॥
ओं सिंहासनश्रियै स्वाहा । सिंहासने पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

प्रवाद्यभेद्यो मेघौघध्वनिजिद्योजनं सद । व्यामुवन् यो न केनापि व्यथाद्येष सतदध्वनिः ॥
ओं ध्वनिश्रियै स्वाहा । सरस्वत्यां पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

यक्षैर्दोषूयमानार्हद्वैहं छायाछलाश्रिता । या चामरचतुःषष्टिर्नानदीतिस्म सास्त्वियम् ॥२०७॥
ओं चतुःषष्टिचामरश्रियै स्वाहा । चामरधारियक्षयोः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

चक्षुष्ये पश्यतां सप्त भासयत्यनिशं भवान् । भामंडले ब्रुडन् यत्र विश्वतेजांस्यदोस्तु तत् ॥
“ सृश्याः ” इत्यादि बोलकर आठ प्रातिहार्य स्थापन करनेकेलिये वेदीमें आठ पुष्प चढा-

वे ॥ २०४ ॥ “ रत्ना ” इत्यादि तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर सिंहासनके आगे पुष्प चढावे ॥ २०५ ॥ “ प्रवाद्य ” इत्यादि तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर सरस्वतीके आगे पुष्प चढावे ॥ २०६ ॥ “ यक्षै ” इत्यादि तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर चमर धारण करनेवाले यक्षोंके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २०७ ॥ “ चक्षुष्ये ” इत्यादि तथा “ ओं ” बोलकर भा-

ओं वामंङ्गलश्रियै स्वाहा । वामण्डले पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ।

रत्नरोचि नदद्भृंगस्वगोवातचलछतः । वित्रवाशोक्तीकृते व्यक्तं योऽशोको नटदेष सः २०९
ओं रत्नाशोकाश्रियै स्वाहा । रक्ताशोके पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ।

मुक्तमारोहमालंघि मुक्त्वा लंकूप लक्षणः । छत्रत्रयं स्मावत् श्रीनिधिं यन् व्यात्यदोस्तु तत् ॥
ओं छत्रत्रयश्रियै स्वाहा । छत्रत्रये पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ।

सभ्याः शृण्वन्त्वसभ्योक्तीर्मितीवातीव योध्वनत् । सार्धद्वादशकोटयुद्यद्वादित्रोयं स हुंदुभिः ॥
ओं दुर्दुभिः श्रियै स्वाहा । हुंदुभौ पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ।

गंगांभः सुभगे गुंजङ्गुं गौघा सुमनस्तमे । सुमनोभिः सुमनसां वृष्टिर्यां सर्ज सास्त्वसौ २१२
ओं पुष्पवृष्टिश्रियै स्वाहा । मालाविद्याधरयोः पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ।

इत्यष्टौ प्रातिहार्याणि प्रतिमार्यां जिनेशिनः । स्थापितानि च निर्घंतु भाक्तिकानां सदापदः ॥

मंदलके आगे पुष्पाञ्जलि चढावे ॥ २०८ “ रत्न ” इत्यादि तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर लाल अशोकके आगे पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे ॥ २०९ ॥ “ सुक्त ” इत्यादि तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर तीन छत्रोंकेलिये पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे ॥ २१० ॥ “ सभ्या ” इत्यादि तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर हुंदुभिवाजेकेलिये पुष्पांको क्षेपण करे ॥ २११ ॥ “ गंगांभ ” इत्यादि तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर पुष्पमाला धारण करनेवालोंके आगे पुष्पांको क्षेपण करे ॥ २१२ ॥ “ रत्यष्टौ ” इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे आठ पुष्पांको चढावे ॥

प्रतिमाश्रेष्ठपुष्पी क्षिपेत् । इत्यष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनम् ।

वंशे जगत्पूज्यतमे प्रतीतं पृथग्विधं तीर्थकृतां यदत्र ।

तद्धांछनं संव्यवहारसिद्धयै विवे जिनस्येदमिहोच्छिखाभि ॥ २१४ ॥

लांछने पुष्पांजलि क्षिपेत् ।

शक्रेण सत्कृत्य सुभाक्तिकत्वात् त्रातुं नियुक्तो जिनशासनं यः ।

कामान् दुहन्तीश जुषां यथास्वं प्रतिष्ठितस्तिष्ठतु सैष यक्षः ॥ २१५ ॥

यक्षोपरि पुष्पांजलि क्षिपेत् ।

तद्वत्स्वभूषेण्वतिवत्सलत्वाभिवारयंती दुरितानि नित्यम् ।

यथोचितं शासनदेवतेति न्यस्तात्र यक्षी भ्रतपत्वसह्यम् ॥ २१६ ॥

शासनदेवतोपरि पुष्पांजलि क्षिपेत् ।

येनेह दर्शनविशुद्धयधिदैवतेन विश्वोपकाररसिकेन दिवीव गर्भम् ।

न्यूपे प्रमोदरसवर्षणपर्वणैत्र सर्वाणि सैष निहताद् दुरितानि नोऽर्हेन् ॥ २१७ ॥

॥ २१३ ॥ “वंशे” इत्यादि बोलकर चिन्हके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ “शक्रेण” इत्यादि बोलकर यक्षके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ “तद्वत्” इत्यादि बोलकर शासनदेवताके ऊपर पुष्पांजलि चढावे ॥ २१६ ॥ “येने” इत्यादि पांच श्लोक

आधीभिराधिभिरवाविषयीकृताया निर्गत्य मातुरुदराज्जनयन् मुदं यः ।
 लोकोत्तराणि ब्रुमुजेत्र सुखान्यजस्रं श्रेयांसि स जयतु न सदायम् ॥ २१८ ॥
 समयाधिगमास्तमोहतंद्रे स्वयमुद्धृद्य झटित्यपास्तसंगम् ।
 प्रशमैकरसो चरत्तपो यः स जिनीयं हरतां भवज्वरं नः ॥ २१९ ॥

यः सम्यक्त्वरमावगाढगुणंभात्समं वेदिता
 द्रष्टा विश्वप्रुपेक्षितात्परमानेदोध्यतिष्ठिरम् ।
 स्फूर्जतीर्थकरत्वनामसुकृतोद्रेकादनुप्राणतीं
 दिव्यां सभ्यसमीहितार्थकथनीं नस्तत् स्फुरत्वेप नः ॥ २२० ॥

योऽष्टादशशीलसहस्रसंयुक्तैश्चतुरशीतिगुणलक्षैः ।
 परिणम्य कृत्स्नकर्मच्युतोऽष्ट भजते गुणान् सचेहास्ताम् ॥ २२१ ॥
 एतत्पंचकं पठित्वा कल्याणपंचकस्थापनाभिव्यक्तये प्रतिमायां पुष्पाजलि क्षिपेत् ।
 इति सिद्धामरसाक्षाज्जीवन् मुक्तिश्रियं स्वसात्कृत्य ।
 भजतो जगतो पत्युः कंकणमिह मोक्षयाम्येषः ॥ २२२ ॥

बोलकर पांचकल्याणोंके प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २१७ से
 २२१ ॥ “ इति ” इत्यादि श्लोक तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे पुष्प क्षेपण

ओं “ सत्तत्त्वरसस्कारं अरहंतांणं णमोत्ति भवेण । जो कुणइ अण्णमणो सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ” ॥ कंकणमोक्षणं । ॐ “ केवलणणदिवायरकिरणकळावप्पणासियण्णणो । णव केवललद्धुग्गमसुज्जणियपरमप्पववएसो” असहायणणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोएण । जुत्तोत्ति सज्जोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो” ॥ इत्येषोऽर्हत्साक्षाद्ब्रावतीर्णो विश्वं पात्विति स्वाहा । प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अर्हद्देवसाक्षात्करणविधानम् । ॐ “ खवियघणघाइक्कमा चउतीसतिसयपंचकह्हाणा । अट्टवरपाडिहेरा अरहंता मंगलं मज्झ ” भूयासुरिति स्वाहा ॥ परमोत्सवेन महार्धमवतारयेत् ।

सिद्धश्रुतचरित्रर्षिशांतिभक्तिभिरन्विताः । केवलज्ञानकल्याणक्रियां कुर्वंतु याजकाः ॥२२३॥

इति केवलज्ञानकल्याणकस्थापनविधानम् ।

न्यस्यनिर्वाणकल्याणं सूत्रोक्तविधिना ततः । सिद्धश्रुतचरित्रर्षिशिवशांतीन् स्तुवंतु ते ॥२२४॥

इति निर्वाणकल्याणस्थापनम् ।

करे ॥ २२२ ॥ यह अर्हत प्रश्रुका साक्षात्करण हुआ । “ ॐ ” इत्यादि स्वाहातक बोलकर बहुत उच्छ्रवके साथ महार्ध चढावे ॥ इसप्रकार प्रतिष्ठा करनेवाले सिद्ध श्रुत चरित्र ऋषि शांति भक्तियों सहित केवलज्ञानकल्याणकी क्रिया करें । २२३ ॥ इसतरह केवलज्ञानकल्याणकी स्थापना विधि हुई ॥ उसके बाद वे ईन्द्र शास्त्रकथित विधिसे निर्वाण कल्याणका स्थापन करके सिद्ध श्रुत चरित्र ऋषि शिव शांति स्तुतिका पाठ करें ॥२२४॥ जिसतरह

तथा सामान्यतोर्विने गुणाधारोप्यमर्हताम् । यथास्त्वं च पृथक्कूल्यं स्वर्गावतरणादिकम् २२५

अयं गुह्यमितामनेन विधिना जैनीं प्रतिष्ठाप्य ये
शास्त्रोक्तां प्रतिमां भजन्ति विधिवशित्याभियेकादिभिः ।

तेऽर्हन्नक्तिहृद्बानुरंजितधियो भुक्त्या शिवाधर-

ग्रामण्योभ्युदयावलीरनुभवंत्यात्यंतिकीं निर्दृतिम् ॥ २२६ ॥

इत्याशाधरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि जिनप्रतिष्ठाविधानीयो
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

स्वर्गसे अवतार लेना आदि क्रियायें हुई हैं उसीतरह अर्हंतके प्रतिविषमं गुणाविकी स्थाप-
ना करनी चाहिये ॥ २२५ ॥ इसतरह निर्वाण कल्याणकी स्थापनाका विधान हुआ । जो
अंशुप्रप्रमाण शास्त्रोक्त जिन प्रतिमाको भी इसी पूर्वकथित विधिसे प्रतिष्ठित करके हमेशा
अभियेकादि विधिसे पूजते हैं वे सुसुधु इस लोकमें उत्कृष्ट भोगोंको भोगकर वादमें
अनंतसुखरूप मोक्षको पाते हैं ॥ २२६ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें
अर्हतप्रतिष्ठाकी विधिको करनेवाला चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



अथातो अभिषेकादिविधानान्यनुसूत्रयिष्यामः । तद्यथा-

आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां लब्धां चतुःकुंभयुक्
कोणार्यां सकुशथ्रियां जिनपतिं न्यस्तां तमाप्येष्टादिकम् ।
नीराज्याबुरसाज्यदुग्धदधिभिः सिक्त्वा कृतोद्धर्तनं
सिक्तं कुंभजलैश्च गंधसलिलैः संपूज्य नुत्वा स्मरेत् ॥ १ ॥

इत्यभिषेकविधानं । अथ चलजिनेन्द्रप्रतिपिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रिया । तत्रेयं कृत्यप्रतिज्ञा ।
भगवन्मोस्तु ते एषोऽहं चलजिनेन्द्रप्रतिपिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रिया । तत्रेयं कृत्यप्रतिज्ञा ।
अथ चलजिनेन्द्रप्रतिपिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रियायां कुर्यामिति । शेषं समानम् ।
भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिक्रायोत्सर्गं करोम्यहं इत्युच्चार्य सामर्थिकदंडचतुर्विंशतिस्तवै पठित्वा
सकलकर्मक्षयार्थं

अब अभिषेक आधिकी विधि कहते हैं । वह इसतरह है-वेदीके चारों कोनोंमें जलसे भरे
हुए घड़े रखकर भूमिको पवित्रकर वीचमें सिंहासनपर जिन प्रतिमाको विराजमान कर
पंचाश्रुताभिषेक करे । उसके वाक् उन जलपूर्ण घड़ोंसे अभिषेक करके पूजा करे ॥ यह अ-

सिद्धभक्ति प्रयुंजीत । एवं चैत्यपंचगुरुशान्तिसमाधिभाक्तिरपि विदध्यात् । अय स्थिरे तं सिद्धभक्तिं कायो-
 त्सर्गं करोम्यहमित्युच्चार्य सामायिकान्निविधिं विधाय सिद्धचरित्रशांत्तिसमाधिभक्तीः प्रयुंजीत । अत्र
 केचिच्चरित्रभक्त्यनंतरं चैत्यपंचगुरुभक्ती अपि प्रयुंजते । इति क्रियाप्रयोगविधानं । “ ओं
 जिनपूजामाहूता देवाः सर्वे विहितमहाभहाः स्वस्थानं गच्छत २ जः जः ” इति विसर्जनमंत्रोच्चारणेन
 यागमंडले पुष्पाञ्जलि वितरिं देवान् विसर्जेत् ।

इह चहिरित्तरप्रत्ययेन बुधानां मखविधिपरिपाठ्या भावशुद्धिं विधाय ।

चहिरिव रचिविभ्रं ध्वांतमध्यात्मस्यस्तु स्फुरत पुनरखंडं तत्परं ब्रह्म नोद्य ॥ २ ॥
 अनेन परब्रह्माध्यात्ममध्यासयेत् । इति देवताविसर्जनविधानम् ।

भिषेकाविधिं ह्यहं ॥ १ ॥ जिनैन्द्रकी चल प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नान क्रिया होती है ।
 वहां ऐसी करनेकी प्रतिज्ञा होती है । हे भगवन् आपको नमस्कार है यह मैं चल जिन प्र-
 तिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नपन क्रिया करता हूं । अन्य सवविधि समान है । “चल ”
 शत्यादि “ करोम्यहं ” तक बोलकर सामायिक, चौबीसजिनस्तुति पढकर सिद्धभक्ति करे ।
 इसीतरह चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति, शांति समाधिभक्ति भी करे । और स्थिर प्रतिमार्थे “त्तं”
 शत्यादि “ करोम्यहं ” तक बोलकर सामायिकआदि विधि करके सिद्ध चारित्र शांति समा-
 धिभक्तियोंको करे । यह क्रियाओंका प्रयोग कहा । “ ओं ” इत्यादि विसर्जनमंत्र बोलकर
 पूजाके मांडलेपर पुष्पाञ्जलि चढाकर देवोंका विसर्जन करे । “ इह ” इत्यादि श्लोक बोल-

शश्वचेतयते यदुत्सवमिमं ध्यायति यद्योगिनो
येन प्राणिति विधिमिद्रनिकरा यस्मै नमस्कुर्वते ।
वैचित्री जगतो यतोस्ति पदवी यस्यंतरप्रत्ययो
शुक्तिर्यत्र लयस्तनोतु जगतां शान्तिं परं ब्रह्म तत् ॥ ३ ॥

अनेन जिनत्रे शातिधारा प्रकल्प्येत्यं बलिं दद्यात् । ओं अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः
सूरिभ्यो नमः पाठकेभ्यो नमः सर्वसाधुभ्यो नमः । अतीतानागतवर्तमानत्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुण-
पर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदकसम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानचारित्र्याद्यनेकगुणगणधारपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः । ओं
पुण्याहं ३ प्रीयतां ६ ऋषभादि महति महावीर वर्धमानपर्यंतपरमतीर्थकरदेवान् तत्समयपालिन्यो-
ऽप्रतिहतचक्रकेश्वरीप्रभृतिचतुर्विंशतिशासनदेवताः गोमुखयक्षप्रभृतिचतुर्विंशतियक्षा आदित्यचंद्र-
मंगलबुधवृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतुप्रभृत्यष्टाशीतिप्रहाः वासुकिशंखपालककोटपद्मकुलिकानंततक्षकमहा
पद्मनयविजयनागाः देवनागयक्षगर्भर्षवह्वराक्षसभूतव्यंतरप्रभृतिभूताश्च सर्वेष्येते जिनशासनवत्सलाः

कर परब्राह्मका मनमें ध्यान करे ॥ २ ॥ यह देवताविसर्जनकी विधि हुई । “ शश्व ” इत्यादि
बोलकर जिनदेवके आगे शान्तिधारा छोड़के इसप्रकार पूजन करे ॥ ३ ॥ “ओं अर्ह” इत्यादि
बोलकर पुष्प क्षेपण करे । इसमें राजा प्रजा कुटुंब आदि सब जीवोंके कल्याण होनेका
निश्चयन किया जाता है । इसीको पुण्याहवाचन भी कहते हैं “ये सामग्री” इत्यादिसे अर्हत्से

ऋष्यार्थिकाश्रावकश्राविकायष्टयाजकराजमंत्रिपुरोहितसामंतारक्षिकप्रभृतिसमस्तलोकसमूहस्य शांति-
 वृद्धिपुष्टितुष्टिक्षेमकल्याणम्बायुरारोग्यप्रदा भवंतु । सर्वसौख्यप्रदाश्च संतु । देशे राष्ट्रे पुरे च सर्वदैव
 चौरारिमारीतिदुर्भिक्षावयहविघ्नौघदुष्टग्रहभूतशाकिनीप्रभृत्यशोषानिष्टानि प्रलयं प्रयांतु, राजा विजयी
 भवतु प्रजासौख्यं भवतु, राजप्रभृतिसमस्तलोकाः सततं जिनधर्मवत्सलाः पूजादानव्रतशीलमहामहोत्सव-
 प्रभृतिपूछता भवंतु, चिरकालं नदंतु । यत्र स्थिता भव्यप्राणिनः संसारसागरं लील्योत्तीर्यानुपमं
 सिद्धिसौख्यमनंतकालमनुभवति तच्चाशेषप्राणिगणशरणभूतं जिनशासनं नंदत्विति स्वाहा ।

ये सामग्रीविशेषदृढिमभरहवात्क्षिप्तदुर्वारवैरि-

त्रातप्रेष्यत्पताकासततपरिचितज्ञानसाम्राज्यलीलाः ।

भूतार्थोद्भेदकंदव्यवहरणघटोद्भिद्यपृक्तौक्तियुक्ति-

क्षिसप्तं मन्यमाना जगदतिपुनते ते जिनाः पांतु विश्वम् ॥ ४ ॥

स्फूर्जच्छलशुद्धिर्भरमसितदशासाकृतैःपतंगाः

स्वांगकाराक्षरैकक्षणस्यरनिराकारसाकारचित्काः ।

व्योम्नो विश्वैकधात्रः कृततिलकरुचः प्रष्टमात्मभरीणां

व्यंजंतः स्वं सदान्यज्जिनसमयजुषाः संतु सिद्धाः शिवाय ॥ ५ ॥

कल्याण होनेका र्चितवन है ॥ ४ ॥ “स्फूर्ज” इत्यादि बोलकर सिद्धोंसे कल्याण प्रार्थना॥५॥

श्रुतधृतिवलासिद्धाः पंचधाचारगृह्यैः शिवमुखमनसो ये चारयंतश्चरंति ।
शरसभरसंविद्धूरयः स्वरयस्ते विदधतु जिनधर्मराराधनाशिष्टसिद्धिम् ॥ ६ ॥

येऽगप्रविष्टत्रहिरंगजिनागमाब्धिपांगमा निरतिचारचारित्रसाराः ।

धर्मं यथावदनुशासति शिष्यवर्गान् पुष्णंतु पाठकवृषा जगतां नमस्ते ॥ ७ ॥

बुद्ध्या ध्यानात्परमपुरुषं तस्वतः श्रद्धधानाः ये विद्वांसःस्वयमुपरतप्रत्यनीकप्रतापम् ।

एकोक्षुर्वत्युदयदशयानंदनिष्पीतचित्तास्ते भव्यानां दुरितमनिशं साधवः संहरंतु ॥ ८ ॥

ये मंगललोकोत्तमशरणात्मानं समृद्धमहिमानः ।

पांतु जगंत्यर्हत्सिद्धसाधुकेवल्युपज्ञधर्मास्ते ॥ ९ ॥

सूते भेदाभेदरत्नत्रयात्मानाद्यंताद्यंताथोदितौ श्रुक्तिमुक्ती ।

सोस्मिन् राजाभात्यपौगदिलोकान् धर्मस्तन्वन् धर्मपायादपायात् ॥ १० ॥

“ श्रुत ” इत्यादि बोलकर आचार्यसे इष्टसिद्धिकी प्रार्थना ॥ ६ ॥ “ योग ” इत्यादि बोलक-

र उपाध्यायोसे प्रार्थना ॥ ७ ॥ “ बुद्ध्या ” इत्यादि बोलकर साधुपरमेष्ठीसे इष्टप्रार्थना ॥ ८ ॥

“ ये मंगल ” इत्यादि बोलकर अरहंत सिद्ध साधु धर्म-इन चार मंगल लोकोत्तम शरणसे

इष्टप्रार्थना करे ॥ ९ ॥ “ सूते ” इत्यादि बोलकर धर्मसे इष्टप्रार्थना करे ॥ १० ॥ “ यास्ती-

यास्तीर्थकृत्वपदतत्फलतन्मिच्चिन्तित्याशुररक्तमतयः प्रभ्रुमाभजंति ।
ता रोहिणीमभृतयो दश षट् च विद्यादेव्यः सप्तमनिवहस्य दुहंतु कामान् ॥ ११ ॥

पुरैर्त्नाद्भूतिपूते निखकरचतुर्वर्णसर्वमणूते

संभृताः क्षत्रवंशे तु परम परमब्रह्मालिप्सा प्रशस्याः ।

पूज्यंते स्वामिभक्त्या त्रिदशपरष्टुर्दुर्गैर्भजन्मोत्सवे याः

सद्भयो द्विर्दशः श प्रददतु मरुदेव्यादयास्ता जिनांवाः ॥ १२ ॥

लोके यथेष्टमणिमादिगुणाष्टकेन कीडंति ये प्रमुदितप्रमदासहायाः ।

पेंद्रध्वजादिजिनयज्ञविधावतंद्रा द्वात्रिंशदादधतु ते सुकृतांशमिद्राः ॥ १३ ॥

ये गोगुखप्रमुखयक्षपृष्ठा वृषादितीर्थंकरक्रमसरोरुहचंचरीकाः ।

तद्ब्रह्मवर्चसमजस्रमुदग्रयंति ते षट्चतुष्कमितयः सुरद ? भव्यान् ॥ १४ ॥

स्फुरत्प्रभावा जिनशासनं याः प्रभावयंत्यो विलसंति लोके ।

यक्षयश्चतुर्विंशतिराईतानां चक्रेश्वराद्या ह्युनतां रुजस्ताः ॥ १५ ॥

र्थ ” इत्यादि बोलकर सोलह विद्यावेवीयोसे इष्टप्रार्थना करे ॥ ११ ॥ “ पुरै ” इत्यादि
श्लोक बोलकर चौबीस जिनमाताओंसे इष्ट वस्तुकी प्रार्थना करे ॥ १२ ॥ “ लोके ” इत्यादि
बोलकर बत्तीस इंद्रोंसे इष्टप्रार्थना करे ॥ १३ ॥ “ ये गोगु ” इत्यादि बोलकर चौबीस य-
क्षोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १४ “ स्फुरत्प्र ” इत्यादि बोलकर चक्रेश्वरी आदि चौबीस यक्षि-

आजिष्णुशक्तिविभवा भवसिधुसेतुसर्वशशासनविभासनवद्धकशाः ।

याः पूजयंति विविधाद्भुतसिद्धिकामास्ताश्चाष्टविष्टपमवंतु जयादिदेव्यः ॥ १६ ॥
शक्रोदेशात्तीर्थकृद्देवमातूर्याः सेवंते स्वस्वयोग्यैर्नियोगैः ।

ताः सर्वज्ञाराधनातत्पराणां संत्वष्टपि श्रेयसे श्यादिदेव्यः ॥ १७ ॥

अन्येपि दौवारिकलोकपालग्रहोरगानाष्टतयसमुख्याः ।

देवा यथास्वं प्रतिपत्तिदृष्टा निम्नंतु विद्मन्तु विद्मन्तु जिनभाक्तिकानाम् ॥ १८ ॥
तद्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः प्रदेशः संतन्यतां प्रतपतु प्रततं स कालः ।

भावः स नंदतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्त्वरुचिमाप्तगवी नरस्य ॥ १९ ॥
किं बहुना ।

शांतिः स तनुतां समस्तजगति संगत्वतां धार्मिकैः

श्रेयःश्री परिचर्द्धतां नयधुराधुर्यो धरित्रीपतिः ।

योंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १५ ॥ “ आजिष्णु ” इत्यादि बोलकर जया आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १६ ॥ “ शक्रा ” इत्यादि बोलकर श्री आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १७ ॥ “ अन्येपि ” इत्यादि बोलकर इनके सिवाय अन्य देवताओंसे प्रार्थना ॥ १८ ॥ “ तद्रव्य ” इत्यादि बोलकर द्रव्य क्षेत्र काल भावोंके शुभ मिलनेकी प्रार्थना ॥ १९ ॥ बहुत कहनेसे क्या, सब जगत्में शांति रहे, धर्मात्माओंकी संगति मिले, कल्याण करनेवाली लक्ष्मी

सद्विद्यारसश्चाद्भिरंतु कवयो नामाप्यथः स्याजु मा
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्बर्हिताम् ॥ २० ॥

एतेत्पार्थपरा शक्राः छत्रचामरशालिनीम् । भृंगारहस्ता युक्तांबुधारापूतपुरो धराम् ॥ २१ ॥
जिनार्चामनुयातोत्रे प्रनृत्यत्कलत्रांगनाः । महान् तूर्यस्वनेर्भोग्यजयकोलाहलोत्वणैः ॥ २२ ॥
पूरयंतो दिशः सप्तधान्यपुष्पाक्षतादिभिः । कल्पयंतौ बालं शान्त्यै त्रिःपरीयुजिनालयम् २३
इति बलिविधानम् ।

अथाचार्योऽभिषेक्तव्यः फलपुष्पाक्षतद्युतः । जिनगंधांबुक्कुंभेन यष्ट्रे दद्यात्तदाशिषम् ॥ २४ ॥
तद्यथा ।

आयुस्तन्वंतुःतुष्टिं विदधतु विधुनंत्वापदो भंतु विघ्नान्
कुर्वत्वारोग्यधूर्वाबलयविलासितां कीर्तिवल्लीं सृजंतु ।

वढे, न्यायमार्गपर चलनेवाला राजा हो, कविजन उत्तम विद्यारसको प्रगट करें, पापका नाम
भी न रहे, अन्य विशेष प्रार्थना क्या करें संसारमें एक मोक्षको दाता जैनधर्मकी ही जय हो
॥ २० ॥ आत्मकल्याण करनेमें लीन, छत्र चमर लिये हुए, स्वच्छ जलसे भरी झाड़ीको हाथमें
लिये हुए, जिनमूर्तिके आगे दृत्य करते हुए ईंद्र, सात तरहके धान्य पुष्प अक्षत आदि पूजा
द्रव्यसे पूजा करते हुए जिनमंदिरकी तीन परिक्रमा दें ॥ २१ ॥ २२ ॥ यह बलिविधान
हुआ । उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य गंधोदक अक्षत पुष्प फल वीप धूपसे प्रतिष्ठाविधि करनेवाले

धर्मं संवर्धयंतु श्रियमभिरमयंत्वर्षयंत्विष्टकामान्
कैवल्यश्रीकटाक्षानपि जिनचरणाः संजयंतु सदा वै ॥ २५ ॥

आज्ञैश्वर्यमकार्यकार्यविचर्यैः संतानवृद्धिर्जयः

सौभाग्यं धनधान्यवृद्धिरभयं निःशेषशत्रुक्षयः ।

पांडित्यं कविता परार्थपरता कार्तज्ञमोजस्विता

मानित्वं विनयो जयश्च भवतादर्हत्प्रसादेन वः ॥ २६ ॥

कांताः कांतिकलानुरागमधुराः पुण्यास्त्रिवर्गोद्धुरा

भृत्याः स्वाम्यनुरक्तिशक्तिरुचिरा इच्योतन्मदाः कुंजराः ।

वाहास्तर्जितशक्रस्वर्यतुरगाः शौर्योद्धताः पत्तयो

भूयास्तुर्भवतां जिनेद्रचरणांभोजप्रसादात्सदा ॥ २७ ॥

गोपनीयमौदार्यमजर्यमार्यशौर्यं सशौडीर्यमवार्यवीर्यम् ।

धैर्यं विपद्यार्जवमार्यभक्तिः संपद्यतां श्रीजिनपूजनाद् ॥ २८ ॥

बंदको आशीर्वाद दे ॥ २४ ॥ वह एसे ह कि " आशु " इत्यादि ग्यारह आशीर्वाचक श्लोक पढकर यष्टके शिरपर अक्षत आदिका क्षेपण करे ॥ २५ से ३५ ॥ यह आशीर्वाद विधि दुर्ग । उसके बाद यष्टा " यद्योचितं " इत्यादि बोलकर जमेक आदिक यद्वादीक्षाके

भवतु भवतामर्हन्नक्त्या सदा शुद्धितं मनो
 ब्रह्मपुपचिता चौरौचित्यं प्रदासेन परस्परः ।
 प्रणयविवशैः स्वैसंवैसौदयागयमीहितं
 स्थितिरपि चित्ते प्रज्ञापराधपराहतिः ॥ २९ ॥
 हृक्संशुद्धिरतो न्यतोस्तु भवतामर्हत्प्रतिष्ठाविभे
 जातु कृष्टि कथंचिदीषदपि मा शीलं व्रतं भ्क्यायतु ।
 दूरादेव शिरस्यधीरमरयो बधंतु देवांजलिं
 प्रेरणा सहुणसंपदा च सुहृदःश्लिष्यंतु पुणंतु च ॥ ३० ॥
 यष्टूणां याजकानां प्रतिबुतिकृतामभ्यनुज्ञायकानां
 श्रूयस्यांतःपुरस्य क्षितिपतनुशुवां मंत्रिसेनापतीनाम् ।
 सामंतानां पुरोधः पुरविषयवनादिस्थवर्णाश्रमाणां
 सर्वेषामस्तु शान्त्यै सततमयमिह स्थापितो विश्वनाथः ॥ ३१ ॥
 विचित्रैः स्वैर्द्रव्यं प्रतिसमयमुद्यद्विपदपि
 स्वरूपादुद्यौर्लैर्जलमिव मनागप्यविचलम् ।

चिन्होंको गुरु (आचार्य) के चरण कमलोंके आगे रखकर नमस्कार करे । यह यज्ञदीक्षा

अनेहो माहात्म्याहितनवनवीभावमखिलं
 प्रणिष्वाणाः स्पष्टं युगपदिह ते पांतु जिनपाः ॥ ३२ ॥
 संयुज्यार्थिभिः संविभज्य च यथाचिद्येवमेवाथवा
 निर्विण्णास्तृणवद्विसृज्य कमलां स्वं स्वं स्वयं केऽपि ज्ञे ।
 संवेधामलकेवलचलीचदानंदे सदैवासते
 ते सिद्धाः प्रथयंतु वः प्रति शिवश्रीसद्विलासान् सदा ॥ ३३ ॥
 ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्त्वं भजति समरसास्वादमानान्यनीहा-
 दृत्त्या द्राणानुसर्पन्मरुदसु च कचानष्टमे ब्रह्मरंध्रे ।
 भूयत्यत्ताय मोहो मृत्तिमयति मनः केवलं चापि भाया-
 च्छून्यध्यानेन येषां प्रमदभरमिमे योगिनस्तन्वतां वः ॥ ३४ ॥
 नार्पत्यान् विस्मयांतर्हितपतनरुजौ दत्तशंषान्वितन्वन्
 निःश्रेणीकृत्य धोगं बलयितपृथुतन्मूलमाद्रोहितोद्भि ।
 श्रीकुंड्रंगुण्ठावनितरुशिलरा द्यौवतीर्णः स्ववर्ण-
 व्यासंगं संगमस्य व्यभितचहुमहाः वीरनाथः स वोव्यात् ॥ ३५ ॥

निमर्जनकी विधि पूर्व ॥ ३६ ॥ उसके वाद गुरुकी आज्ञासे शांति पाठ करके कार्यको

एता आशिषः पठित्वा यष्टुः शिरस्यक्षतान् क्षिपेत् । इत्याशीर्वादविधानम् ।

यज्ञोचितं व्रतविशेषद्वयं प्रतिष्ठन् यथा प्रतीद्वसहितः स्वयमे पुराधत् ।

एतानि तानि भगवज्जिनयज्ञदीक्षाचिन्धान्यर्थैष विसृजामि गुरोः पदाग्रे ॥ ३६ ॥

एतत्पठित्वा यज्ञोपवीतादियज्ञदीक्षाचिन्हानि गुरुपादभूले संन्यस्य नमस्येत् । इति यज्ञदीक्षा
विसर्जनम् । ततो गुर्वनुज्ञया शातिभक्त्या निष्ठापयेत् । अथ जिनप्रतिष्ठानिष्ठापनक्रियाया पूर्वाचार्यानु-
क्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजाबंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । शेषं पूर्वेषु ।
ततश्चैशान्यदिशमष्टदलकमलमालिल्य चैत्याभिमुखमेतत्पठित्वा पंचागं प्रणामादिकपालेभ्यो निजनि-
जमंत्रपूतयज्ञांगशेषेण सर्वशः पूजा दत्त्वा जिनगंधोदकतीर्थोदककलशैः सर्वशांतित्रयम्पः संज्ञावयेत् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाथ शास्त्रोक्तं न कृतं मया तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्यसादाज्जिनप्रभोः ॥ ३७ ॥

ततश्च क्षमापणविधिमममनुतिष्ठेत् ।

समाप्त करे । वह ऐसे है कि—“ अथ जिन ” इत्यादि “ करोम्यहं ” तक बोलकर समाप्ति
विधि करे । उसके बाद समाधि भक्ति करे । उसके बाद ईशानदिशामें आठ पत्रोंवाला
कमल बनाकर प्रतिमाके सामने “ ज्ञानतो ” इत्यादि श्लोक पढ़कर पंचांग प्रणाम करे ।
फिर पूजाकी वची हुई सामग्री सबको चढानेकेलिये देकर कलशोंसे जलधारा सब
विद्योकी शांतिके लिये चढावे । “ ज्ञानतो ” इत्यादिका अर्थ—हे जिनेंद्र मैंने जानकर अथवा
अज्ञानसे शास्त्रकथितरीतिसे जो किया नहीं की है वह सब आपके प्रसादसे समाप्त ही हो

चतुर्विधमहासंधं संतप्यार्हाहारभेषजैः । योग्योपकरणं दत्त्वा यथा संपूजयेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥
 अत्र ये द्रष्टुमायाता प्रतिष्ठाव्यापृताश्च ये । तार्क्षलगंधपुष्पाद्यैस्तान् संमान्य विसर्जयेत् ॥ ३९ ॥
 प्रतिष्ठाचार्यभानग्न्य तस्यात्मानं समर्प्य च । वल्लैराभरणाद्यैश्च संपूज्य क्षमयेत्ततः ॥ ४० ॥
 संमान्य सूत्रधारादीन् स्वर्णवस्त्राभभूषणैः । गांधवर्तकदीर्घांश्च यथाहं तत्समर्पयेत् ॥ ४१ ॥
 सार्वकालिकपूजार्थं भूसुवर्णोपणादिकम् । विचानुसारतो दद्यात्पूजोपकरणानि च ॥ ४२ ॥

इति क्षमापना ।

॥३७॥ उसके वाद क्षमा करानेकी विधि करे । वह इस तरह है-प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान जिनकल्याणक मद्योत्सवके वाद आहार औषध दानसे मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका-इन चारों संयोगको संतुष्ट करके और उनके योग्य धर्मसाधनके उपकरण (शास्त्र वगैरः) वेकर आप उनकी पूजा करे ॥ ३८ ॥ उसके वाद जो प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हों अथवा प्रतिष्ठाकी प्रतिष्ठा करानेके अभिप्रायसे आये हों उन सबको पान सुपारी फूलोंकी माला आविसे सत्कार करके जानेको कहे ॥ ३९ ॥ उसके वाद प्रतिष्ठाचार्यको नमस्कार कर उसको कुछ भेंट वेकर कपड़े और आभूषण आविसे संमानकर क्षमा कराये ॥ ४० ॥ प्रतिष्ठाके सहायक तथा गंधर्व व नृत्यकरनेवालोंको वस्त्र अन्न आभूषण और कुछ धन योग्यताके अनुसार दे ॥ ४१ ॥ उसके वाद जिनप्रतिष्ठाकी हमेशा पूजा होनेके लिये जमीन रुपया या कुछ जायबाद आमदनीके अनुसार दे कि जिसमें मंदिर पूजा हमेशा होती रहे और पूजाके उपकरण (वर्तन आदिक)

इत्यर्हत्प्रतिमान्यासविधिव्यासेन वर्णितः । तादृक्सामग्रथभविस्सौ मध्यवत्यर्पि कल्पितः ४३
तथा ।

कृत्वा पुराकर्म कृतमंडपादिप्रतिष्ठितिः । मंत्रैरेवार्चयित्वा च मंडलान्यखिलान्यपि ॥ ४४ ॥
प्रतिष्ठेयां निरुत्थ्यार्चां प्रयुक्तसकलक्रियः । संस्कृत्याकरशुद्ध्याथ वेदीपीठे निवेशयेत् ॥ ४५ ॥
कृत्वा कल्याणसंस्कारमालामंत्रादिरोहणम् । दत्त्वा तिलकमंत्राधिवासना संप्रकाशने ॥ ४६ ॥
सन्नेत्रोन्मीलने कृत्वा चाभिषवादिकम् । संक्षेपेणाय शक्तिश्चेद्युभक्तः स्थापयेत्प्रभुम् ४७
तत्रैकमेव सज्जायाद्यर्चयेद्भागमंडलम् । द्वास्थानंतरमत्रैव यजेच्च श्रयादिदेवताः ॥ ४८ ॥

वनवाकं दे ॥ ४२ ॥ दह क्षमावनीकी विधि समाप्त हुई ॥ इसप्रकार अर्हतकी प्रतिमाकी स्थापना
विधि विस्तारसे वर्णन की गई है । यदि उतनी सामग्री न हो तो मध्यमरीतिसे भी स्थापना
होसकती है ॥ ४३ ॥ वह इसतरह है । मंडपादि वनवाकर मंडलादिकी रचना कर उन सबको
केवल मंत्रोंसे ही पूजकर प्रतिष्ठा होनेवाली जिन प्रतिमाको आकर शुद्धि आदि कही गई
विधिसे संस्कारित करके वेदीके सिंहासन पर विराजमान करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ फिर
पांच कल्याण संस्कारमालारोपण तिलक अभिषेकादि करे ॥ यह मध्यमरीति है । जिस-
की थोड़ी शक्ति हो वह दो बार भोजनकी प्रतिज्ञा कर प्रभुकी स्थापना करे ॥ ४७ ॥ उस
के बाद एक यागमंडलकी पूजा करे फिर द्वारपाल और श्री आदि देवताओंकी पूजा करके
मंडपके बाहर शुद्ध स्थानमें ऊंचे आसनपर मूर्तिको विराजमान करके अभिषेक करे ।

ततो मंडपवाद्यैकोदेशीया सुसंस्कृते । कुर्यादाकरशुद्धिं तां शेषं मध्यवदाचरेत् ॥ ४९ ॥

इति मध्यमसंक्षिप्तप्रतिष्ठासुष्ठानविधानम् ।

प्रासादस्य ध्वजं चिन्हं तेनासौ शोभते यतः । शुभप्रदश्च सर्वेषां तस्मात्तमधिरोपयेत् ॥ ५० ॥
हस्तत्रिभागविस्तीर्णैर्ध्वजस्तथायतैर्दंडैः । बल्लोत्तमसुसंश्लिष्टैर्ध्वजं निर्मापयेच्छुभम् ॥ ५१ ॥
सितं रक्तं सितं पीतं सितं कृष्णं पुनः पुनः । यावत्प्रासाददीर्घत्वं तावत्संघट्टयेत् क्रमात् ५२
चंद्रार्धचंद्रमुक्तास्रकूर्किकिणीतारकादिभिः । नाना सदूपयुग्मैश्च चित्रैः पत्रैर्विचित्रयेत् ॥ ५३ ॥
अथच्छत्रत्रयं मूर्धस्तस्याधः पद्मवाहनम् । तस्याधः कलशं पूर्णं पार्श्वयोः स्वस्तिकं लिखेत् ५४
दीपदंडौ लिखेत्स्वस्ति शिखायाः पार्श्वशोस्तथा । पार्श्वयोरुपपत्रस्य श्वेतचामरयुग्मकम् ॥ ५५ ॥

आर वाकी क्रियाआंको अर्थात् क्षमावनी आदिको पूर्वकथित रीतिसे करे ॥ ४९ ॥
यह मध्यम ओर संक्षेपरीतिसे प्रतिष्ठाकी विधि कही गई है ॥ उसके बाद जिन मंदिरके
शिखरपर धुजाको चढावे उससे मंदिरकी शोभा होती है और सबको कल्याण
होता है ॥ ५० ॥ बारह अंगुल लंबी और आठ अंगुल चौड़ी मजबूत उसम कप-
डगी धुजा बनवावे ॥ ५१ ॥ धुजाका कपड़ा सफेद लाल सफेद पीला सफेद काला फिर
रसी क्रमसे रंगवाला तयार करावे ॥ ५२ ॥ धुजामें चंद्रमा माला घंटारियां तारे इत्यादि
अनेक चिन्ह बनावके चित्रित करे ॥ ५३ ॥ कलश सातिया वीपदंड छत्र चमर धर्मचक्र
लिंग्यकर धुजाके ऊपर जिनद्विवका आकार बनावे । उसमें एक छत्र लगावे । उस धुजामें

मूर्धाधो धवलच्छत्रे ध्वजे वा यक्षमालिखेत् । श्यामं चतुर्भुजं हस्तयुग्मेन रचिताजलिम् ५६
 पराम्प्यां दधतं मूर्ध्नि धर्मचक्रमृजुस्थितम् । जिनविद्योर्धमूर्धानि ह्येकछत्रसमन्वितम् ॥ ५७ ॥
 पदंढादिसंयुक्तं नानालंकरणान्वितम् । हस्तिपृष्ठसमारूढं सर्वज्ञाख्यामयुं लिखेत् ॥ ५८ ॥
 अशोकासननिर्यासचंपकात्रकदंबकाः । पूगवंशादयोऽन्येपि दंडस्य भवभूरुहाः ॥ ५९ ॥
 सादायायाममानार्धं त्रिभागं वा चतुर्धकम् । ध्वजदंडस्य मानं तद्यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥ ६० ॥
 प्रासादस्योर्ध्वतुर्गोशो वेदिका वेदिकस्थितम् । आधारं धनदंडस्य यथोक्तं परिकल्पयेत् ॥ ६१ ॥
 अथ मंडलमभ्यर्च्य संक्षेपाद् ध्वजदेवता । प्रतिमाप्यानादिसिद्धमंत्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६२ ॥
 स्वधियास्य ध्वजं स्तुत्वा तन्मंत्रेण धृतादिभिः । अशोकाश्वत्थवज्राद्यदर्भमालाभिवेष्टितम् ६३
 ध्वजदंडं सप्तभ्यर्च्य ध्यात्वा रत्नत्रयात्मकम् । तच्चूलिकां तथैवाभिमिच्य धीशक्तिरूपिणीं ६४
 संचित्य मंडपपुरो गते शाल्यादिपूरिते । पूजिते दधिदूर्वाधैस्तदूर्ध्वं स्थापयेद् दृढम् ॥ ६५ ॥

अशोक चंपा आम कदंब सुपारी वंश आविके वृक्ष चिन्हित करे ॥ ५४ से ५९ ॥ धजाके
 दंडेका प्रमाण शोभाके अनुसार होना चाहिये ॥ ६० वहु प्रमाण मंत्रिकी अंचारसे चौथाई
 हो तो अच्छा है । और वेदीके ऊपर भी धुजा चढाना चाहिये ॥ ६१ ॥ उसके बाव धुजाके
 मंडल और प्रतिमाकी स्तुतिकरके अनादिमंत्र (णमोकार मंत्र) को एकसौ आठवार जपकर
 धुजाको दंडमें लगाके “ ओं नमो ” इत्यादि ध्वजारोपणमंत्रको बोल शुभ लयमें शिखरमें

ध्वजश्च तुर्यसंधेषु तत्र संयोज्य संध्वजम् । ह्यात्वा सर्वगतज्ञानरूपमर्घेण मानयेत् ॥ ६६ ॥
 तप्तं दंडमुद्धृत्य प्रासादं परितःश्रिया । महत्या भ्रमयित्वा त्रिः सुलये मंत्रमुच्चरन् ॥ ६७ ॥

ओं नमो अरहंताणं स्वस्ति भद्रं भवतु सर्वलोकस्य शांतिर्भवतु स्वाहा । ध्वजारोपणमंत्रः ॥
 हिरण्यपयसाकर्णौ तस्याधारे समर्च्य च । प्रतिपर्व ध्वजं मुंचेत् तैर्मन्त्राभिमंत्रितैः ॥ ६८ ॥
 प्रासाद्य सप्तधान्यौघविरूढकफलोत्करैः । स्नपयित्वार्चितं नव्यैः सद्ब्रह्मैः परिधापयेत् ॥ ६९ ॥
 यावंतः प्राणिनः केतौ लग्नाः कुर्युः प्रदक्षिणाम् । तावंतः प्राणुवंत्यत्र क्रमेण विमलं पदम् ७० ॥
 मुक्ते मार्ची गते केतौ सर्वकामानवाप्नुयात् । उत्तराशां गते तस्मिन् स्वस्यारोग्यं च संपदः ७१ ॥
 यदि पश्चिमतो याति वायव्ये वा दिशाश्रये । ऐशाने वा ततो वृष्टिः कुर्यात्क्रेतुः शुभानि सा ७२ ॥
 अन्यस्मिन् दिग्बिभागे तु गते केतौ मरुद्वशात् । शांतिकं तत्र कर्तव्यं दानपूजाविधानतः ७३ ॥

गंध ॥ ६२ से ६७ ॥ उस धुजामें यक्षकी मूर्ति बनके उसका फलआदिसे सत्कार करे ।
 फिर धुजाकी परिक्रमा दे । धुजाके कार्य करनेमें जितने प्राणी सहायता करते हैं वे सब
 परंपरासे निर्दोष पदवीको पाते हैं ॥ ६८ । ६९ । ७० ॥ धुजा छाड़ने पर पूर्व दिशाकी तरफ
 जाये तो वह धुजा सब इस श्श कार्योंको सिद्ध करती है ॥ ७१ ॥ पश्चिमादिशामें, तथा वायव्य
 ग दिशानदिशामें फहरानेसे वह धुजा कल्याण करने वाली होती है ॥ ७२ ॥ अथवा हवाके
 निमित्तसे अन्य वची दुर्द दिशाओंमें लहरानेसे दान पूजा विधिसे शांति कर्म करना चा-

कलशादुच्छ्रिते हस्तं ध्वजे नीरोगता भवेत् । दिग्दक्षुच्छ्रिते तस्मात्पुत्रद्विर्जायते परा ॥ ७४ ॥
 त्रिहस्तं सस्यसंपत्तिर्पृष्टद्विभुःकरम् । पंचहस्तं सुभिक्षं स्याद्राष्ट्रद्विभुः जायते ॥ ७५ ॥
 अंबरेण कृतो यः स्याद् ध्वजः सम्यक् समंततः । सोतिलक्ष्मीपदो राज्ये यशःकीर्तिप्रतापदः
 भूपालवालगोपालकलनानां समृद्धिकृत् । राज्ञां सुखार्थदायी च धान्यैश्वर्यजयाबहः ॥ ७६ ॥

अत्र विधिपूजितस्य यागमंडलस्याग्रतो वेदिकातले पूर्वस्यां दिशि ध्वजमवस्थाप्य तद्देवतामित्थं
 प्रतिष्ठयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्ण यक्ष एहि २ संवौषट् । अनेन पुष्पांजलिं क्षिप्त्वा आवाहयेत् । ओं ह्रीं
 सर्वाह्णयक्ष अत्र तिष्ठ २ ठ ठ । अनेन तद्दत्त्वापयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्णयक्ष अत्र सन्निहितो भव भव
 वषट् । अनेन तद्दत्त्संनिधापयेत् । ततः भवौषधिविमिश्रितार्थोदकपूर्णं कलशान् पुरः संस्थाप्यामृतादि-
 मंत्रेण तज्जलमभिमन्त्र्य ध्वजालिखितयथाभिमुखं पर्णं स्थापयित्वा गंधाक्षतपुष्पादीन् मंगलौपकरणानि
 चाग्ने व्यवस्थाप्य ओं ह्रीं सर्वाह्णयक्ष इदं क्षापनमर्चनं च गृहाण । ओं स्वस्ति भद्रं भवतु स्वाहेति

हिये ॥ ७३ ॥ मंदिरकी शिखरके कलशोंसे एक हाथ ऊंची धुजा आरोग्यताको करती है;
 दो हाथ ऊंची पुत्रादि संपत्तिको, तीन हाथ ऊंची धान्यसंपत्तिको चार हाथ ऊंची राजा-
 की वृद्धि, पांच हाथ ऊंची सुभिक्षको तथा राज्यवृद्धिको करती है ॥ ७४ ॥ अब
 रखकी वनाई धुजा अत्यंत लक्ष्मीकी देनेवाली तथा राज्यमें यशको फैलानेवाली होती है
 और राजा प्रजा सबको सुखदाई है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ यहांपर विधिसे पूजित यागमंडलके आगे

मंत्रमुच्चार्य तं दर्पणप्रतिबिम्बितयक्षं तज्जलैरभिषिच्य गंधादिभिश्चार्चयित्वा मुखवस्त्रं दत्त्वा नयनोन्मी-
लनं सुमुहूर्ते कुर्यात् । इति ध्वजदेवताप्रतिष्ठाविधानम् ।

एवं कृत्वा ध्वजारोहं पुण्यं प्राप्याद्भुतं कृती । भुक्त्वा तथादिसुभगः श्रेयोनिर्द्वैतिसञ्जुते ॥७८॥

इति ध्वजारोपणविधानम् ।

प्रासादप्रतिमे अनेन विधिना ये कारयित्वाहंता

भक्त्यानिहुतशक्तयो विदधते नित्याभिषेकादिकान् ।

देवीके नीचे पूर्व दिशामें धुजाको रख उसमें चिन्हितायक्ष देवको इसप्रकार प्रतिष्ठित करे । “ओं”
इत्यादि बोलकर आवाहन स्थापन सन्धिीकरण करे । उसके बाद सर्वौषधीसे मिलेहुए जला-
शयके जलसे भरे कलशोंको आगे रख अमृतादि पूर्व कथितमंत्रसे उस जलको मंत्रितकर धुजाके
आगे लिखे हुए पत्तेको रख चंदन अक्षत पुष्पोंसे “ ओं ह्रीं ” इत्यादि मंत्र बोलता हुआ दर्पण-
में स्थित यक्षके आकारकी पूजा शुभ मुहूर्तमें करे । यह धुजाकी प्रतिष्ठाविधि कही गई
है ॥ इस रीतिसे धुजारोहण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष महान पुण्यका उपार्जन करके
तथा पुण्यफल भोगके मोक्षसुखको पाता है ॥ ७८ ॥ यह धुजा चढानेकी विधि पूर्ण हुई ।
मोक्षके पञ्चुक जो भव्यजीव अर्हंत जिनका मंत्रि और प्रतिमाको स्थापन करके अपनी

पूजाज्ञा विभवाधिपत्यमहिमोदयाः शिवाशाधरा-
स्ते शुक्त्वा पदवीर्भजंति परमानंदकसांद्रं पदम् ॥ ७९ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाक्षि अभिषेकादिविधानीयो नाम
पंचमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

शक्तिको न छिपाकर भक्तिसहित प्रतिदिन अभिषेक पूजा करते हैं वे उत्तम भोगोंको भो-
गकर परमानंद स्वरूप मोक्ष पक्वों पाते हैं ॥ ७९ ॥

इसप्रकार पं० आशाधरं विरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें अभिषेकादि
विधिकों कहनेवाला पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



अथ सिद्धप्रतिमादिप्रतिष्ठाविधानान्यमिधास्यामः—

आचार्यो मंडपे रम्ये सद्द्वेषां चूर्णसत्तमैः । स्वस्वमंडलमालिख्य संपूरुष्य तिलकद्रवैः ॥ १ ॥

हेमादिपात्रे हेमादिलेखन्या यंत्रमुद्भूतम् । तन्मध्ये न्यस्य जात्यादिपुष्पैरष्टोत्तरं शतम् ॥ २ ॥

स्वस्वमंत्रेण संजप्य निविश्योत्तरमंडपे । वेद्यास्त्रपनपीठैर्चा धृतीकुंभेन पूर्ववत् ॥ ३ ॥

स्नपयित्वा मंगलादिद्रव्यसंदर्भगर्भितैः । तीर्थान्बुसंभृतैः कुंभैर्मु ? पल्लवैः ॥ ४ ॥

दधिदूर्वाक्षतकुशास्रकृचित्रैर्मंत्रैः संस्कृतैः । प्रापद्याकरशुद्धिं प्राक् यंत्रस्योपरि विष्टरे ॥ ५ ॥

.....कीर्त्यं तस्यामारोग्यं तद्गुणान् । आवाहनादिकं कृत्वा तां शुंज्यात्तन्मयीं स्मरन् ॥

अब सिद्ध आविकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधिको कहते हैं । प्रतिष्ठाचार्य सुंवर मंडपकी सुंवर

वेधीमें उत्तम चूर्णसे अपने २ मांडले लिखकर पूजे । फिर विसे द्रुप चंवन या कुंकुसे सोने

आविके पात्रमें सोने आविकी सलार्हसे यंत्र लिखकर उसमें एकसौ आठ चमेलीके

पुष्पोंको रख अपने २ मंत्रसे मंत्रित करे । फिर उत्तर मंडपमें वेदिके अधिके अभिषेकके

सिंहासवपर प्रतिमाको रख जलाविसे अभिषेक पहलेकी तरह करे । १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥

उसके बाद उस प्रतिमामें उसके गुणोंका स्थापनकर तन्मयी स्मरण करता हुआ आवाहना-

तिलकेन सुलश्रेधिवास्य व्यक्तास्यलोचनं । ततोऽभिषिच्य चाम्यच्चैततः क्षुर्यात् क्रियाधिकम्
ततो विशेषः ।

स्नानादिविधिमाधाय सिद्धचक्रं यथागमम् । उद्धृत्य वेदिकापीठे न्यस्य श्रीचंदनादिभिः ॥८॥
संपूज्य सिद्धमात्मानं ध्यायन्नष्टोत्तरं शतम् । जातीपुष्पैर्जपेन्मूलमंत्रेण ज्ञानमुद्रया ॥ ९ ॥

ओंकाराधो श्रिभागी बलयनन्यस्तमूर्द्धाशिमद्वं

हीं पिंडात्मादितौनाहतममृतपृषत्स्यंदिनालं लिखित्वा ।

अस्यौसेत्स्यौ नयो युक् सकलशशिश्रुतं तद्वहिस्तद्वहिस्तु

संज्ञानालोकचर्या बलतप इति चानादिसंसिद्धमंत्रः ॥ १० ॥

तद्वचाथ स्वरोयं वसुदलकमलं चांतरे तद्वलाना-

मों हीं श्रीं हं मुखांत्यानिलवियदमुखा शेषवर्गैश्च युक्तम् ।

दि करे ॥ ६ ॥ फिर शुभ लक्षमें तिलकविधि सुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन आवि पूर्वोक्त क्रिया
करके अभिषेकपूर्वक पूजा करे ॥ ७ ॥ यहां एक क्रिया विशेष है कि खानादिविधि करके
शास्त्रके अनुस्वार सिद्धचक्रको चंदनादिसे वेदीपर लिखकर पूजके सिद्ध आत्माका ध्यान
करता हुआ ज्ञानमुद्रासे एकसौ आठ चमेलीके फूलोंसे जाप करे ॥ ८ । ९ ॥ “ओंकारा”
इत्यादि तीन श्लोकोंमें कही गई विधिके अनुस्वार सिद्धचक्र बनावे ॥ १० । ११ । १२ ॥

विन्यस्यानाहतेति शिरसि विरहितं चांतरालेषु चाद्यं
 पंचानां सतायनां बलयतु कुञ्जलः कौरुधामा ययात्रिः ॥ ११ ॥
 पत्रातर्भत्रपूर्वाँर्जिनवितनुचतुस्तीर्यसंभेधचक्र-
 पादू वाक्यैर्ण... ततनुमयानाहातग्रंथनाद्यैः ।
 स्वस्वस्थानस्थिताशेषमुपरि दधतं सप्तकं वारकं वा
 रवर्णां ब्रह्माणं च स नग्रहमवनिवृतं सत् करि रं करोति ॥ १२ ॥
 इति बृहत्सिद्धचक्रोद्धारणम् ।

सामी सार्धेदुशीर्षे अ..... ।

पेतीद्यसारं विनयमुखगुरुद्विष्टवर्णाविशिष्टं

मंत्रेद्धां सैद्धचक्रं विदधतु सुधियोध्यात्ममध्यात्मबुद्धांम् ॥ १३ ॥

ओं हीं श्रीं अहं अ सि आ उ सा इदं वारि गंधं..... ।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सविंदु सपरं ब्रह्मस्वराबोद्धितं
 वर्गापूरितदिगतांबुजदलं तत्संयितत्त्वान्वितम् ।

ए बृहत्सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । “ सामी ” इत्यादि श्लोकमें कथित रीतिसे लघु सिद्ध-
 चक्र बनाके “ ओं ” इत्यादि त्रोलकर जलादि चढावे ॥ १३ ॥ “ ऊर्ध्वाधो ” इत्यादिमें

अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंबेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभक्तवीरवः ॥ १४ ॥

इति लघुसिद्धचक्रोद्धरणं । अत्रायं मंत्रः । ओं अहं अ सि आ उ सा ह्रीं अहं स्वाहा ।
शेषं पूर्ववत् ।

ततोभिपिच्य तीर्थीभःकुंभैः प्रागुक्तकल्पनैः । गुणैरिचार्यामष्टाभिः सिद्धस्तोत्रं पुरो हितम् ॥ १५ ॥
पठित्वा तद्गुणारोपप्रभृत्त्यापाद्य तां स्मरन् । साक्षात्सिद्धं तिलकयेच्चंदनेन सहेदुना ॥ १६ ॥

आकारशुद्धिं कृत्वा यस्यानुग्रहेत्यादि सिद्धस्तोत्रमधीत्य प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । ततः—

आकारैर्विद्युतं युतं च युगपन्विध्यातृवीरुस्फुटं
विश्वं स्वाभिनिवेशसौम्यपसमानदैकसंबेदनं ।

स्वस्वादक्षसमक्षपाक्षयतमस्थामावगाहोचमं

भात्वत्रागुरुलघ्वनंतगुणमप्यष्टात्मसैद्धं वपुः ॥ १७ ॥

कहे गये सिद्धचक्रका उद्धार करके “ ओं ” इत्यादि मंत्रका जाप करे ॥ १४ ॥ यह लघु-
सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । शेष विधि पहलेकी तरह करे । फिर सिद्ध प्रतिमाका जलसे
भरे हुए घड़ोंसे अभिषेक कर आठ गुणोंको स्मरण करता हुआ तिलक विधि करे ॥ १५ ॥
आकारशुद्धि करके “ यस्यानुग्रह ” इत्यादि पूर्व कथित सिद्ध स्तोत्रका पाठ करके प्रति-

एतत्पृष्ठत्रयीं समंतात् परासृशेत् । गुणारोपणम् । ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धारिमोष्टिभ्या
नमः अत्रागच्छ । ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ स्वाहा । ओं ह्रीं मम सन्निहितो भव २ वपट् स्वाहा । आ
वाहनारिमंत्रः । अ सि आ उ सा सिद्धाधिपतये नमः । तिलकमंत्रः ।

ततश्च मुखवस्त्रादिनिर्धनं कृत्वावहेत् क्रियाम् । सिद्धभक्त्यैत्रमाचार्याद्यर्चान्यासेपि कल्पयेत् ॥
ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुनवस्त्रं ददामीति स्वाहा । मुखवस्त्रमंत्र । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये
मुखनम्रपनयामीति स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये प्रबुध्यस्व २ ध्यातृजनम
नांसि पुनीहि पुनीहि स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमंत्रः । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतिं तार्थोदकेनाभिषिचामीति
स्वाहा । तार्थोदकस्नपनम् । ओं ह्रीं पुंड्रेशुभ्रमुखरसैराभिषिचामीति स्वाहा । रसस्नपनं । ओं ह्रीं हेय
गनीनघृतेन स्नयामीति स्वाहा । घृतस्नपनम् । ओं ह्रीं धारोष्णगव्यक्षीरपूरैणाभिषुणोमीति स्वाहा ।
दुग्धस्नपनं । ओं ह्रीं जगन्मंगलेन दध्ना स्नपयामीति स्वाहा । दधिस्नपनं । ओं ह्रीं दिव्यप्रभूतसुरभिक-
पायद्रव्यकल्पाशुभ्रैरुपस्करोमीति स्वाहा । उद्धर्तनादिविधानम् । ओं ह्रीं विचित्रपवित्रमनोरमफलैर-

मांके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे । उसके बाद “ आकारै ” इत्यादि बोलकर प्रतिमाका
चारंतरफते स्पर्श करे ॥ १७ ॥ “ ओं ह्रीं ” इत्यादि मंत्रसे आवाहनादि करे “ असि ”
इत्यादि तिलकमंत्रसे तिलकदान विधि करे । उसके बाद मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन सिद्ध-
भक्ति आदि विधी करे । इसीतरह आचार्य आदिकी भी - प्रतिमास्थापनामें पूर्वकथित

वतारयामीति स्वाहा । फलावतारणं । ओं परमसुरभिद्रव्यसंदर्भपरिमलपुर्भतीर्षीतुसंपूर्णसुवर्णकुमाष्टकतो-
 येन परिपेचयामीति स्वाहा । कलशाष्टकाभिपेकः । एष मंत्र आकरशुद्धचभिपेकेषि योजनः । ओं ह्रीं
 परमसौमनस्यनिर्वधनगंधोदकपूरेणाष्टावयामीति स्वाहा । गंधोदकस्नपनमंत्रः । ओं ह्रीं असि आ
 उ सा सिद्धाधिपति लोकोत्तरनिरधारामिः परिचरीर्माति स्वाहा । तीर्थोदकमंत्रः । एवं हरिचंदनेप्यूर्ण्यं
 मंत्राष्टकम् । हरिचंदन इव कलमस्तत्पुंजाष्टकमंदारपमुखकुमुदामद्धि विविधाशाखायाननसारदशामुख-
 प्रदीपित्दीपकाष्टकमुग्धद्रव्यसंयोजनादिशेषसंभूतध्वजधूपयष्टाष्टकचंबुरगंधवर्णरसप्रतीणितनहिरंतःकरणम-
 हाफलस्तवकाष्टकजलादियज्ञा दूर्वादर्भेदधिसिद्धार्थादिगंगमद्रव्यविनिर्तितमहाध्वस्तकारोपचारैः परिचरा-
 मीति स्वाहा । जलाद्यर्थात्सपर्याविधानम् । ततः क्रियां कृत्वाभिमतप्रार्थनार्थमिदं पठित्वा पुष्पांजलिं
 प्रकल्पयेत् ।

आयुर्द्रोघयतु व्रतं द्रढयतु व्याधीन् व्यपोहत्वयं
 श्रेयांसि प्रगुणीकरोतु वितनोत्वार्सिंधु शुभ्रं यथाः ।
 शत्रून् चातयतु श्रियोभिरमयत्वश्रातमुद्भय-
 त्वानंदं भजतां प्रतिष्ठित इह श्रीसिद्धनाथः सताम् ॥ १९ ॥

क्रिया करे ॥ १८ ॥ “ ओं ” इत्यादि मंत्र बोलकर सुखीद्धावन नेत्रोल्मीलन जलादि श्रि-
 पेक पूजा आवि क्रिया करनी चाहिये । उसके बाद इस प्रार्थनाके लिये “ आयु ” इत्यादि

ततश्च पूर्वद्विसर्जनानादिकमनुतिष्ठेत् इति सिद्धप्रतिष्ठाविधानम् । अथाचार्यप्रतिष्ठाविधानम् ।
 गणभृद्दलयं वेद्यामभ्यर्च्य स्त्रापयेच्च तम् । पंचाचारान् स्मरेत्पंच कलशांश्चतुरः पुनः ॥ २० ॥
 चतुरोत्रानुयोगांश्च..... नित्रीणि तन्मनाः ॥ २१ ॥

ततो महर्षिस्तवनं पठित्वा चतुरो विधीन् । कृत्वा तिलकयेत्साक्षात्सूर्यादीन् प्रतिमां स्मरन् ॥ २२ ॥
 मुखवस्त्रादिकर्माणि विधाय च विधिं ततः । क्रियाकांडोदितां कृत्वा यथावद्विधिमाचरेत् ॥ २३ ॥

अथ गणधरवल्यमनुशिष्यते । पूर्वं षट्कोणचक्रे क्ष्माबीजाक्षरं लिखेत् तदुपरि अहं इति न्यसेत्
 तस्य दक्षिणतो वामतश्च ह्रीं विन्यसेत् पीठादधः श्रीं न्यसेत् । ततः ओं अ सि आ उ सा स्वाहित्येन
 श्रीकारस्य दक्षिणतः प्रमृत्युत्तरतो यावत्प्रादक्षिण्येन वेष्टयेत् । ततः कोणेषु षट्स्वपि मध्ये अप्रतिचक्रे
 फाडिति सव्येन स्थापयेत् । तथा कोणांतरालेषु बिचक्राय स्वाहेति षड्बीजानि श्लोकानि अपसव्ये

श्लोक पढकर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ १९ ॥ फिर पूर्वकी रीतिसे विसर्जन आदि करे ।
 यह सिद्धप्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कही गई ॥ अब आचार्यप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । बुद्धि
 मान् गणधर वलय (चक्र) को वेदीमें स्थापन कर पांच कलशोंसे छापन करे और
 दर्शनाकार आदि पांच आचारोंको स्मरण करता हुआ उस चक्रकी पूजा करे ॥ २० ॥
 फिर चार अनुयोगोंका चिंतवन करके महर्षिस्तवन पढके तिलकादि क्रिया करे ॥
 २१।२२ २३ ॥

विन्यसेत् । तद्वह्निर्वलयं कृत्वाष्टसु पत्रेषु गमो जिणाणं, गमो, ओहिजिणाण गमो कुडुबुद्धाणं, गमो
 बीजबुद्धीणं, गमो पदाणुसारीणं—इत्यथै पदानि क्रमेण लिखेत् । ततस्तद्वह्निस्तद्वत् षोडशपत्रेषु गमो
 संभिण्णसोदाराणं, गमो पत्तेयबुद्धाणं, गमो सयं बुद्धाणं, गमो बोहियबुद्धाणं, गमो उजुमदीणं, गमो
 विडलमदीणं, गमो दसपुव्वीणं, गमो अट्टंगमहाणिमित्तकुसल्याणं, गमो विउव्वणइड्डिपत्ताणं, गमो
 सिज्जाहराणं, गमो चारणाणं, गमो समणाणं, गमो आगासगामीणं, गमो आसिविसाणं, गमो
 दिट्ठिविसाणं—इति षोडशपदानि विलिखेत् । ततस्तद्वह्निस्तद्वच्चतुर्विंशतिपत्रेषु गमो घोरगुणपरक्कमाणं,
 गमो घोरगुणवंभयारीणं, गमो आमोसहिपत्ताणं, गमो खेळोसहिपत्ताणं, गमो जळोसहिपत्ताणं, गमो
 विडोसहिपत्ताणं, गमो सव्वोसहिपत्ताणं, गमो मणवलीणं, गमो वनिवलीणं, गमो कायवलीणं, गमो
 स्वीरसवीणं, गमो सप्पिसवीणं, गमो महुरसवीणं, गमो अमियसवीणं, गमो अक्खीणमहाणसाणं,
 गमो बहुमाणाणं, गमो लोए सव सिद्धायदणाणं, गमो भयवदो महदि महावीर बहुमाण बुद्धिरि-
 सीणं । चतुर्विंशतिपदान्याल्लिय हींकारमात्रया त्रिगुणं वेत्थयित्वा कौंकारेण निरुद्धच बहिः पृथ्वी-
 मेडलं हीं श्रीं अहं असि आउसा अप्रतिचके फट् विचक्राय झौं झौं ह्रीं स्वाहा । अनेन मध्यपूजां
 विदध्यात् । गमो अरहंताणं गमो जिणाणं इत्यादि हा हीं न्हूं हौ हः असि आउसा अप्रतिचके झौं
 “ अथ ” इत्यादिसे कहे गये गणधरचक्रको वनावे । और पूर्वकी तरह आकरशुद्धि आदि
 क्रिया करके “ निर्वेद ” इत्यादि महाविं स्तवन पढता हुआ आचार्य आदिकी प्रतिमाको

श्रौं स्वाहा । एतेष्ट चत्वारः । अथ पूर्ववदाकारशुद्ध्यादिकं कुत्वा निवेदित्यादि महर्षिस्तवनं पठ-
 न्नीं समंतात्परामृष्य गुणारोपणं कुर्यात् । ओं चूं णमो आहरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्नत्र एहि २
 संवौपट् ओं चूं तिष्ठ २ ठ २, ओं चूं मम सन्निहितो भव २ वपट् । तथा ओं ह्रीं णमो उवज्जायाणं
 उपाध्यायपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौपट् ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रीं सन्निहितो भव भव वपट् ।
 तथा ओं हः णमो लोए सन्नासाहूणं साधुपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौपट् । ओं हः तिष्ठ २ ठ ठ, ओं
 हः सन्निहितो भव २ वपट् । इत्याचार्योदीनामावाहनादिमंत्राः । ततश्च ओं चूं णमो आहरियाणं धर्मा-
 नारोपिपनगे नमः इत्यादिमंत्रैः सिद्धप्रतिमात्रत्तिलकादिविधीन् विदध्यात् । एवमुपाध्यायसाधुपरमेष्ठिनो-
 रपि कल्पः कल्पयेत् ॥ इत्याचार्योदिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम् ।
 वेद्यां सारस्वत्यं यंत्रं तिलिख्य तस्य शोधनम् । अनुयोगैरिवाचार्यश्चतुर्भिस्तीर्थैर्वाधैः ॥ २४
 यंत्रिणीं न्यस्य गां स्तुत्या कृत्वा कर्मनतुष्टयम् ।त ग्रन्मूलमंत्रेणान्यं विधिं सृजेत् २५
 सादं करके उममें गुणोक्ता स्थापन करे । फिर “ ओं हं ” इत्यादि बोलकर आचार्य
 उपाध्याय सर्गापुक्ता आवाहन आवि करे । उसके बाद “ ओं हं ” इत्यादि मंत्रसे सिद्ध
 प्रतिमाकी तट्ट तिलक आवि विधि करे । यह आचार्य आवि धर्मगुरुकी प्रतिष्ठाविधि हुई ॥
 अथ सरस्वतीकी प्रतिष्ठा विधि करते हैं । प्रतिष्ठाचार्य वेदीमें सारस्वत यंत्र लिखकर उसको
 सामने कें धर्मणमें प्रतिनिधित कर चार गलके घड़ोंसे अभिकेक करे । उस यंत्रमें सरस्वतीकी
 मूर्तिको रत्न मूर्तिपूर्णक पूजा करे तथा सरस्वतीमंत्रका जाप करे ॥ २४ । २५ ॥

अथ सारस्वतमंत्रमनु, शिष्येत् । पूर्वे कर्णिकायां हींकारमाश्लेषेद्वाह्ये हंकारं सविसर्गसकारं च लिखित्वा ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि मगवति सरस्वते हीं नमः इत्यनेन मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । तद्वहिः पूर्वादिक्रमेण चतुर्षु ओं वाग्वादिन्यै नमः, ओं मगवत्यै नमः, ओं सरस्वत्यै नमः, ओं श्रुतेदेव्यै नमः । इति चतुरास्या श्लेत् । तद्वहिरष्टसु पत्रेषु ओं नंदायै नमः, ओ स्तंभिन्यै नमः इत्यादि चाष्टौ देवील्लेखेत् । तद्वहिश्व षोडशपत्रेषु ओ शोहिण्यै नमः इत्यादि मत्रैः षोडश विद्यादेवीः स्थापयेत् । ततः पूर्वाद्यष्टदिक्षु इद्राय स्वाहेत्यदिमंत्रैरष्टौ दिक्पालान् विन्यसेत् । पूर्वशानदिशोश्चांतराले ओं अधोनागोभ्यः स्वाहेति नागान् विन्यसेत् । पश्चिमदिक्पालस्योपरिष्ठाच्च ओ ऊर्ध्वव्रह्मणे नमः इति परमब्रह्म प्रातेष्टयेत् । इंद्रादधश्च ओं हीं मयूरवाहिन्यै नमः इति वाग्धिदेवता स्थापयेत् । ततस्त्रिमीयामात्रया कौंकारेण निरुच्य तदात्रेष्ट्यच्च हिः पृथ्वीमंडलं विल्लिखेत् इति । अथ ओं ह्रीं श्रुतेदेव्यः कलशस्नपनं करोमीति स्वाहा । इत्यनेन कलशानभिषेच्यकारं शोधयेत् । ततो बोधेनेत्यादि श्रुतेदेवास्तवनं पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

चारह अंगं गिज्जा दंसणतिलया चरित्तवच्छहरा ।

चोदसपुव्वहराणं ठात्रे दव्वाय सुयदेवा ॥ २६ ॥

अथ सरस्वतीयत्रका उद्धार दिखलाते हैं । पहले कर्णिका (वीचक भाग) में “ हीं ” लिखे उसके बाहर “ हं सः ” लिखकर “ ओं हीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि मग-

आचारं शिरसि सूत्रकृत् वक्राणु कंठिका । स्थानेन समवायागव्याख्याप्रज्ञसिदोलताम् ॥ २७ ॥
 चाग्नेयतां ज्ञातृरथोपासकाध्ययनस्तनी । अंतकृद्दशसन्नाभिभुत्तरदृशां गतः ॥ २८ ॥
 भुनितंवा सुजघना प्रणव्याकरणश्रुतात् । विपाकसूत्रदृग्वादचरणां वरा ? ॥ २९ ॥
 सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दश विभूषणाम् । तावत्प्रकीर्णकोदीर्णचारुपत्राङ्कुरश्रियम् ॥ ३० ॥
 आसद्वहमवाहौघद्रव्यभावाधिदेवताम् । परब्रह्म प्रथादृशां स्यादुक्ति श्रुक्तिमुक्तिदाम् ॥ ३१ ॥
 सर्वदर्शनपाखंडदेवदैत्यं स्वगार्चिता । जगन्मातरमुद्भूतं जगद्त्रावतारयेत् ॥ ३२ ॥

गति सरस्वति ह्रीं नमः ” इस सरस्वतीमंत्रको चारों तरफ वेड़े । उसके बाहर पूर्व आदि
 दिशाके क्रमसे चार पत्तोंपर “ ओं वाग्वादिन्धे नमः ” इत्यादि चारोंको लिखे । उसके
 बाहर आठों पत्तोंपर “ ओं नंदाथे नमः ” इत्यादि आठ देवियोंको लिखे । उसके बाहर
 सोलह पत्तोंपर “ ओं रोहिण्ये नमः ” इत्यादि सोलह विद्यादेवियोंको लिखे । उसके बाद
 पूर्य आवि आठ दिशाओंमें “ इंद्राय स्वाहा ” इत्यादि मंत्रोंसे आठ दिक्पालोंको
 स्थापन करे । पूर्व और ईशान्य दिशाओंके बीचमें “ ओं अधो नागेभ्यः स्वाहा ”
 लिखकर नागकुमारकी स्थापना करे । पश्चिमदिशाके दिक्पालके ऊपर “ ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे
 नमः ” ऐसा लिखकर परब्रह्मकी स्थापना करे । इंद्रके नीचे “ ओं ह्रीं मयूरवाहिन्ये
 नमः ” लिखकर सरस्वती देवीकी स्थापना करे । उसके बाद तीजवार ईकारसे तथा कों
 ने धरुकर गारु धृषीमंगल लिखे ॥ फिर “ ओं ह्रीं ” इत्यादि मंत्रसे कलजोको मंत्रितकर

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापानि क्षयं कर श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं
हन २ क्षां क्षीं क्षूं क्षौ क्षः क्षीरवरधत्रले अमृतसंभवे वं वं हुं स्वाहा । एतत्पठन् प्रतिमायां अग-
प्रत्यंगपरामर्शी कुर्यात् । गुणारोपणं । ओं ह्रीं श्रीं अत्र एहि २ संवैषट्, ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ,
ओं ह्रीं सन्निहितो भव वषट् । आवाहनादिमंत्रः । ततो मूलमंत्रेण तिलकं दत्त्वा पूर्ववदाधिवासनाविधीन्
विदध्यात् ।

शुभे शिलादाबुत्कीर्यं श्रुतस्कंधमपि न्यसेत् । ब्राह्मीन्यासविधानेन श्रुतस्कंधमिह स्तुयात् ३३
सुखेखकेन संलिख्य परमागमपुस्तकम् । ब्राह्मीं वा श्रुतपंचम्यां सुलग्ने वा प्रतिष्ठयेत् ३४

आकरशुद्धि करे । उसके बाद “ बोधेन ” इत्यादि श्रुतदेवीका स्तवन पढकर प्रतिमाके
ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे । उसके बाद “ बारह ” इत्यादि सात श्लोक तथा “ ओं अर्ह ”
इत्यादि मंत्र बोलकर सरस्वतीप्रतिमाके अंगोंका स्पर्श करें ॥ २६ ते ३२ तक ॥ फिर
गुणोंका स्थापन करे । उसके बाद “ ओं ” इत्यादि मंत्र बोलकर आवाहन आदि करे ।
उसके बाद मूलमंत्रसे तिलक देकर पूर्वरीतिके अनुसार अधिवासना आदि क्रियाओंको
करे । उच्चम शिला आदिमें सरस्वतीकी मूर्ति खुदवाकर स्थापना करके स्तुति करे ॥ ३३ ॥
अथवा परमागमके शास्त्रोंको अच्छे विद्वान् लेखकसे लिखवाकर श्रुतपंचमीके दिन शुभ
लग्नेमें सरस्वतीप्रतिष्ठा करे ॥ ३४ ॥

अत्र त्वाकारशुद्ध्यादिविधिमादर्शविविधे । कुर्यादिति श्रुतस्कंधं स्तुयात्स्त्रोदितं स्मरेत् ॥ ३५ ॥
 आचार्यादिगुणान् शस्य सतां वीक्ष्य यथायुगम् । गुर्वादेः पादुके भक्त्या तन्नयासविधिना न्यसेत्
 घटयिन्वा जिनगृहे तत्प्रतिष्ठा महोत्सवे । निषेधिकां प्रतिष्ठाया रक्षकांगो जनावनौ ॥ ३७ ॥
 नीत्वा निवेशयेदत्र पठित्वाराधनास्तवम् । ध्यायेत् प्रसिद्धं संन्यासं समाधिमरणादिषु ॥ ३८ ॥
 बहिरेवाथ निर्माप्य तां स्वस्थाने निवेशिताम् । स्वयं जप्त्वा प्रियं बार्हत्प्रतिष्ठातिलकक्षणे ॥ ३९ ॥
 प्रापय्य तिलकं तत्र गत्वा शेषविधिं स्वयम् । कुर्याद्विद्रुः सः ततः संघः कुर्याद्यथागमम् ४० ॥
 तत्रैव वा प्रतिष्ठेः क्तविधिं सर्वं समासतः । कृत्वा प्रतिष्ठयेच्छ्रे तां वा वीरशिवक्षणे ॥ ४१ ॥
 इति श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ यक्षादिप्रतिष्ठा ।

यहांपर अभिषेक आदि क्रिया दर्पणमें प्रतिचिंबित करके करनी चाहिये । इस प्रकार
 जिनसूत्रकथित रीतिसे श्रुतस्कंधकी पूजा करे ॥ ३५ ॥ आचार्य आदिके गुणोंकी
 स्तुति करके गुरुकी पाहुका (चरणयुगल) वनवाके उनकी स्थापना करे ॥ ३६ ॥
 जिनमंदिरमें एक समाधिकी जगह वनावे वहां गुरुकी पाहुकाओंको स्थापन करके
 उनके गुणोंका तथा समाधिमरणका चिंतवन करे ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ ॥ वहांपर
 तिलक आदि विधि वह इंद्र आप भी करे तथा अन्य श्रावकोंसे शास्त्रानुसार
 करावे ॥ ४० ॥ उस जगह यदि संक्षेप विधि करनी हो तो आगमके अनुसार सरस्वती
 आदिकी प्रतिष्ठा गुरुप्रतिष्ठाके समय तथा महावीर प्रभुके मोक्षकल्याणके दिन

यक्षादयो जिनाचारिकमस्तकास्तत्प्रतिष्ठया । प्रतिष्ठेयास्ततोन्येषां प्रतिष्ठाविधिरुच्यते ॥ ४२ ॥
 अव्युत्पन्नदृशां शांतदूरैरैकफलांश्च ते । त..... प्रकाशार्थं मंत्रवादे स दक्षितः ॥ ४३ ॥
 सत्पुष्पमंडपे रात्रौ पंचतीर्थजलोक्षिते । यक्षादिप्रतिविधे..... धिवासयेत् ॥ ४४ ॥
 अथौ हीं क्रौं सुखं स्थाप्यमावाहनादिगर्भितम् । संवौषट् होमपर्यंतमंत्रं पञ्चवरे लिखेत् ४५
 प्रकीर्णचूर्णे दर्भेण वेदिपृष्ठे तथाष्टसु । आदिदेवीतले ओंकारेषु चतुर्ध्वतः ॥ ४६ ॥

तेजोमायादिहोमांतान् लिखेत्पंचदश क्रमात् । तिथिदेवान् ग्रह..... पुरान् ॥ ४७ ॥
 प्रागुधान्यष्ट तुर्थे तु पंचमं भूपरे लिखेत् । पत्रमंडलमभ्यर्च्य विधिवत्तं प्रतिष्ठयेत् ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं क्रौं सुवर्णवर्णवृषभवाहनपरशुफलाक्षमालावरदानांकितचतुर्भुजवृषचक्रधर्मचक्रालंकृत-
 मस्तकगोमुखयक्षाय संवौषट् स्वाहेति मंत्रं कर्णिकायामालिख्य तद्द्वहिरष्टसु पत्रेषु ओं हीं क्रौं श्रिये

शुभलग्नं करे ॥ ४१ ॥ इसतरह श्रुतदेवताकी प्रतिष्ठा विधि समाप्त हुई । अब यक्ष
 आदिकी प्रतिष्ठा कहते हैं । यक्ष आदिक देव भगवानकी प्रतिष्ठाके रक्षक होते हैं
 प्रसलिये उनकी मूर्तिकी भी प्रतिष्ठा करे ॥ ४२ ॥ जो अज्ञानी हैं वे “ शांत क्रूर
 मस्त लोकके फलक देनेवाले हैं ” ऐसा समझकर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं
 यह कथन मंत्रवाद शास्त्रोंमें दिखाया गया है ॥ ४३ ॥ यक्षादि देवोंकी प्रतिष्ठा
 पांच स्थानोंके जलसे प्रतिविचका अभियेककर रात्रिमें करनी चाहिये ॥ ४४ ॥
 “ अर्थों ” इत्यादि चार श्लोकोंमें कथित क्रियासे आवाहन आदि करे ॥ ४५ से ४८ ॥ “ओं”

संचौषट् स्वाहेत्यादि दियकुमारंभंत्रानद्यौ तद्वहिवर्ष्यातः, ओं ह्रीं कौ यक्षवैश्वानररक्षो नहत्तपन्नगासुर-
 कुमारसंविश्वविधमालिचमरवैरोचनमहाविद्यमारोविद्येश्वरपिंडमुगभिधानपंचदशतिथिदेवान् संस्थापयामि
 स्वाहेति तिथिदेवाः पंचदश तद्वहिवर्ष्यातः, ओं ह्रीं कौ सूर्यसोमांगारकरसौम्यगुरुभार्गवशनिराहुकेतून्
 संस्थापयामि स्वाहेति ग्रहदेवान् तद्वहिर्यजुः, ओं ह्रीं कौ किनरेंद्रकिंपुरुषेन्द्रमहोरंगेंद्रगंधर्वेन्द्रय-
 क्षेंद्रराक्षसेन्द्रभूतेंद्रपिशाचेंद्रान् संस्थापयामि स्वाहेति विलिखेत् । एबंमंडलं वर्तयित्वा स्वस्वमंत्रैर्यक्षादि-
 देवान् जलगंगायादिभिरभ्यर्च्य कलशाष्टकादिभेवेदीं भूयेत् । अथ स्नपनमंडपे तां प्रतिमामानीय दर्भप्रस्तरे
 धान्यप्रस्तरे वा स्थापयित्वा क्रमेण स्थापयेत् । ततस्तत्रैव वेदिकायां नवकलशान् सर्वालंकारोपेतान्
 सर्वौषधिसंमिश्रशुद्धयंत्रमंत्रान्विततीर्थजलपरिपूर्णान् शालिप्रस्तरोपरि लिखितमायाबीजा संलेख्य
 तत्पश्चिमभागे स्नपनपीठं स्थापयित्वा प्रक्षाल्यालंकृत्य तदुपरि भुवनाधिपतिं लिखित्वा अक्षतपुष्प-
 दर्भान् विरचय्य तत्तत्प्रतिमां तत्र संस्थापयित्वा पंचोपचारविधिनाभ्यर्च्य चार्हनाष्टकलशैर्मंत्रपूर्वकम-
 भिषिच्य नतुनीराजन कृत्वा पुष्पांजलिपूर्वकमेकादशमभिषेकं मध्यकलेशनामृतमंत्रेण कुर्यात् ।

तेजोमायादिकाख्यानं क्रियान्वितम् । तत्तत्पल्लवसंयुक्तं करोम्यंतपदं स्मरेत् ॥ ४९ ॥

इत्यादिमं कथित चिधिसे पूजा करे । अमृतमंत्रसे यक्षप्रतिमाका अभिषेक करे । “ तेजो ”
 इत्यादि बोलकर “ अथेव ” इत्यादिसे कधी पुर्ष विधिसे स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार

अथैवमाकारशुद्धिं विधाय मूलवेद्या नवघौतवस्त्रसदधीक्षतपुष्पं प्रस्तीर्य तत्र तत्प्रतिमां निवे-
श्याम्यर्च्य कांडाग्रदूर्वाग्रेण प्रोक्षणं विधाय शांतिहोमं यक्षमंत्रेण कृत्वा पुण्याहं श्रोपयित्वा पूर्वोक्तवि-
धिना सुमुहूर्ते तिलकं दद्यात् ततोधिमानादिविधिं विधाय वस्त्राभरणमात्म्यादिभिरभ्यर्च्य विसर्जनादिकं
कुर्यात् । ततः प्रमृतिं च तानि संपूजयेत् ।

एष एव च शेषाणां यक्षाणां स्थापनाविधिः । यक्षीणां च मितः.....भेदाश्रयौ भवेत् ५०
क्षेत्रपालं कर्णिकार्यां मंत्रपत्रायुधादिभिः । सन्नूर्णवेद्यामालिख्य पत्रेष्वष्टसु संलिखेत् ॥ ५१ ॥
समंत्रान् दिक्पतीनिंद्रादधोभागानुपर्यपि । वरुणस्य लिखेत्सोमं मायोर्वीभ्यां च वेष्टयेत् ५२
तरुषां पूजयेद्गंधपुष्पचूपाक्षतादिभिः । अथ तत्प्रतिमां रात्रिमुपितां दर्भसंस्तरे ॥ ५३ ॥
तीर्थंबुख्तपितां तत्र निवेश्यारोप्य तद्गुणान् । आवाहनादि कृत्वा च सूत्रयुक्त्या प्रतिष्ठयेत् ५४

ओं न्हं कौ नोरांघकारसप्रमंडलगदाधारणव्यग्रचतुर्भुज अत्र क्षेत्रपालाय संवैपद् स्वाहेति
कर्णिकायामालिख्य पूर्वादिलेख्यष्वष्टसु । ओं न्ही इंद्राय स्वाहेत्यादिक्रमेण दिक्पालान् सस्थाप्य इंद्राघः
ओं न्हौ नागोम्यः स्वाहेति वरुणादूर्ध्वं च ओं न्हौ सोमाय स्वाहेति विन्यस्य बहिर्मायामात्रया त्रिःप-
रिक्षिप्य क्रौंकारेण निरुख्य भूमंडलेन वेष्टयेदिति मंडलवर्तनम् ।

यक्षी क्षेत्रपाल वरुण आदिकी प्रतिष्ठा “ एष ” इत्यादि पांच श्लोकोंमें कथित रीतिसे

दृष्यन्धूर्नुजा धृतासिफलकः सव्येन राहासितं
 इवानं सिंहसमं करेण भयदामन्येन विभ्रद्रदाम् ।
 नागालंकरणः क्लिलाशु डमरुकारवोत्ववर्णात्रिक-
 सेखतर्धरमत्रयोस्त्यधिकृतः क्षेत्रे स साक्षादयं ॥ ५५ ॥

ओं ह्रीं नियुक्तक्षेत्रपाल अत्रावतरावतर संवौषट् आवाहनं, ओं ह्रीं अत्र तिष्ठ २ ठ २
 स्थापनं, ओं ह्रीं मम संनिहितो भव २ वषट् सन्निधापनम् । ततः सूत्रोक्तविधिना तिलकं दत्त्वा
 धिवासनादिकं कृत्वा सद्ब्रह्मभूषादिभिः सत्कुर्यात् । इति यक्षादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ पत्रादिप्रतिष्ठा ।
 श्रीचंदनादिवेद्यां तु पद्मादौ सम्यगुद्धृतम् । सिद्धचक्रादि संपूज्य तत्पत्रं पुष्पमंडपे ॥ ५६ ॥
 मंगलद्रव्यसर्वौषधुन्निमश्रतार्थिवारिणि । निशाशुषितमानीयं निवेश्य स्तपनमंडपे ॥ ५७ ॥
 आप्लाव्य दुग्धदध्याब्जैः प्राग्वन्मंत्राभिमंत्रितैः । प्रक्षाल्य मृत्सना श्रीखंडं तीर्थपाक्षौभिरादरात्

करे ॥ ५० से ५४ ॥ “ ओं ह्रां ” इत्यादि कथित रीतिसे मांडला वजावे । “ हृज्य ” इत्यादि
 श्लोक तथा “ ओं ह्रीं ” बोलकर क्षेत्रपालका आवाहन आदि करे ॥ ५५ ॥ उसके बाद
 जिनशास्त्र कथित विधिसे तिलक देकर अधिवासना करके उत्तम ब्रह्म आमूषणादिकोसे
 सत्कार करे ॥ यह यक्षादि प्रतिष्ठाकी विधि हुई । अब तांवे आदिके खुदे हुए पत्रोंकी प्रति-
 ष्ठा विधी कहते हैं । चंदन आदिकी बनी हुई वेदीमें पटे पर सिद्धचक्र आदिकी पूजा करे ॥
 ॥ ५६ ॥ फिर मंगलद्रव्य सर्वौषधिसे मिले हुए जलाशयके जलसे अभिषेक करे ॥ ५७ ॥

पूर्वपूजितचक्राग्ने न्यस्य ध्यात्वा च तन्मयम् । तत्प्रक्षालनमादाय तत्स्थाने न्यस्य तेन तत् ५९
संस्नाप्य शुभ्रुर्ध्वैर्तर्भूतत्वे विस्तीडया । मूलमंत्रं प्रजपते स्थापयेच्चंदनद्रुना ॥ ६० ॥
ततोऽभिषिच्य संपूज्य महार्धेणाभिराध्य तत् । कुर्याच्छेषविधिनित्यं पूजयेच्च तदादि तत् । ६१ ।
चित्रादिर्वा प्रतिष्ठायामपि योज्योल्पशो विधिः । स एवाकरशुद्ध्यादिविधिः कुर्यात्तु दर्पणे ६२ ॥
अक्षादिस्थापना त्वद्य जिनादीनां न कारयेत् । प्रायो लोकः कलौ क्षुद्रः कल्पयत्यन्यथा हि ताम्
एकाशीतिपदं प्राचर्य स्थाप्यमर्हत्स्वभाद्यपि । लोकं जिनादि तच्चैत्यं निचितांशु संस्मरेत् ॥ ६४

एवं व्याससमासदर्शनपरं स्वोपज्ञधर्माभृत--

ग्रंथांगं जिनयज्ञकल्पमकरोदाशाधरः श्रेयसे ।

उसके वाद जिसका यंत्र हो उसके मूलमंत्रका जाप करे । जाप करनेके वाद अभिषेक पूर्व-
क उस यंत्रकी पूजा करे । इसतरह प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये ॥ ५९ । ६० । ६१ ॥ चि-
त्राम आदिकी अभिषेकविधि दर्पणमें प्रतिविविक्त करके करनी चाहिये ॥ ६२ अर्हत आदि
मूर्तिकी तदाकार स्थापना करनी चाहिये । क्योंकि कलियुगमें मिथ्याती पुरुष विपरीत
की कल्पना कर डालते हैं । इसलिये चौपड़की तरह मूर्तिकी अतदाकार स्थापनाका
निषेध किया गया है ॥ ६३ ॥ पूर्वकथित इक्यासी पत्रोंका यंत्र पूजाकर प्रतिमाकी स्थापना
करनी योग्य है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार विस्तारसे तथा संक्षेपसे जिनप्रतिष्ठा आदिकी

एनं समयगधीत्य ये गुरुमुखाहुध्वा तदर्थं क्रिया
निर्मास्यंति सुमेधसो बुधनताः प्राप्स्यंति ते निर्दोसिम् ॥ ६५ ॥

इत्याशाभरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सिद्धादि-
प्रतिष्ठाविधानीयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विधिको कहनेवाले जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथको मुद्रा “ आशा-
धरने ” कल्याण होनेकेलिये किया है। जो भव्यजीव गुरुके मुखसे इसको पढकर इसकी
क्रियायें करेंगे वे बुद्धिमान देवोंसे पूजित हुए परंपरासे मोक्षको पायेंगे ॥ ६५ ॥

इसअफार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प दूसरे नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें
भिन्न वादिकी मूर्तिप्रतिष्ठाको कहनेवाला छठठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥



ग्रंथकर्तुः प्रशस्तिः ।

श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शांकभरीभूषण-
स्तत्र श्रीरतिधाम मंडलकरं नामास्ति दुर्गे महत् ।
श्रीरत्न्यासुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वया-
च्छ्रीसल्लक्षणतो जिनेंद्रसमयश्रद्धालुराशाधरः ॥ १ ॥
सरस्वत्याभिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत् । यः पुत्रं छाहडं गुण्यं रंजितार्जुनभूपतिम् ॥ २ ॥
व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतौघरसपानसुतुप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥ ३ ॥
इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योभिनंदितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुंजोसीति च योभिमतो मदनकीर्तयतिपतिना ॥ ४ ॥
म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्यासे सुवृचक्षति-
त्रासाद्विध्यनरेन्द्रदोःपरिमलस्फूर्जञ्जिवर्गोजसि ।
प्राप्तो माकवमंडले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठञ्जिनप्रमितिवाकूशास्त्रे महावीरतः ॥ ५ ॥

आशाघरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौंदर्यमजरथमार्य ।

सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपंचः ॥ ६ ॥

इत्तुपश्लोकितो विद्वद्विलहणेन कवीशिना । श्रीविंध्यभूपतिमहासांधिविग्रहिकेण यः ॥ ७ ॥

श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले । जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ॥ ८ ॥

यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्

सत्तर्के परमास्त्रमाप्य नयतः प्रत्यर्थिनः कौक्षिपत् ।

चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः

पीत्वा काव्यसुधां मतश्च रसिकेज्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥ ९ ॥

स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयाः ।

तर्कप्रबंधो निरवद्यविद्यापीयूषपुरे वहतिस्म यस्मात् ॥ १० ॥

सिद्धयंकं भरतेश्वराम्युदयसत्काव्यं निर्वंधोज्ज्वलं

यस्यैविद्यकवीद्रमोहनमयं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।

योऽर्द्धद्वायरसं निर्वंधरुचिरं शास्त्रं च धर्माभूतं

निर्माय न्यदधात् मुमुक्षुविदुषामानंदसाद्रे हृदि ॥ ११ ॥

आयुर्वेदविदाग्निष्ठां व्यक्त वाग्भटसंहिताम् । अष्टांगहृदयोद्योतं निर्वंधमसृजच्च यः ॥ १२ ॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबन्धनम् । व्यधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ ॥ १३ ॥
 रौद्रस्य व्यधात्काल्याळंकारस्य निबन्धनम् । सहस्रनामस्तवनं सनिबन्धं च योर्हताम् ॥ १४ ॥
 अर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम् । चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनम् ॥ १५ ॥
 रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्स्यवर्णनम् । रत्नत्रयविधानारुख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥ १६ ॥

प्राच्यानि संचर्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैद्रं ।

आम्नायविच्छेदतमश्छिदयं ग्रंथः कृतस्तेन युगानुरूपः ॥ १८ ॥

खाँडिरयान्वयभूषणारूहणसुतः सागारधर्मं रतौ

वास्तव्यो नलकच्छचारुनगेर कर्ता परोपक्रियाम् ।

सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणीः

पापात्साधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः ॥ १९ ॥

विक्रमवर्षसंपंचाशीति द्वादशशतेष्वतीतेषु ।

आश्विनसितार्तयदिवसे साहसमल्लापाराक्षस्य ॥ १९ ॥

श्रीदिवपालचतुपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये ।

नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रंथोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ २० ॥

अनेकार्हप्रतिष्ठास्रप्रतिष्ठैः केलहणादिभिः । सद्यः सूक्तानुराणेण पंडित्वायं प्रचारितः ॥ २१ ॥

अलमतिप्रसंगेन ।

यावन्निलोक्यां जिनमंदिरार्चोस्तिष्ठति शक्रादिभिरर्च्यमानाः ।
तावज्जिनादिप्रतिमाप्रतिष्ठाः शिवार्थिनोऽनेन विधापयंतु ॥ २२ ॥

किंच ।

नंध्यात्स्वाडिलयवंशोत्थः केलहणो न्यासवित्तरः ।
लिखितो येन पाठार्थमस्य प्रथमपुस्तकम् ॥ २३ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इत्याशाधरविरचितो जिनयज्ञकल्पापरनामा प्रतिष्ठासारोद्धारः समाप्तः ।

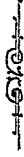
अब ग्रंथकारकी प्रशस्ति कहते हैं—“ श्रीमाच ” इत्यादि श्लोकसे लेकर २३ तक पं० आशा-
धरका वक्तव्य विखलाया गया है ॥ १ से २३ ॥

इति पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाला प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त हुआ ॥

—ॐ समाप्तोऽर्थं प्रतिष्ठापाठः । ॐ

१ “ सनिबंधं यच्च जिनयज्ञकल्पमरीरचत् । त्रिषष्टिस्तृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥ १ ॥
यह श्लोक सागारबंधगीश्रुतकी प्रशस्तीमें है ।

प्रतिष्ठासारोच्चारका परिशिष्ट ।



मंत्यात्प्रावृतिहानिमूलविषयं लब्धयक्षराद्यागमग्रामोद्दामयपुः प्रकाडमुचिताचारादिशाखोच्चयम् ।

बाह्यश्रुत्युपशाखमुक्तिसुदले सद्युक्तिकुण्ठश्रुतस्कंधं स्वर्थफलाकुलं घनशमच्छायं भजेवच्छिदे ॥ १ ॥

पट्टत्रिंशत्त्रिंशत्तरवग्रहमूलैः स्मृत्यादिभिः सोजसा मत्स्ये स्वावरणक्षयोपशमस्वस्वांतोत्थयात्मा यया ।

देशेनेहसि संकरव्यतिकरापोहेन वस्तूचिते योग्यं द्वादशधा बहुप्रभृतिभिर्विद्यात्पुरश्चारुहृक् ॥ २ ॥

एतन्नय पठित्वा श्रुतस्कंधस्थापनार्थं पुस्तकोपरि पुष्पाजलि क्षिपेत् ।

लोकालोकहशः सदस्यसुकृतैरास्याद्यदर्थश्रुतं निर्यतिं ग्रथितं गणेश्वरवृषेणातमुहूर्तेन यत् ।

आरतीयमुनिग्रवाहपतित यत्पुस्तकेष्वर्पितं तज्जैर्नैन्द्रमिहार्पयामि विधिना यष्टुं श्रुतं शाश्वतम् ॥ ३ ॥

विधियन्नग्रतिशानाय पुस्तकोपरि पुष्पाजलि क्षिपेत् ।

सर्पच्छीकरवारवारितपतद्रघाधभृंगव्रजं निर्यत्या कनकाद्रिशृंगसवयोभृंगारनालाननात् ।

स्वर्गागाद्युपनीतपूतसुरभिद्रव्याढ्यवार्धारया स्यात्कारजननी जगद्धिजयिनी जैनी यजे भारतीम् ॥४॥ जलं ।

१. यहासे सरस्वतीदेवीकी पूजाका आरंभ है । इससे पहलेका “ ईद्र ” इत्यादि पाठ इससे अख्यायमे आगया है ।

अतस्तापनिवर्हिणी बहु त्रहिस्तापच्छिदा शालिना मंदा मोदविधायिनी मनुपदोमोदानुलानीलिना ।
 स्याद्वादावृतगर्भिणी परिणमत्कर्पूरेणुश्रिणा श्रीखंडेन महाम्यखंडमहिमब्रह्मासयेर्हद्विरम् ॥ ५ ॥ गंध ।
 द्राणाप्रणनचातुरीचणुणोत्कर्षविशेषोन्मिपलिजत्रासापरिबद्धघोरगिरणत्सारंगगानोन्मदान् ।
 प्रत्याम्न्यातमयामदान्मधुरिमोद्गारौघवल्गद्रसान् । वाग्देवीमभिपुंजयामि ललितान् शाल्यक्षतानक्षतान् ॥ ६ ॥

अक्षतं ।

मंदारादिसुरद्रुजैः सरसैर्जैर्जातीजयापाटलमल्लीचंपकनीपकुंदवकुलाशोकादिजैश्च रिभतैः ।
 सत्पुष्पैर्मकरंदमेदुररजःकिजलकगुंजद्रुमद्भृगैः कांचनपुष्पकादिभिरपि प्रार्चामि जैनी गिरम् ॥ ७ ॥ पुष्पम् ।
 शाल्यन्नं शुचिहेमपात्रनिचित नाष्पायमाणं मुहुः पक्वान्नं द्यूतपाकखंडतुहिनव्योपादिसंस्कारवत् ।
 नानाव्यजनजातमुत्कटरसं रोनिष्णुपुष्पद्रुचे रुच्यै चारु चरुकरोमि भगवद्भगदेवतायाः पुरः ॥ ८ ॥ नैवेद्यम् ।
 निरुच्योतपरंपराकृतहरिचकायकारोदयैर्नित्याननदुसुधाक्षुतं नयनमुत्पीयूषवर्षक्रियैः ।

रास्त्याशीः स्तुतिगीतमंगलमिल्लद्वादित्रनादोत्त्रणं श्रीवाणीं मणिदीपकैरुपचराम्याखुडभक्तिग्रहः ॥ ९ ॥ दीपम् ।
 धूपैर्योगिशेषसज्जितमगद्व्राणैर्कपेयस्फुरत्पर्यायांतरचारुंगंधलहरिरज्यच्चिलिपत्रजैः ।

नासाहृद्वेनेत्रतर्पणतपन्मृदुश्रिसंगोच्छलद्भूम्यासककुमुलैर्भगवतीं गंधुपयाम्यार्हतीम् ॥ १० ॥ धूपं ।
 आग्नेर्द्विगनो र्मेरुपचितश्चोर्चैर्गुल्लुञ्जोचितैर्मेचितैर्बुभिरम्बुदोदयमुदैरन्धैरपीद्विधिवैः ।

ईषाफसुपक्यात्तत्रिहितौत्सुक्यामयानेतरवक्तयुद्धद्रस्यर्णगंधसुभगैश्चाथे जिनोक्ति फलैः ॥ ११ ॥ फलं ।

सावित्रप्रियधर्मभक्तिरसिका मेधाविनेयात्मना कर्तुं सूर्यैरनुग्रहमिमा सर्वज्ञवाक्पद्धतिम् ।
 ता न्यस्तामिह पुस्तकेष्वधिकृतश्रीदेवतांगेषु वा सद्ब्रह्मैः परिधापयामि विविधैः सद्बोधसंसिद्धये ॥ १२ ॥ वल्लं ।
 गंधाब्बोदकधारया हृदयहृद्गंधैर्विशुद्धासतै रोचिष्णुप्रसवैर्विचित्रचरुभिः स्फारस्फुरहीपकैः ।
 गीर्वाणस्पृहणीयधूमविलसद्भूपैः सुधारुक्फलस्तोमैः स्वस्तिकपूर्वकैश्च रचितं श्रुत्यै ददेर्ष विभोः ॥ १३ ॥

पुष्पाजलिः । नमोस्तु श्रुतज्ञानभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् गमो अरहंताणमित्यादि ।
 देवि श्रीचतुराननप्रभुमुखांभोजधिंवासोत्सवे ब्राह्मि ब्रह्मकलाविकाशिनि जगन्मातस्तमोनाशिनि ।
 एतानस्खलितस्वभक्तिनटितानध्यास्य शश्वद्यशोविद्यायुर्वसुविक्रमैरुपचिनु ब्रह्मादियज्ञे धिनु ॥ १४ ॥

एतत्पठित्वा प्रणमेत् । इति श्रुतपूजाविधानम् ।

अथ गुरुपूजा ।

सदा सम्यग्दर्शार्के प्रतपति विधूतांघ्रतमसं लसद्विश्वालोकं विलसति वित्तार्केकनयने ।
 भजंते ये वृत्तामृतमृपिजने संविभजते घटत्पुष्टिं तेषामिह गणमृतां भानुचरणाः ॥ १५ ॥

पादुमास्थापनम् ।

इमास्तिस्रो गुप्तीरिव शमयितुं कल्मषरजश्चरंती चिडञ्चक्तीरिव बहिरुतान्वेषुमहितान् ।
 सुवर्णालूनात्सुरभिवपुरासानुपतिता लुठंतीरवधाराः क्रमभुवि गुरूणां प्रणिदधे ॥ १६ ॥ जलधारा ।

१ अब गुरु पूजा कहते हैं ।

मुमुक्षुणां प्रेखन्नखमणिमयूखव्यतिकरादभीक्ष्णं शीर्षाणि प्रणतिषु पुनः शेखरयत्तः ।
 भवांभोधेः सेतूत्तृषिवृषभपादान् वृपसृजः सृजामः श्रीखंडद्रवतिलकलक्ष्मीविलासितान् ॥ १७ ॥ गंधं ।
 गुणग्रामप्रेमगुणनपरिणानोलवणमनोवचः कायोपायार्जितसुकृतपुंजप्रतिभैः ।
 शरण्यत्रैगुण्यप्रणयनमनाचार्यचरणानुपस्कुर्मोऽमीभिस्त्रिभिरमलशाह्यक्षतचयैः ॥ १८ ॥ अक्षतं ।
 हृढाम्युद्यद्भक्तिप्रणतमुमनोमौलिसुमनः समागच्छद्भृंगोन्मदनमकरदैकहाचंभिः ।
 परागोद्गारामिः प्रवरसुमनोभिः सुमनसां नमस्यानर्चामो मुनिपरिवृढांब्रीनघहृतः ॥ १९ ॥ पुष्पं ।
 विचित्रैस्त्वशासानयनरसनाह्लादनगुणैर्यथास्वं रुक्मादिप्रकृतिषु सुपात्रेषु निचिनैः ।
 परब्रह्मास्वादग्रामदभरनिर्वाणमनसां कमेणाचार्याणां वयमुपचरामश्चरुवैः ॥ २० ॥ चरुं ।
 त्रिसर्पत्कर्पूरप्रणयमधुरामोदनयनप्रियाचिः संदेहप्रमथिततमःस्तोमसुभगैः ।
 प्रदीपैरुर्दीपीकृतसुकृतसुकृतपाथेयसुपथा स्फुरच्छायीकुर्मश्चरणकमलान्यार्थमहताम् ॥ २१ ॥ दीपं ।
 इभैर्धूमधूमध्वजमुखपतद्धूपपटलाद्विसर्पद्भिः स्वैरं प्रतिदिशमुपास्तिव्यसनिनाम् ।
 मनासि प्रीणद्भिः सुसितमनसाचारचतुरैः स्वयं धूपायामश्चरणधरधैरियचरणान् ॥ २२ ॥ धूपं ।
 जगच्छक्ष्मलीलातरलधवलापांगसुभगस्मितच्छायैः श्रेयश्चयमुदयदोजः फलयितुम् ।
 सुरभैश्चोचात्रकमुकफलपूप्रभृतीभिः फलैः स्फारीकुर्मो गणिवरणपीठाग्रधरणीम् ॥ २३ ॥ फलं ।

पयोधारात्रय्यामलयजरसैरक्षतचयैः प्रसूनैर्नैवेद्यैः प्रमदभरतो व्रीपनिकरैः ।
 वरैर्धूपीद्ररैः फलचयकुशाद्यैश्च रचितं विदध्मोर्ध्वं सूरिकमसरसिजोत्ताररुचिरम् ॥ २४ ॥ अथ ।
 पंचाचाराचरणसचिवाचारौकिक्रियाणां स्फारस्फूर्जद्गुणचितयशःशुभ्रिताशाधराणाम् ।
 सेत्सूरीणमिति विधिहृत्ताराधनाः पादपद्माः श्रेयोस्मभ्यं ददतु परमानंदनिःस्यंदसांद्रम् ॥ २५ ॥

एतत्पठित्वा पंचांगग्रणामं कुर्यात् । गुरुवः पात्वित्यादिः ।

अथ प्रतिष्ठासारसंग्रहस्य श्लोकाः ।

शुद्धं शुद्धात्मसद्भावं सिद्धसंज्ञानदर्शनम् । सिद्धं शुद्धप्रमाणसिनिरस्तपरदर्शनम् ॥ १ ॥
 विश्वकर्मार्यिलोकस्य विश्वकर्मेपदेशकम् । विश्वकर्मक्षयार्थिभ्यो विश्वकर्मक्षयप्रदम् ॥ २ ॥
 आदिदेव जिनं नौमि विश्वकर्मजयं प्रभुम् । शेषांश्च वर्षमानांतजिनान् प्रवचनं गुरुन् ॥ ३ ॥
 वियानुवादसत्सूत्राद्वाग्देवीकरूपतस्ततः । चंद्रप्रज्ञसिसंज्ञायाः सूर्यप्रज्ञसिसंज्ञिकात् ॥ ४ ॥
 तथा महापुराणार्थात् श्रावकाध्ययनश्रुतात् । सारं संगृह्य वक्ष्येहं प्रतिष्ठासारसंग्रहम् ॥ ५ ॥
 तत्र तावत्प्रक्ष्यामि प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । तस्योपदेशतो वक्ष्ये विश्वकर्मप्रवर्तनम् ॥ ६ ॥
 शरण्यं सर्वभूतानां वरांगुणयूपणम् । नत्वा जिनेश्वरं वीरं वक्ष्याचार्येन्द्रयोगुणम् ॥ ७ ॥

१ यत्पठे वस्तुनन्दि आचार्यकृत प्रतिष्ठासारसंग्रहका आरंभ है ।

आचारादिगुणाधरो रागद्वेषविवर्जितः । पक्षपातोद्भ्रितः शांतः साधुवर्गप्रणर्गणी ॥ ८ ॥
 अशेषशास्त्रविचक्षुः प्रव्यक्तं लौकिकस्थितिः । गंभीरो मृदुभाषी च स सूरिः परिकीर्तितः ॥ ९ ॥
 कुलीनो जातिसंनन्नः कुत्साहीनः सुदेशजः । कल्याणांगो रुजाहीनः प्रसन्नः सकलेंद्रियः ॥ १० ॥
 शुभलक्षणसंपन्नः सौम्यरूपः सुदर्शनः । विप्रो वा क्षत्रियो वैश्यो विकर्मकरणोद्भ्रितः ॥ ११ ॥
 ब्राह्मचारी गृहस्थो वा सम्यग्दृष्टिर्जितेंद्रियः । निःकषायः प्रशातात्मा वेद्यादिव्यसनोद्भ्रितः ॥ १२ ॥
 उपासकव्रताचार्यो दृष्टसृष्टक्रियोऽसकृत् । श्रद्धालुर्भक्तिसंपन्नः कृतज्ञो विनयान्वितः ॥ १३ ॥
 व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमुद्यतः । जिनवदनकर्मादिष्वनुष्ठानपरः शुचिः ॥ १४ ॥
 श्रावकाध्ययने दक्षः प्रतिष्ठाविधिव्सुधीः । महापुराणशास्त्रज्ञो वास्तुविद्याविशारदः ॥ १५ ॥
 एतंगुणो महासत्त्वः प्रतिष्ठाचार्य इष्यते । नचार्थार्थी न च द्वेषी भ्रष्टलिंगी कलकवान् ॥ १६ ॥
 नैव पार्वडिपुत्रो वा देवद्रव्योपजीविकः । नाधिकांगो न हीनांगो नातिदीर्घो न वामनः ॥ १७ ॥
 न निरुष्टक्रियावृत्तिर्नातिवृद्धो न बालकः । गीतवाद्योपजीवी नो भांडो वैतालिको नटः ॥ १८ ॥
 उन्मत्तो ग्रहग्रस्तो वा भोजने पांक्तिवर्जितः । गर्भाधानादिसंस्कारैर्विहनि नतिभोहवान् ॥ १९ ॥
 ज्ञाता उपासकाद्यंते न व्रपो न महाव्रती । शास्त्रज्ञः कुलजातोपि वर्जन्यस्तथाविधः ॥ २० ॥
 एतं समासतः प्रोक्तं प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । प्रतिष्ठालभ्यसंशुद्धिं भणिष्यामो यथागमम् ॥ २१ ॥

यदि मोहात्तथाभूतः प्रतिष्ठा कुरुते तदा । पुरं राष्ट्रं नरेन्द्रश्च प्रजा सर्वा विनश्यति ॥ २२ ॥
 न कर्ता फलमाप्नोति नापि कारार्थिता स्वकश्च । अथोक्तलक्षणापेतो यदि पूजयते त्वमुग्र ॥ २३ ॥
 प्रशस्तलक्ष्मा यदि पूजयेत् बुमान् । विनेन्द्रचंद्रार्चितपादपंकजम् ।
 पुरं च राष्ट्रं च नृपश्च वर्धते स्वयं जनः कारयितानुबंधतः ॥ २४ ॥
 अथोक्तलक्षणेपेतः प्रतिष्ठाचार्यसत्तमः । जलमंत्रव्रतस्नानं त्रिसंध्यं वंदनां भजेत् ॥ २५ ॥

इति श्री बसुनंदिसेन्द्रांतचिरचित-प्रतिष्ठासारसंग्रहे प्रथमः परिरच्छेदः ।



१. यद्वातक ही लिखी पुस्त डीमे मिलता दे दसलिये आवस्यक समझकर अंतमें लघाया गया है ।

श्रीप्रतिष्ठासारोद्धारकी त्रिषयसूची ।



विषय.	पृ सं.	विषय.	पृ. सं.
मंगलानरण और ग्रंथप्रतिष्ठा	१	प्रतिष्ठाविधि करनेवाले इंद्र (प्रतिष्ठाचार्य) का स्वरूप	१२
पहला अध्याय ॥ १ ॥		दीक्षागुरुका लक्षण	१३
बिनमंदिर व जीर्णमंदिरोंके उद्धार करानेका फल	१	प्रतिष्ठा करनेवाले दाता (यजमान) का लक्षण	१३
तीनोंकालका शुभं अशुभ जाननेकेलिये कर्णपिशाचिनी		इंद्रको सत्कार होनेकी विधि	१४
मंत्र यंत्रसहित तथा उसके साधनकी विधि...	२	मंडप बनानेकी विधि	१६
बैनमंदिरके लिये योग्य जगह	३	वेदीबनानेकी विधि	१७
उस जगहके परित्र करनेकी विधि	४	जलयान्नावर्णन	१८
मंदिर धोड़ा बन जाने पर कारीगरोंका कुशलसे काम		उपवास आदि विधि	१९
समाप्त होनेकेलिये पुतेल्की विधि	५	यागमंडलका उद्धार	२०
उस मंदिरमें मूर्तिबनवानेके लिए शुभ सुदृतेमें कारी-		यागमंडलकी पूजा तथा बिन प्रतिष्ठा आधिकी	२१
गरके साथ पापण आदिही खानिमें जाना...	६	विधिकका क्रम	२१
शिला आदि लानेकी विधि मंत्रसहित	७	दूसरा अध्याय ॥ २ ॥	२२
स्थापनाका स्वरूप	८	तीर्थजल लानेकी विधि	२४
प्रतिष्ठा होनेयोग्य मूर्तिक लक्षण	१०	पांच रंगका चूर्ण स्थापन तथा पंचपरमेष्ठीकी पूजा	२४

विषय.

अन्यदेवताओंकी पूजा (सत्कार)	...	२६
जिनयज्ञादि विधि	३५
उत्तम सकलीकरण क्रिया	...	३६
जिनदेवकी पूजा	३७
सिद्ध भक्तिका कथन	...	३९
महर्षियोंकी पूजा	४१
यज्ञदीक्षा ल्हेकी विधि	...	४२
मंडफकी प्रतिष्ठाविधि	...	४३
वेदीप्रतिष्ठा	४६
तीसरा अध्याय ॥ ३ ॥		
याग मंडलकी पूजाविधि	...	४८
उत्तमसे सोलहविधादेवियोंका पूजन	...	५३
जिन माताओंकी पूजा	...	५६
बत्तीस इंद्रोंकी पूजा	...	६०
चौबीसयक्षोंकी पूजा	...	६६
चक्रेश्वरी आदि शासन देवियोंका पूजन	...	७०
द्वारपालदिवपालोंको अनुकूल करनेकी विधि	...	७४
शेषविधि	...	७८

विषय.

ज्यादि देवताओंकी पूजाविधि	...	७९
सुलवेदीकी पूजा समाप्त	...	८१
उत्तर वेदीकी पूजा...	...	८१
चौथा अध्याय ॥ ४ ॥		
प्रतिष्ठेय प्रतिमाका स्वरूप	...	८५
सकलीकरण क्रिया समंत्र	...	८५
अर्द्धत प्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी विधि	...	८६
जिनमाताओंका स्थापन	...	८७
रत्नवृष्टि स्थापन	८८
स्वप्नदर्शनकी स्थापना	...	८९
गर्भशोधन तथा दिडुमारियोंसे कीर्गईसेवाका स्थापन	...	९०
गर्भावतार कल्याणकी क्रियायें	...	९१
जन्मकल्याणकी स्थापना	...	९१
जन्मके दस आतिशयोंकी स्थापना इंद्राणीकर लाये	...	९२
गये प्रभुको गोदमें लेकर ऐरावती हाथी पर	...	९२
विठालके सुमेरु पर्वतपर गमन	९५
अभिलेख वर्णन	...	९५
वज्र आभूषणादि धारण करना और सुमेरुपर्वतसे	...	९८
नगरमें लाकर माताको सौपना	...	९८

विषय.

पृ. सं.

इंद्रकर स्तुतिपूर्वक किया गया तांडव नृत्य	१९
मूलदेदीमें प्रतिभाका निवेशन तथा जिनमातुलपन	१९
प्रभुकेलिये भोग उपभोगकी सामग्रीका इंद्रकर किया गया प्रबंध	१००
तपकल्याणका विधान, उसमें कारण वश भगवानको वैराग्य होना तथा लौकातिक देवोंको आकर स्तुतिकरना	१०१
पालकीमें वेठाकर दीक्षाकेलिये वनको लेजाना	१०२
वहांपर दीक्षावृक्षोका स्थापन तथा स्वयं दीक्षा ग्रहण करना	१०२
केश लोंब आदि क्रिया और उसी समय चौथे शानको प्रगट होनेका विधान	१०३
तिलकदानविधि	१०३
संस्कारमांलारोपण विधि	१०६
मंत्रन्यासविधि	१०७
अग्निवासानाविधि	१०८
स्वस्तिवाचन	१११
केवलज्ञान कल्याणका स्थापन	११२
श्रीगुरुतोद्वयन	११२

विषय.

पृ. सं.

नेत्रोन्मीलन क्रिया	...
शुणोंका आरोपण...	...
केवल ज्ञानके समय होनेवाले दस अतिशयोंका स्थापन	११२
समवसरणकी स्थापनाका विधान	११४
देवकृत चौदह अतिशयोंका स्थापन	११४
आठ महाप्रतिहार्योंका स्थापन	११५
अर्हतिदेवका साक्षात्करण	११६
मोक्षकल्याणककी स्थापना	११७
पांचवा अध्याय ॥ ५ ॥	
अभियेकविधि	...
सब देवोंके विसर्जनका विधान	...
परब्रह्म श्रीअर्हतिदेवका स्थान शांतिधारा...	११७
पुण्याहुवाचन अर्थात् राजा आदिक सबके कल्याण होनेकी प्रार्थना	११८
जिनालयकी प्रदक्षिणा	...
यजमानको प्रतिष्ठाचार्यका सत्कार करना	१२१
प्रतिष्ठाचार्यको आग्नीर्वीद देना	१२१
प्रतिष्ठाचार्यको गुरुके पास यज्ञदीक्षाका छोड़ना क्षमावनीकी विधि यजमानको करना	१२३
	१२३

विषय.

पु. सं.

मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन चारों संघोंका सरकार	१२३
प्रतिष्ठाचार्य (ईद्र) को भेट देके संतोषितकर वस्त्र आभूषण भोजन आदिसे सत्कारपूर्वक क्षमा कराके विदा करना	१२३
प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हुए साधर्मियोंका भोजन आदिसे सत्कारकर विदा करना	१२३
गंधर्व नृत्यकार आदिका भी योग्य सरकार करके इनाम देकर रवाना करना	१२३
फिर प्रतिमाको वेदीपर लेजाकर विराजमान करना	१२४
मध्यम संक्षिप्त प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन	१२४
जिनमंदिर पर हुआ चढानेकी विधि	१२५
जिनमंदिर और जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठाका फल	१२६
छुटा अध्याय ॥ ६ ॥	१२७
सिद्ध प्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधिका वर्णन	१२८
नृसिद्धचक्रका उद्धार	१२८
लघुसिद्धचक्रका उद्धार	१२८
सिद्धसृष्टिपाठ तथा गुणारोपणका विधान	१२९

विषय.

पृ. सं.

तिलकदान आदिविधान	१२९
अभिषेक विधि	१२९
विसर्जनविधि, इष्टप्रार्थना	१३०
आचार्य (गुरु) प्रतिष्ठाविधि	१३०
गणधर वलयका स्वरूप	१३०
श्रुतदेवता (सरस्वती) की प्रतिष्ठा	सरस्वती यंत्र	...	१३१
वननैकी विधि तथा सरस्वतीमंत्रका जप	१३२
सरस्वती स्तोत्रका पाठ	१३३
यक्षादिकी प्रतिष्ठा	१३५
तावें आदिपर खुदे हुए यंत्रोंकी प्रतिष्ठा	१३६
प्रतिष्ठाविधि योग्यरीतिसे करनेका फल	१३७
ग्रंथकारकी प्रशस्ति	१३७
प्रतिष्ठासरोद्धारका परिशिष्ट ।			
श्रुत (सरस्वती) पूजाका विधान	१३९
गुरुपूजाका विधान	१४०
बसुनदि आचार्यकृत प्रतिष्ठासारसंग्रहके उपयोगी श्लोक	१४१
प्रतिष्ठासार संग्रहका पहला परिच्छेद समाप्त	१४२

पण्डितप्रवर श्रीआशाधर विरचित

प्रतिष्ठासारोद्धार

(संक्षिप्त भाषाटीकासहित)

समाप्त ।

